संस्कृत व्याकरणोदयः

Sanskrit Vyakaranodaya

[इण्टर तथा बी० ए० के छात्रों के लिए]

प्रो० श्री जयमन्त मिश्र एम् ए०, गोल्डमेडलिस्ट
व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य
प्राध्यापक लङ्गटसिंह कालेज
बिहार विश्वविद्यालय

सरस्वती सदन
टावर चौक : दरभंगा

To be had of :
NOVELTY & CO.
PATNA-4.

प्रथम संस्करण ५५

मूल्य :—
पाँच रुपये दस आने

मुद्रक :—
श्री सूर्य्यनारायण झा
दरभंगा प्रेस कम्पनी लिमिटेड
दरभंगा

Sanskrit–Vyakaranodayah in Hindi by Shri Jayamanta Mishra, M. A. (*Goldmedalist*), Vyakaranacharya Sahityacharya, a former pupil and now a Colleague of mine, is a welcome publication in view of the fact that suitable books available to the students are not too many. The author has taken pains to explain adequately the grammatical concepts in consonance with the tradition of Paninian school. I think it is its forte. It quotes copiously from the masters.

As for the matter, it strikes a middle path, being neither exhaustive nor elementary.

It is an endeavour of the author in the right direction and deserves encouragement.

R. N. Sharma,
Prof. & Head of the Department
of Sanskrit, Bihar University,
L. S. College
MUZAFFARPUR.

L. S. College
The 20th. Oct. 1955

महाप्रभु

दो शब्द

छात्रों और शिक्षकों के समक्ष इस पुस्तक को उपस्थित करते हुए मुझे असीम आनन्द के साथ उसी मात्रा में संकोच भी हो रहा है। अध्यापन कार्य आरम्भ करने के साथ ही एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता प्रतीत होने लगी जो I. A. तथा B. A. छात्रों, की परमावश्यकता की पूर्ति कर सके। KALE महोदयका संस्कृत व्याकरण सर्वाङ्गपूर्ण होने पर भी अंग्रेजी माध्यम से प्रतिपादित होने के कारण वर्तमान छात्रों के लिए उपयुक्त नहीं जँचता। उस पर भी अप्राप्य होने के कारण वह छात्रों को यत्किञ्चित भी उपकार नहीं कर पाता। यह "व्याकरणोदय" छात्रों की आवश्यकताओं को पूराकर निश्चय उनमें ज्ञानोदय कराएगा यही विश्वास असीम आनन्द का कारण है। हम जिस रूप में इसे देखना चाहते थे वह प्रतिकूल परिस्थिति के कारण नहीं हो सका। इसलिए इस रूप में उपस्थित करते हुए संकोच हो रहा है।

'इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी और हिन्दी माध्यम से प्रकाशित अभी तक के संस्कृत व्याकरणों में यह व्याकरण अपना खास स्थान रखता है' यह मैं अपने मित्रों की उक्तियों को ही लिपिबद्ध कर रहा हूँ। यद्यपि कारक, समास आदि प्रकरणों को पढ़कर इसकी यथार्थता में सन्देह नहीं रह जाता तो भी "आपरितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम्।" वाली बात भूली नहीं जा सकती।

मुझे विश्वास है कि संस्कृत व्याकरण में जिन्हें बिलकुल प्रवेश नहीं है उनके लिए भी यह परम उपकारक होगा। इसलिए कुछ ऐसे विषय भी आरम्भ में आ गये हैं, जो कालेज-छात्रों के लिए आपाततः अनावश्यक प्रतीत हो। परीक्षार्थियों की सुविधा को ध्यान में रखकर कुछ स्त्री प्रत्ययान्त शब्द तथा कतिपय 'अनेक शब्दों के लिए एक शब्द' दे दिये गये हैं।

पुस्तक बहुत हड़बड़ी में लिखी गई तथा प्रकाशित हुई है। इसलिए कतिपय उपयुक्त विषय भी पुस्तक के आकार बहुत बढ़ जाने के भयसे छोड़ देने पड़े हैं। इतनी शीघ्रता में सम्पादित होने पर भी, स्वनाम धन्य पूज्यपाद पं० श्री जीवनाथराय जी के पथ - प्रदर्शन तथा शुभाशीर्वाद के परिणाम स्वरूप ही यह पुस्तक आपके सामने इस रूपमें आ सकी है। जीवन्मुक्तावस्था में रहते हुए भी उन्होंने जो राय दी है वह शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता।

'प्रथम संस्करण में मुद्रण बिल्कुल शुद्ध नहीं होता' प्रेस वालों की इस धारणा से जो उपेक्षाएँ होती हैं उनसे छपाई में बहुत त्रुटियाँ रह गई हैं। उस पर भी लेखक और प्रेस के बीच में पचासों मील की दूरी होने के कारण 'प्रूफ' का संशोधन समुचित रूप से नहीं हो सका है। काँटे की भूलें तो हृदय में काँटे सी चुभती हैं किन्तु दृष्टि-दोष से या अदृष्ट दोषसे इसका सहन तो द्वितीय संस्करण तक करना ही पड़ेगा।

यदि इस पुस्तक से विश्व विद्यालय के छात्रों को तथा अन्यान्य छात्रों को उपकार हुआ तो मैं अपने समय तथा परिश्रम को सफल समझूंगा।

विनीत

लेखक

विषयानुक्रमणिका

श्रीगणेशाय नमः

संस्कृत-व्याकरणोदयः

विधाय श्रीकृष्ण - पदाब्ज - वन्दनम् ,
निधाय चित्ते च मुनित्रयं मुदा ।
विभाव्य तत् - साधु - वचश्च सादरम् ,
विधीयते व्याकरणोदयो मया ॥

१—अथ सामान्य-प्रकरणम्

(क) व्याकरणम्

"व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति *व्याकरणम्*" जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति की जाय, अर्थात् उनकी सिद्धि और बनावट का ज्ञान हो, उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण के द्वारा ही शुद्धि-अशुद्धि का ज्ञान होता है। यह निश्चित है कि जबतक व्याकरण का पूरा ज्ञान नहीं होता है तबतक संस्कृत साहित्य को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। इसलिए व्याकरण शास्त्र वेद

के भी सभी अङ्गों में प्रधान माना गया है—"मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।" चाहे वैदिक संस्कृत हो या लौकिक संस्कृत उनके अर्थ करने में वही व्यक्ति निःसन्देह रहता है जिसे व्याकरण का ठोस ज्ञान है ।

(ख) प्रत्याहार-सूत्राणि

व्याकरण शास्त्र के आधारभूत ये ही अधोलिखित चतुर्दश सूत्र हैं जिनसे लगभग ४४ प्रत्याहार बनते हैं। प्रत्याहार शब्द का अर्थ है—"प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णाः अस्मिन् इति प्रत्याहारः ।" जिसमें वर्णों का संक्षेप किया जाय उसे प्रत्याहार कहते हैं। अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ और औ, इतने वर्ण यदि कहने रहते हैं तो केवल 'अच्' कहने से काम चल जाता है। इसी अच्, अक्, अण्, यण् आदि संज्ञा शब्दों को प्रत्याहार कहते हैं। ये प्रत्याहार 'अइउण्' इत्यादि सूत्रोंके आधार पर बनते हैं। ये सूत्र ये हैं:—

(१) अइउण् । (२) ऋऌक् । (३) एओङ् । (४) ऐऔच् । (५) हयवरट् । (६) लण् । (७) ञमङणनम् । (८) झभञ् । (९) घढधष् । (१०) जबगडदश् । (११) खफछठथचटतव् । (१२) कपय् । (१३) शषसर् । (१४) हल् ।

ये चतुर्दश सूत्र माहेश्वर सूत्र कहलाते हैं, क्योंकि ये महेश्वर की कृपा से महर्षि पाणिनि को उनसे प्राप्त हुए थे। इन सूत्रों के

अन्तिम वर्ण केवल प्रत्याहार बनाने के लिए प्रयुक्त हैं। प्रत्याहारों में अन्तिम वर्णों का ग्रहण नहीं होता है।

प्रत्याहार बनाने की रीति :—'अइउण्' के अकार और 'ऐ औच्' के चकार को लेकर 'अच्' प्रत्याहार बनता है। 'अ' से लेकर 'च्' पर्यन्त अन्तिम वर्ण को (जैसे ण्, क्, ङ् और च्) छोड़कर जितने वर्ण हैं 'अ इ उ, ऋ लृ, ए ओ, ऐ औ' इन सबों का अच् से ग्रहण होता है। इसी तरह 'अक्, इक्, उक्, यण्, अण् आदि प्रत्याहार तत्तत् सूत्रों के आदि या मध्य तथा अन्त के वर्णों को लेकर बनते हैं। ऐसे ही सुप् और तिङ् भी प्रत्याहार हैं। 'सुप्' कहने से 'सु' से लेकर 'सुप्' पर्यन्त २१ विभक्तियाँ संगृहीत होती हैं। 'तिङ्' के अन्तर्गत 'तिप्' से लेकर 'महिङ्' पर्यन्त १८ विभक्तियाँ आती हैं। व्याकरण शास्त्र में इन प्रत्याहार सूत्रों से बने हुए निम्नलिखित प्रत्याहारों का व्यवहार होता है। अतः छात्रों को चाहिए कि इनका पूरा ज्ञान कर लें। आगे इन प्रत्याहारों का ही उपयोग किया जायगा। जैसे—

'अइउण्' के 'ण्' से	१—'अण्'।
'ऋलृक्' के 'क्' से	३—अक्, इक्, उक्।
'एओङ्' के 'ङ्' से	१—एङ्।
'ऐऔच्' के 'च्' से	४—अच्, इच्, एच्, ऐच्।
'हयवरट्' के 'ट्' से	१—अट्।
'लण्' के 'ण्' से	३—अण्, इण्, यण्।

'ञमङणनम्' के 'म्' से ४—अम्, यम्, ञम्, ङम्।

'झभञ्' के 'ञ्' से १—यञ्।

'घढधष्' के 'ष्' से २—झष्, भष्।

'जबगडदश्' के 'श्' से ६—अश्, हश्, वश्, झश्, जश्, बश्,।

'खफछठथचटतव्' के 'व्' से १—श्रव्।

'कपय्' के 'य्' से ५—यय्, मय्, झय्, खय्, चय्।

'शसषर्' के 'र्' से ५—यर, झर्, खर्, चर्, शर्।

'हल्' के 'ल्' से ६—अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्।

'लण्' के ल के बाद 'अ' से भी एक होता है 'र' प्रत्याहार, जिनमें 'र ल्' दो वर्ण होते हैं। इन्हीं ४४ प्रत्याहारों का सन्धि के सूत्रों में उपयोग हुआ है।

यहाँपर अ, इ, उ आदि ह्रस्व वर्णों से दीर्घ और प्लुत भी समझना चाहिए। एक मात्रा जिसमें हो उसे ह्रस्व, दो मात्राएँ जिसमें हों उसे दीर्घ और तीन मात्राएँ जिसमें हों उसे प्लुत कहते हैं। व्यञ्जन में आधा मात्रा होती है।

एकमात्रो भवेद्ह्रस्वः, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रश्च प्लुतो ज्ञेयः, व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्॥

जैसे—'सुशील ३' शब्द में तीनों स्वर उ, ई, अ क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत हैं। 'लृ' का दीर्घ नहीं होता है।

(ग) वर्णों के उच्चारण स्थान और प्रयत्न

	स्थान	स्वर		व्यञ्जन				
		ह्रस्व	दीर्घ	स्पर्श		अन्तस्थ	ऊष्म	अयोगवाह
अकुह विसर्जनीयानां ...	कण्ठः	अ	आ	क् ख् ग् घ्	ङ		ह्	(ः) विसर्ग
इ चु य शा नां	तालु	इ	ई	च् छ् ज् झ्	ञ्	य्	श्	
ऋ टु र षा णां	मूर्धा	ऋ	ॠ	ट् ठ् ड् ढ्	ण्	र्	ष्	
लृ तु ल सा नां	दन्ताः	लृ		त् थ द् ध	न्	ल्	स्	
उपूपध्मानीयानाम्	ओष्ठौ	उ	ऊ	प् फ ब भ्	म्			≍ उपध्मानीय
वकारस्य	दन्तोष्ठम्					व		
एदैतोः	कण्ठ-तालु		ए, ऐ					
ओदौतोः	कण्ठोष्ठम्		ओ, औ					
जिह्वामूलीयस्य	जिह्वामूलम्							≍ जिह्वामूलीय
अनुस्वारस्य	नासिका				ञमङणनानां नासि०			(ं)
प्रयत्न		विवृतम् स्वराणाम्		स्पृष्टम् प्रयतनं स्पर्शानाम		ईषत् ‘पृष्टम अन्तस्थानाम्	विवृतम् ऊष्मणाम्	

नोट — कु चु टु तु पु से क्रमसे कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग पवर्ग समझना चाहिये ।

(घ) कुछ आवश्यक संज्ञाएँ

सवर्ण-संज्ञा—"तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" (पाणिनीय सूत्रम्)

जिस वर्ण के कण्ठ, तालु आदि स्थान और स्पृष्ट, ईषत् स्पृष्ट आदि प्रयत्न जिस वर्ण के साथ तुल्य होते हैं वे दोनों वर्ण परस्पर 'सवर्ण' कहलाते हैं। जैसे—अ और आ, इ और ई, क और ख आदि सवर्ण हैं। किन्तु 'अ' और 'इ' सवर्ण नहीं हैं, क्योंकि इनके विवृत प्रयत्न एक होने पर भी स्थान एक नहीं है। इसी तरह 'अ' और 'ह' का कण्ठ स्थान एक होने पर भी प्रयत्न भिन्न होने के कारण दोनों सवर्ण नहीं हैं। किन्तु 'ऋ' और 'ऌ' का स्थान भिन्न होने पर भी दोनों विशेष विधान से सवर्ण हैं।

(२) वृद्धि-संज्ञा—"वृद्धिरादैच" (पा० सू०)

आ और ऐच् (ऐ और औ) को 'वृद्धि' कहते हैं।

(३) गुण-संज्ञा—"अदेङ्गुणः" (पा० सू०)

अ और एङ् (ए और ओ) का नाम 'गुण' है।

(४) संयोग-संज्ञा—"हलोनन्तराः संयोगः" (पा० सू०)

अच् से रहित अनेक हल् को 'संयोग' कहते हैं। जैसे 'इन्द्र' में 'न्द्र' संयोग है।

(५) लघु-संज्ञा—"ह्रस्वं लघु" (पा० सू०)

ह्रस्व अक्षर को 'लघु' कहते हैं। इसमें एक मात्रा होती है। जैसे 'इह' में 'इ' लघु है।

(६) *गुरु-संज्ञा*—"संयोगे गुरुः" "दीर्घं च" (पा० सू०)

संयोग से पूर्व ह्रस्व भी 'गुरु' कहलाता है और दीर्घ स्वर को 'गुरु' संज्ञा होती है। जैसे-'इन्द्र' में 'इ' गुरु है। और ईश' में 'ई' गुरु है।

(७) *विभक्ति-संज्ञा*—"विभक्तिश्च" (पा० सू०)

सुप् और तिङ् को 'विभक्ति' कहते हैं।

(८) *पद-संज्ञा*—"सुप्तिङन्तं पदम्" (पा० सू०)

सुबन्त और तिङन्त को (अर्थात् जिसके अन्त में सुप् और तिङ् हो) 'पद' कहते हैं। जैसे रामः, कृष्णेन, पठतु, चलतु आदि पद हैं।

(९) *धातु-संज्ञा*—"भूवादयो धातवः" (पा० सू०)

क्रिया वाचक भू, कृ, गम् आदि को 'धातु' कहते हैं।

(१०) *परस्मैपद-संज्ञा*—"लः परस्मैपदम्" (पा० सू०)

लकार के स्थान में 'तिप्' से लेकर 'मस्' पर्यन्त ९ प्रत्यय और 'शतृ' प्रत्यय आवें तो उनको 'परस्मैपद' कहते हैं।

(११) *आत्मनेपद संज्ञा*—"तङानावात्मनेपदम्" (पा० सू०)

त, आताम् से लेकर महिङ् पर्यन्त ९ विभक्तियाँ तथा आन (शानच्, कानच् आदि) को 'आत्मनेपद' कहते हैं।

(१२) *उपसर्ग और गति संज्ञा*—"उपसर्गाः क्रिया योगे" "गतिश्च" (पा० सू०)

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति,

परि, उप—इनको 'प्रादि' कहते हैं। ये प्रादि जब क्रिया के साथ आते हैं तब उन्हें 'उपसर्ग' संज्ञा और 'गति' संज्ञा होती है। इनका प्रयोग लोक में धातु से अव्यवहित पूर्व होता है। जैसे अनुभवति, आगच्छति आदि में धातु से पूर्व उपसर्ग हैं।

(१३) *विभाषा-संज्ञा*—"नवेति विभाषा" (पा० सू०)

निषेध और विकल्प को 'विभाषा' कहते हैं।

(१४) *संहिता-संज्ञा*—"परः सन्निकर्षः संहिता" (पा० सू०)

वर्णों का जो अत्यन्त सामीप्य हो उसे 'संहिता' कहते हैं। संहिता रहने पर ही सन्धि होती है। जैसे—मधु+अरिः= मध्वरिः' में 'उ' और 'अ' में संहिता है।

(१५) *उपधा-संज्ञा*—"अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा" (पा० सू०)

अन्त्य 'अल्' से पूर्व वर्ण को 'उपधा' कहते हैं। जैसे—'राजन्' में अन्त्य 'न्' से पूर्व 'अ' उपधा है।

(१६) *घ-संज्ञा*—"तरप्तमपौघः" (पा० सू०)

तरप् और तमप् की संज्ञा 'घ' है। जैसे—पट्वितरा, पट्वितमा।

(१७) *सर्वनामस्थान-संज्ञा*—"सुट् सर्वनामस्थानम्" (पा०सू०)

सु, औ, जस, अम्, औट् और शि को 'सर्वनामस्थान' कहते हैं।

(१८) *सर्वनाम-संज्ञा*—"सर्वादीनि सर्वनामानि" (पा० सू०)

सर्व, विश्व, उभ, तद्, यद्, युष्मद्, अस्मद्, किम् आदि ३५ शब्दों का नाम 'सर्वनाम' है।

(१९) *टि-संज्ञा*—'अचोऽन्त्यादि टि' (पा० सू०)

अच् समुदाय के बीच जो अन्तिम अच् और उस अच् सहित उसके आगे का जो हल् वर्ण उसे 'टि' कहते हैं। जैसे—'शक' में 'क' के बाद 'अ' और 'मनस्' में 'न' के बाद 'अस' 'टि' है।

(२०) *नदी-संज्ञा*—"यूस्त्र्याख्यौ नदी" "ङिति ह्रस्वश्च"—
(पा० सू०)

दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द 'नदी' संज्ञक हैं और ह्रस्व इकारान्त तथा ह्रस्व उकारान्त भी नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द 'नदी' संज्ञक हैं। जैसे—गौरी, वधू और मति, धेनु, आदि शब्द।

(२१) *घि संज्ञा*—"शेषोघ्यसखि" (पा० सू०)

नदी संज्ञक से भिन्न तथा सखि शब्द को छोड़ कर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दों को 'घि' संज्ञा होती है। जैसे—कवि, हरि, आदि। किन्तु 'पति' शब्द केवल समास ही में 'घि' संज्ञक है। जैसे—श्रीपति, भूपति, सेनापति, आदि।

इसके अतिरिक्त भी 'घु' '*भ*' '*अवसान*' '*उपपद*' आदि अनेक संज्ञायें हैं।

इति सामान्य-प्रकरणम्

२—अथ सन्धि - प्रकरणम्

(क) सन्धि (Euphonic Combination of Letters)

संहिता रहने पर जब दो स्वर, या दो व्यञ्जन, या दो स्वर व्यञ्जन आपस में मिलकर एक तृतीय विकृत रूप धारण करते हैं, तब उसे '*सन्धि*' कहते हैं। इस सन्धि में कहीं दोनों वर्णों की जगह एक तीसरा वर्ण हो जाता है, जैसे-गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः (इ + इ = ई), तत् + शिवः = तच्छिवः (त् + श = च्छ) और कहीं दो में से एक के स्थान में दूसरा वर्ण हो जाता है। जैसे— इति+आदि = इत्यादि (इ+आ = या), जगत् + ईशः = जगदीशः (त्+ई = दी)।

जिस संहिता के रहने पर सन्धि होती है वह संहिता कहीं तो नित्य, अर्थात्—अनिवार्य है और कहीं ऐच्छिक है। जैसे—

संहितैकपदेनित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्येतु सा विवक्षामपेक्षते ॥

अर्थात्– एकपद में, धातु और उपसर्ग में तथा समास में संहिता अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त वाक्य में संहिता ऐच्छिक है। जैसे –'कवये अध्येतुं नरेन्द्रः पुस्तकं ददाति'—यहाँ पर 'कवये' की जगह 'कवेए' 'अध्येतुम्' की जगह 'अधिएतुम्' 'नरेन्द्रः' की जगह 'नरइन्द्रः' लिखना या बोलना अशुद्ध है। यहाँ संहिता अनिवार्य है अतः 'कवये' 'अध्येतुम्' तथा 'नरेन्द्रः' ऐसा ही

लिखना या बोलना होगा। किन्तु 'पुस्तकं ददाति' की जगह 'पुस्तकम् ददाति' ऐसा भी लिखा या बोला जा सकता है।

संस्कृत भाषा में सन्धि और समास के द्वारा सौन्दर्य बढ़ता है, अतः इनका ज्ञान अच्छी तरह से अपेक्षित है।

(ख) सन्धि के भेद

(१) अच्सन्धि (२) प्रकृतिभाव (३) हल्सन्धि, (४) विसर्ग सन्धि और (५) स्वादि सन्धि के भेद से पाँच भेद करते हैं।

[१] अथ अच्-सन्धि

अच् सन्धि—स्वर के साथ स्वर की सन्धि।

जब स्वर के साथ स्वर की सन्धि होती है, उस सन्धि को स्वर सन्धि या *अच् सन्धि* कहते हैं। जैसे –

दधि+अत्र=दध्यत्र आदि *यण् सन्धि*,

मुर+अरिः=मुरारिः आदि *दीर्घ सन्धि*,

हरे+ए=हरये आदि *अयादि सन्धि*,

रमा+ईशः=रमेशः आदि *गुण सन्धि*,

कृष्ण+एकता=कृष्णैकता आदि *वृद्धि सन्धि*,

प्र+एजते=प्रेजते आदि *पररूप सन्धि*,

हरे+अव=हरेऽव आदि *पूर्व रूप सन्धि*।

अच् सन्धि में ये उपर्युक्त सन्धियाँ मुख्य हैं। इनमें और जो कुछ विशेष सन्धियाँ होती हैं उनका विवेचन भी इनके साथ साथ किया जायगा।

(१) यण् सन्धि

"इकोयणचि" (पा० सू०)

इक् (इ उ ऋ लृ) के बाद यदि अच् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ए औ) का कोई असवर्ण स्वर हो तो इक् की जगह क्रम से य् व् र् तथा ल् हो जाते हैं। यहाँ ह्रस्व स्वर से दीर्घ स्वर भी समझना चाहिये या यों समझिये—

(क) यदि ह्रस्व इ या दीर्घ ई के बाद इ, ई को छोड़कर अन्य कोई स्वर वर्ण हो तो इ या ई की जगह य् होता है और वह 'य्' आगे के स्वर से मिल जाता है। जैसे—

(१) इ का य्—यदि+अपि=यद्यपि, दधि+अत्र=दध्यत्र, इति+आदि=इत्यादि, अति+आचारः=अत्याचारः, अति+उत्तमः=अत्युत्तमः, प्रति+ऊहः=प्रत्यूहः, प्रति+ऋचम्=प्रत्यृचम्, प्रति+एकम्=प्रत्येकम्, अति+ऐश्वर्यम्=अत्यैश्वर्यम्, प्रति+ओषधि=प्रत्योषधि, मति+औत्सुक्यम्=मत्यौत्सुक्यम् आदि।

(२) ई-का-य्—नदी+अत्र=नद्यत्र, नदी+आवेगः=नद्यावेगः, नदी+उद्धारः,=नद्युद्धारः, सखी+ऊहः=सख्यूहः, बली+ऋणी=बल्यृणी, देवी+एका=देव्येका, देवी+ऐश्वर्यम्=देव्यैश्वर्यम्; नदी+ओकः=नद्योकः, वाणी+औचित्यम्=वाण्यौचित्यम्।

(ख) उ तथा ऊ के बाद उ, ऊ को छोड़कर यदि कोई स्वर आगे रहे तो उ, ऊ की जगह व् हो जाता है।

(१) उ की जगह व् जैसे—अनु+अय:=अन्वय:, सु+आगतम्=स्वागतम्, मधु+इदम्=मध्विदम्, मधु+ईशः=मध्वीशः, मधु+ऋते=मध्वृते, मधु+एव=मध्वेव, साधु+ऐश्वर्यम्=साध्वैश्वर्यम्, पचतु + ओदनम्=पचत्वोदनम्, ददातु + औषधम्=ददात्वौषधम्।

(२) दीर्घ ऊ की जगह व् यथा—सरयू+अम्बु=सरय्वम्बु, वधू + आसनम्=वध्वासनम्, वधू + इच्छा=वध्विच्छा, तनू + ईशः=तन्वीशः, वधू+ऋणम्=वध्वृणम्, वधू+एधितम्=वध्वेधितम्, वधू + ऐश्वर्यम्=वध्वैश्वर्यम्, वधू + ओकः=वध्वोकः, वधू + औदार्यम्=वध्वौदार्यम्।

(ग) ऋ तथा ॠ के बाद ऋ, ॠ और ऌ को छोड़कर किसी स्वर के रहने पर ऋ, ॠ के स्थान में 'र्' हो जाता है। यथा—पितृ+अनुमतिः=पित्रनुमतिः, मातृ + आदेशः=मात्रादेशः, भ्रातृ +इच्छा=भ्रात्रिच्छा, पितृ+ईहा=पित्रीहा, मातृ+एषणा=मात्रेषणा, भ्रातृ + ऐश्वर्यम्=भ्रात्रैश्वर्यम्, स्वसृ + ओकः=स्वस्रोकः, दुहितृ+औदासीन्यम्=दुहित्रौदासीन्यम्।

(घ) ऌ के बाद ऋ, ॠ और ऌ को छोड़कर कोई स्वर हो तो ऌ का 'ल्' हो जाता है यथा--ऌ+आकृतिः=लाकृतिः।

"अचोरहाभ्यां द्वे" (पा० सू०)

"अच्' से आगे यदि रेफ या हकार हो तो उससे परे 'यर' (हकार को छोड़कर सभी व्यञ्जनों) को विकल्प से द्वित्व हो जाता है जैसे—

अर्क्कः, अर्कः, कार्य्यम् कार्यम् , वीर्य्यम्, वीर्यम् . सूर्य्यः, सूर्यः, ब्रह्म्मा, ब्रह्मा आदि।

"अनचिच" (पा० सू०)

'अच्' से परे 'यर' को विकल्प से द्वित्व होता है यदि उसके आगे 'अच्' नहीं हो। जैसे—

दद्ध्यत्र, दध्यत्र, मद्ध्वरिः, मध्वरिः आदि। किन्तु दीर्घ से परे यदि यर हो तो कुछ आचार्यों के मत में द्वित्व नहीं होता है। जैसे—दात्रम् , पात्रम् , सूत्रम् आदि।

दीर्घ सन्धि

"अकः सवर्णे दीर्घः" (पा० सू०)

अक् (अ इ उ ऋ लृ) के बाद यदि सवर्ण अच् हो तो दोनों की जगह दीर्घ हो जाता है या यों समझिये—यदि ह्रस्व या दीर्घ 'अ' के बाद ह्रस्व या दीर्घ 'अ' हो तो दोनों मिलकर आ, ह्रस्व या दीर्घ 'इ' के बाद ह्रस्व या दीर्घ 'इ' हो तो दोनों मिलकर ई, ह्रस्व या दीर्घ उकार के बाद ह्रस्व या दीर्घ उकार हो तो दोनों मिलकर ऊ तथा ऋ, ॠ लृ के बाद ऋ, ॠ या लृ हो तो दोनों मिलकर ॠ हो जाते हैं।

(क) अ + अ = आ, जैसे - मुर+अरिः = मुरारिः।

अ + आ = आ, " देव+आलयः = देवालयः।

आ + अ = आ, " लता + अत्र = लतात्र।

आ + आ = आ " विद्या + आलयः = विद्यालयः।

नोट—अ + अ कुछ जगहों में आ नहीं भी होते हैं, दोनों मिलकर 'अ' हो जाते हैं जैसे—मार्त + अण्डः = मार्तण्डः, कुल + अटा = कुलटा, शक + अन्धुः = शकन्धु, कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः आदि।

(ख) इ + इ = ई, जैसे—गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः।

इ + ई = ई, जैसे गिरि + ईशः = गिरीशः।

ई + इ = ई, यथा—देवी + इच्छा = देवीच्छा।

ई + ई = ई, यथा—मही + ईशः = महीशः।

नोट—इसका अपवाद सूत्र 'ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्" ध्यान में रखना चाहिए जहाँ हरी + ईशौ = हरी ईशौ आदि में दीर्घ नहीं होता है।

(ग) उ + उ = ऊ, यथा—विधु + उदयः = विधूदयः।

उ + ऊ = ऊ, „ गुरु + ऊहः = गुरूहः।

ऊ + उ = ऊ, „ चमू + उत्साहः = चमूत्साहः।

ऊ + ऊ = ऊ, „ वधू + ऊहनम् = वधूहनम्।

नोट—इस नियम का पूर्वोक्त अपवाद सूत्र ध्यान में रखना चाहिए जहाँ पर विष्णू-उमेशौ में दीर्घ नहीं होता है।

(घ) (१) ऋ + ऋ = ॠ, यथा—मातृ + ऋणम् = मातॄणम् पितृ + ऋद्धि = पितॄद्धिः।

(२) ऋ + ऌ = ॠ यथा—होतृ + ऌकारः = होतॄकारः।

(३) अयादि सन्धि

"एचोऽयवायावः" (पा० सू०)

एच् (ए ओ ऐ औ) के आगे यदि कोई स्वर वर्ण हो तो क्रम से ए के स्थान में 'अय्' ओ के स्थान में 'अव्' ऐ की जगह 'आय्' और औ की जगह 'आव्' हो जाते हैं। जैसेः—

(क) ए+अ=अय, यथा शे+अनम्=शयनम्। कवे+ए= कवये, ने+अनम्=नयनम्।

(ख) ओ+अ=अव, यथा भो+अनम् = भवनम्। भानो +ए=भानवे।

(ग) ऐ+अ=आय, यथा नै+अकः=नायकः।

(घ) औ+अ=आव, यथा पौ+अकः=पावकः।

"वान्तोयि प्रत्यये" (पा० सू०)

यकारादि प्रत्यय आगे रहने पर ओ और औ को क्रमसे अव् और आव् आदेश हो जाता है। जैसे—

गो+य=गव्य—गव्यम्, नौ+य=नाव्य—नाव्यम् आदि।

गो शब्द के आगे 'यूति' शब्द रहने पर ओ को अव् हो जाता हैं। जैसे—गो+यूतिः=गव्यूतिः।

"क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे" (पा० सू०)

शक्य अर्थ रहने पर यकारादि प्रत्यय से पूर्व 'क्षे और 'जे' को अय् हो जाता है। जैसे—क्षे+यम्=क्षय्यम् (क्षेतुं शक्यम्) जे+यम्=जय्यम् (जेतुं शक्यम्)।

शक्यार्थ से भिन्न में 'क्षेयम्' और 'जेयम्' होता है। इसी तरह बेचने के लिए प्रसारित वस्तु के लिए 'क्रय्यम' (क्रे+यम् =क्रय्यम्) होता है। अन्यत्र 'क्रेयम्' होगा।

"लोपः शाकल्यस्य" (पा० सू०)

अवर्ण (अ आ,) से आगे पदान्त यकार और वकार का विकल्प से लोप हो जाता है यदि उसके आगे अश् (वर्ग के प्रथम, द्वितीय तथा श् ष् स को छोड़कर कोई) वर्ण हो। जैसे—हरे + एहि = हरय् + एहि = हरएहि, हरयेहि। विष्णो + इह = विष्णव् + इह = विष्णइह, विष्णविह।

श्रियै + उद्यतः = श्रियाय् + उद्यतः = श्रिया उद्यतः, श्रियायुद्यतः। गुरौ + उत्कः = गुराव् + उत्कः = गुरा उत्कः, गुरावुत्कः इत्यादि। किन्तु हरे + ए = हरये न कि 'हरए' क्योंकि यहाँ यकार पदान्त नहीं है।

(४) गुणसन्धि

"आद्गुणः" (पा० सू०) (गुण = अ ए ओ)

अ अथवा आ के बाद यदि इ या ई हो तो दोनों की जगह 'ए', अ या आ के बाद यदि उ या ऊ हो तो दोनों की जगह 'ओ', अ या आ के बाद यदि ऋ या ॠ हो तो दोनों के स्थान में 'अर्' और अ अथवा आ के बाद यदि ऌ हो तो दोनों की जगह 'अल्' हो जाते हैं। जैसे—

(क) अ + इ = ए, यथा—देव + इन्द्रः = देवेन्द्रः।
अ + ई = ए, यथा—नर + ईशः = नरेशः।
आ + इ = ए, जैसे—रमा + इन्द्रः = रमेन्द्रः।
आ+ई = ए, जैसे—गङ्गा+ईश = गङ्गेशः।

(ख) अ+उ = ओ, जैसे—चन्द्र+उदयः = चन्द्रोदयः।
अ+ऊ = ओ, जैसे—एक+ऊनविंशः = एकोनविंशः।

आ+उ=ओ, यथा—गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्।

आ+ऊ=ओ, जैसे—यमुना+ऊर्मिः=यमुनोर्मिः।

(ग) अ+ऋ=अर्, यथा—राज+ऋषिः=राजर्षिः।

आ+ऋ=अर् यथा—महा+ऋषिः=महर्षिः।

(घ) अ+ऌ=अल्, जैसे—तव+ऌकारः=तवल्कारः।

(५) वृद्धिसन्धि

"वृद्धिरेचि" (वृद्धि=आ ऐ औ)

अवर्ण (अ, आ) के बाद यदि एच् (ए ओ ऐ औ) का कोई वर्ण हो तो दोनों की जगह वृद्धि (ऐ औ,) हो जाती है। अर्थात् अ या आ के बाद यदि ए या ऐ हो तो दोनों मिलकर ऐ हो जाते हैं। इसी तरह अ या आ के बाद यदि ओ या औ हो तो दोनों की जगह औ हो जाता है: जैसे—

(क) अ+ए=ऐ, यथा—तव+एव=तवैव,

अद्य+एव=अद्यैव।

अ+ऐ=ऐ, यथा—तव+ऐश्वर्यम्=तवैश्वर्यम्,

मत+ऐक्यम्=मतैक्यम्

आ+ए=ऐ, यथा—सदा+एव=सदैव,

तथा+एव=तथैव।

आ+ऐ=ऐ, यथा—महा+ऐश्वर्यम्=महैश्वर्यम्,

सदा+ऐक्यम्=सदैक्यम्।

(ख) अ+ओ=औ, यथा—तव+ओकः=तवौकः,

जल—ओघः=जलौघः।

अ+औ=औ, यथा—तव+औदार्यम्=तवौदार्यम्,
कृष्ण+औत्कण्ठ्यम्=कृष्णौ-त्कण्ठ्यम्।

आ+ओ=औ, यथा—महा+औषधिः=महौषधिः
महा+ओकः=महौकः।

आ+औ=औ, यथा—महा+औत्सुक्यम्=महौत्सुक्यम्,
महा+औदार्यम्=महौदार्यम्।

"एत्येधत्यूठ्सु" (पा० सू०)

अवर्ण से आगे एकारादि 'इण्' धातु और 'एध्' धातु के रहने पर तथा ऊठ् सम्बन्धी ऊकार के रहने पर दोनों के स्थान में वृद्धि हो जाती है। जैसे—उप+एति=उपैति, उप+एधते=उपैधते, अव+एषि=अवैषि, अव+एधसे=अवैधसे, परा+एमि=परैमि, परा+एधे=परैधे, प्रष्ठ+ऊहः=प्रष्ठौहः आदि।

यहाँ पर 'उपैति' इत्यादि में पररूप नहीं होता है और 'प्रष्ठौहः' 'विश्वौहः' इत्यादि में गुण नहीं होता है।

'अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्' (कात्यायनवार्तिकम्)

अक्ष शब्द के बाद ऊहिनी शब्द रहने पर 'अ और ऊ' की जगह वृद्धि हो जाती है। जैसे—अक्ष+ऊहिनी=अक्षौहिणी।

'स्वादीरेरिणोः' (का० वा०)

स्व शब्द के आगे ईर, ईरिन् या ईरिणी शब्द रहने पर 'अ+ई' के स्थान में वृद्धि हो जाती है। जैसे—स्व+ईरः=स्वैरः, स्व+ईरी=स्वैरी, स्व+ईरिणी=स्वैरिणी।

'प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु' (का० वा०)

प्र उपसर्ग से परे 'ऊह', 'ऊढ', 'ऊढि', 'एष', 'एष्य', शब्द रहने पर अ, ऊ आदि दोनों की जगह वृद्धि हो जाती है।

जैसे—प्र+ऊहः=प्रौहः, प्र+ऊढः—प्रौढः, प्र+ऊढिः= प्रौढिः, प्र+एषः=प्रैषः, प्र+एष्यः=प्रैष्यः।

'ऋते च तृतीया समासे' (का० वा०)

तृतीया समास में अवर्ण से आगे ऋत शब्द रहने पर 'अ ऋ' दोनों की जगह वृद्धि-एकादेश हो जाता है।

जैसे—(सुखेन ऋतः) सुख+ऋतः=सुखार्तः, (दुःखेन ऋतः) दुःख+ऋतः=दुखार्तः आदि, किन्तु (परमः ऋतः) परम+ऋतः=परमर्तः न कि परमार्तः।

'प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे' (का० वा०)

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण, दश इन शब्दों के आगे 'ऋण' शब्द रहने पर अ+ऋ की जगह वृद्धि होती है।

जैसे—प्र+ऋणम्=प्रार्णम्, वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम् कम्बल+ऋणम्=कम्बलार्णम्, वसन+ऋणम्= वसनार्णम्, ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम्, दश+ऋणः= दशार्णः (देशः) नदी दशार्णा आदि.

"उपसर्गादृति धातौ" (पा० सू०)

यदि अकारान्त या आकारान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो वृद्धि एकादेश होता है।

जैसे—प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति, उप+ऋच्छति=उपार्च्छति।

(६) पररूप सन्धि

"एङि पररूपम्" (पा० सू०)

अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि एङादि धातु हो (अर्थात् ऐसा धातु हो जिसके आदि में एकार या ओकार हो तो) उपसर्ग का अन्तिम अ या आ धातु के आदि एकार या ओकार में मिल जाता है, अर्थात् उसे पररूप होता है।

जैसे—प्र+एजते = प्रेजते, अप + एजते = अपेजते।
प्र + ओषति = प्रोषति, उप + ओषति = उपोषति।
परा + एजते = परेजते, परा + ओषति = परोषति।

'एवे चानियोगे' (का० वा०)

अवर्ण से परे एव का अनियोग (अनिश्चय) अर्थ रहने पर दोनों के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

जैसे क्व + एव = क्वेव।

किन्तु एव का निश्चय अर्थ रहने पर वृद्धि ही होती है। जैसे—अद्यैव, तवैव इत्यादि।

'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' (का० वा०)

शकन्ध्वादि गणमें जितने शब्द हैं उनकी सिद्धि के लिए 'शक' आदि के 'टि' और अन्धु आदि के अकार के स्थान में पररूप एकादेश होता है। जैसे—

शक + अन्धुः = शकन्धुः, कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः, कुल + अटा = कुलटा, मृत + अण्डः = मृतण्डः (जिसका अपत्य मार्तण्डः) सीमन + अन्तः = सीमन्तः (केश-वेश अर्थ में) पतत् + अञ्जलिः =

पतञ्जलिः, मनस्+ईषा = मनीषा, हल+ईषा = हलीषा, लाङ्गल+ईषा = लाङ्गलीषा, सार + अङ्गः = सारङ्गः (पशु-पक्षी अर्थ में,) (इससे भिन्न अर्थ में साराङ्गः) इत्यादि।

'ओत्वोष्ठयोःसमासे वा' (का० वा०)

अवर्ण से परे ओतु और ओष्ठ शब्द के रहने पर समास में पूर्व और पर दोनों स्वरों की जगह विकल्प से पररूप एकादेश हो जाता है। जैसे—

स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः, कण्ठ + ओष्ठम् = कण्ठोष्ठम्, कण्ठौष्ठम् इत्यादि। समास से भिन्न में तवौतुः, तवौष्ठ इत्यादि।

"ओमाङोश्च" (पा० सू०)

अवर्ण से परे यदि 'ओम्' और (आङ्) आ रहे तो दोनों की जगह पररूप एकादेश हो जाता है। जैसे—

शिवाय + ओं नमः = शिवायों नमः, शिव + आ + इहि = शिवेहि, अव+आ+इहि=अवेहि इत्यादि।

(७) पूर्वरूप सन्धि

"एङः पदान्तादति" (पा० सू०)

यदि किसी पद के अन्त में ए या ओ हो और उसके आगे ह्रस्व अकार हो तो ह्रस्व अकार उसी ए या ओ में मिल जाता है, अर्थात् उसे पूर्वरूप हो जाता है। उस अकार की जगह (ऽ) ऐसा चिह्न लिखा जा सकता है। जैसे:—

हरे + अव = हरेऽव, मुने + अत्र = मुनेऽत्र, कवे + अत्र = कवेऽत्र, विष्णो + अव = विष्णोऽव साधो + अत्र = साधोऽत्र, भानो + अत्र = भानोऽत्र।

"अवङ् स्फोटायनस्य" (पा० सू०)

अच् के परे रहने पर पदान्त गो शब्द को विकल्प से 'अव (ङ्)' आदेश होता है। अर्थात् गो शब्द में ओ की जगह अव हो जाता है। उसके बाद सवर्ण दीर्घ हो जाता है। जैसे—

गो + अग्रम् = गव + अग्रम् = गवाग्रम्, विकल्प में प्रकृतिभाव भी विकल्प से होता है, अतः गोअग्रम् और गोऽग्रम्। गो अक्षः—'गवाक्षः' यहाँ नित्य ही 'अवङ्' होता है।

"इन्द्रे च" (पा० सू०)

गो शब्द से आगे इन्द्र शब्द के रहने पर गो शब्द के ओकार को 'अव(ङ्)' आदेश होता है। अवङ् आदेश करने के बाद गुण हो जायगा। जैसे—

गो+इन्द्रः = गव+इन्द्रः = गवेन्द्रः।

इति अच् सन्धिः

[२] अथ प्रकृति भावः

"प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्" (पा० सू०)

अच् के परे प्लुत संज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक शब्दों को प्रकृति भाव हो जाता है। अर्थात् वहाँ कोई स्वर सन्धि नहीं होती है। वे शब्द वैसे ही रह जाते हैं।

निम्न लिखित परिस्थितियों में शब्द 'प्लुत' होते हैं। "दूराऽह्वाने च गाने च रोदने च प्लुतोमतः।"

(क) दूर से सम्बोधन करने में जो वाक्य प्रयुक्त होता है उसमें सम्बोधन पद के 'टि'को अर्थात् अन्तिम अच् को 'प्लुत' कहते हैं। जैसे—'अयि बालका ३ अत्रागच्छ' यहाँ पर 'बालका ३' में अन्तिम 'आ' प्लुत होता है और ३ से पूर्व सूत्र से प्रकृति भाव हो जाता है, अतः सवर्ण दीर्घ नहीं होता है।

(ख) 'हे' और 'है' शब्द के प्रयोग रहने पर सम्बोधन में 'हे' और 'है' ये ही प्लुत होते हैं। जैसे—हे ३ राम ! राज है ३ !

(ग) द्विजातियों में पुरुषों में विधिवत् अभिवादन के बाद जो विधिवत् आशीर्वचन प्रयुक्त होता है उसमें आशीर्वाद वाक्य का अन्तिम वर्ण प्लुत होता है। जैसे—'अभिवादये देवदत्तोऽहम् भोः' ऐसे अभिवाद वाक्य के बाद जो 'आयुष्मान्एधि देवदत्ता ३'' ऐसा प्रत्यभिवाद—आशीर्वाद—वाक्य प्रयुक्त होता है उसमें 'देवदत्ता ३' का अन्तिम 'आ' प्लुत' है।

निम्नलिखित शब्द प्रगृह्य संज्ञक होते हैं। जैसे—

"ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्" पा० सू०)

यदि द्विवचनान्त ई, ऊ या ए के बाद कोई स्वर हो तो वहाँ सन्धि नहीं होती है। वहाँ प्रगृह्य संज्ञा होती है और प्रकृतिभाव हो जाता है। अर्थात् वे द्विवचनान्त ईकार, ऊकार और एकार ज्यों के त्यों रह जाते हैं। जैसे—हरी + एतौ = हरी एतौ, मुनी + इमौ = मुनीइमौ, विष्णू + आसाते = विष्णू आसाते, गुरू+आगच्छतः = गुरू आगच्छतः, लते + एते = लते एते, रमे + आसाते = रमेआसाते, एधेते + इमौ = एधेते इमौ इत्यादि।

"अदसोमात्" (पा० सू०)

'अदस्' शब्दावयव मकार से परे यदि दीर्घ ईकार या ऊकार हो तो उसे प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है। जैसे—अमी+ईशाः= अमीईशाः, अमी + अन्धाः = अमी अन्धाः, अमू + अश्वौ = अमू अश्वौ, अमू + आसाते = अमूआसाते इत्यादि। यहाँ प्रगृह्य संज्ञा के बाद प्रकृतिभाव होता है।

"निपात एकाजनाङ् (पा० सू०)

'आङ्' को छोड़कर जो एक अच् रूप निपात (आ, इ, उ आदि) हो उसे प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—इ + इन्द्रः= इइन्द्रः, उ + उमेशः=उउमेशः, आ + एवं किलतत्=आएवंकिलतत्।

यदि 'आ' क्रिया के साथ प्रयुक्त हो या उसका ईषत्, मर्यादा, अभिविधि आदि अर्थ हों तो उस आ को ङित्, अर्थात् आङ्, समझना चाहिए। इनसे भिन्न अर्थों में 'आ' को अङित्-शुद्ध समझना चाहिए। 'आ' जहाँ पर ङित होगा, अर्थात् ईषत् आदि उपर्युक्त अर्थों में रहेगा, वहाँ प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी। जैसे— ईषद्-उष्णम् इस अर्थ में आ+उष्णम्=ओष्णम्, क्रिया योग में आ + इहि=एहि न कि आ इहि, आ + उदधि=ओदधि न कि आ उदधि इत्यादि।

"ओत्" (पा० सू०)

ओदन्त निपात को प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—

अहो + ईशाः=अहो ईशाः इत्यादि।

यहाँ सभी जगह प्रगृह्य संज्ञा या प्लुत संज्ञा होने के बाद "प्लुत प्रगृह्या अचिनित्यम्" सूत्र से प्रकृति भाव हो जाता है।

"ऋत्यकः" (पा० सू०)

पदान्त अक् से आगे ह्रस्व ऋकार हो तो प्रकृतिभाव विकल्प से होता है। यदि वह अक् दीर्घ हो तो उसे ह्रस्वता भी हो जाती है। जैसे—

ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः विकल्प में ब्रह्मर्षिः, सप्त+ऋषीणाम्=सप्तऋषीणाम् और सप्तर्षीणाम् इत्यादि।

इति प्रकृति भावः

[३] हल् सन्धि या व्यञ्जन सन्धि

(१) "स्तोः श्चुना श्चुः (पा० सू०)

सकार या तवर्ग (त् थ् द् ध् न्) के साथ शकार या चवर्ग (च् छ् ज् झ् ञ्) का योग रहने पर सकार के स्थान में शकार और तवर्ग की जगह चवर्ग हो जाता है। या यों समझिये - यदि दन्त्य सकार के साथ तालव्य शकार या चवर्ग का योग हो तो दन्त्य 'स्' तालव्य 'श' हो जाता है और यदि तवर्ग का चवर्ग के साथ या शकार के साथ योग हो तो तवर्ग के स्थान में क्रम से चवर्ग होता है। जैसे—हरिस् + शेते = हरिश्शेते, शिवस्+शोभते+शिवश्शोभते। रामस्+चिनोति = रामश्चिनोति, पयस् + छविः—पयश्छविः। सत् + चरित्रम् = सच्चरित्रम्, सत् + चित् = सच्चित्, महत् + छत्रम् = महच्छत्रम्, बृहत् + छाया = बृहच्छाया,

महत्+छत्रम् = महच्छत्रम्, महत्+जलम् = महज्जलम्, सत्+जनः=सज्जनः, तत्+झञ्झावातः=तज्झञ्झावातः, तत्+झनत्कारः=तञ्झनत्कारः, महान्+जयः=महाञ्जयः, राजन्+जय=राजञ्जय। तत्+शिवः=तच्-शिवः=तच्छिवः।

नोट—तालव्य श् के बाद तवर्ग का चवर्ग नहीं होता है। जैसे—विश्+नः=विश्नः, प्रश्+नः=प्रश्नः। यहाँ न् की जगह ञ् नहीं हुआ।

(२) "ष्टुना ष्टुः"

यदि सकार या तवर्ग के साथ षकार या टवर्ग का योग हो तो सकार के स्थान में षकार और तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाता है। अर्थात् सकार के साथ षकार या टवर्ग हो तो सकार की जगह षकार होता है और तवर्ग के साथ यदि टवर्ग या षकार हो तो तवर्ग की जगह टवर्ग होता है। जैसे—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः, शिवस्+षष्ठः=शिवष्षष्ठः। तत्+टीका=तट्टीका, उत्+टङ्कनम्=उट्टङ्कनम्, बृहत्+ठक्कुरः=बृहट्ठक्कुरः, उत्+डयनम्=उड्डयनम्, बृहत्+डिण्डिमः = बृहड्डिण्डिमः, बृहत्+ढक्का=बृहड्ढक्का, बृहत्+ढक्कनम्=बृहड्ढक्कनम्, बृहत्+णकारः=बृहण्णकारः।

नोट—पदान्त टवर्ग से आगे यदि नाम्, नवति और नगरी शब्द को छोड़कर कोई तवर्ग या सकार हो तो तवर्ग की जगह टवर्ग नहीं होता है। जैसे—षट्+सन्तः=षट्सन्तः, षट्+ते=षट्ते। किन्तु षट्+नाम्=षण्णाम्, षट्+नवतिः=षण्णवतिः, षट्+नगर्यः=षण्णगर्यः।

(३) "झलांजशोऽन्ते" (पा० सू०)

पद के अन्त में यदि झल् वर्ण हो (अर्थात् वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा श् ष् स् ह हो) और उसके आगे वर्ग के प्रथम, द्वितीय तथा श् ष् स् को छोड़कर कोई वर्ण हो तो झल् की जगह जश् (ज् ब् ग् ड् या द्) हो जाते हैं। जैसे—दिक्+इयम्=दिगियम्, वाक्+ईशः=वागीशः, दिक्+गजः=दिग्गजः, वाक्+दानम्=वाग्दानम्, धुक्+जटिलः = धुग्जटिलः, वाक्+भरणम्=वाग्भरणम्। अच्+अन्तः=अजन्तः, अच्+आदिः=अजादिः, अच्+झल्=अज्झल्, उत्+एति=उदेति, महत्+एव=महदेव, महत्+दानम्=महद्दानम्, सम्राट्+अयम्=सम्राडयम्, विभ्राट्+गच्छति=विभ्राड्गच्छति, अप्+जम्=अब्जम्, अप्+इन्धनम्=अबिन्धनम्।

(४) "झलां जश् झशि" (पा० सू०)

झल् (वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा श् ष् स् ह्) वर्ण के आगे यदि 'झश्' का (वर्ग के तृतीय तथा चतुर्थ का) कोई अक्षर हो तो 'झल्' का जश् (ज् ब् ग् ड् द्) हो जाता है। जैसे—दोघ्+धा=दोग्धा, बोध्+धा=बोद्धा, लभ्+धः=लब्धः, धुढ्+भ्याम्=धुड्भ्याम् इत्यादि।

(५) "खरि च" (पा० सू०)

यदि झल् के आगे खर् वर्ण (वर्ग का प्रथम, द्वितीय तथा श् ष् स् में से) कोई हो तो झल् के स्थान में चर

(उसी वर्ग का प्रथम अक्षर च् ट् त् क् प्) हो जाता है। जैसे—विपद् + कालः = विपत्कालः, सम्पद् + समयः = सम्पत्-समयः, सम्पद् + फलम् = सम्पत्फलम्, ककुभ् + प्रान्तः = ककुप्प्रान्तः, तज् + शिवः = तच्शिवः आदि।

(६) "शश्छोऽटि" (पा० सू०)

यदि पद के अन्त में 'झय्' वर्ण (वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तथा चतुर्थ वर्ण) हो तो उससे परे श् का छ् विकल्प से होता है, यदि उसके (श् के) बाद अट् (स्वर तथा ह् य् व् र्) वर्ण में से कोई वर्ण आया हो। जैसे—तत् + शिवः = तच्छिवः या तच्शिवः, महत् + शकटम् = महच्छकटम् या महच्शकटम्, महत् + शिला = महच्छिला या महच्शिला, तत् + शरणम् = तच्छरणम् या तच्शरणम्, तत् + श्रुत्वा = तच्छ्रुत्वा, सत् + श्रवणम् = सच्छ्रवणम् इत्यादि।

(७) "झयोहोऽन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

यदि झय् वर्ण (वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण) के बाद हकार आवे तो ह के स्थान में उसी वर्ग का चतुर्थ अक्षर विकल्प से हो जाता है। अर्थात् जिस वर्ग के अक्षरों के बाद ह आता है उसी वर्ग का चतुर्थ अक्षर ह के स्थान में हो जाता है और ह के पूर्व वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है। जैसे—

वाक् + हरिः = वाग्घरिः, या वाग्हरिः, वणिज् + हननम् = वणिज्झननम्, लिट् + हसति = लिड्ढसति, उत् + हतः = उद्धतः, महत् + हसनम् = महद्धसनम्, अप् + हारः = अब्भारः आदि।

(८) "तोर्लि" (पा० सू०)

तवर्ग के आगे यदि ल् हो तो तवर्ग के स्थान में ल् हो जाता है और न् के बाद यदि ल् हो तो न् के स्थान में सानुनासिक ल् होता है। जैसे—
तत् + लयः = तल्लयः, तत् + लीनता = तल्लीनता, जगत् + लयः = जगल्लयः, महान् + लाभः = महाल्लाँभः, विद्वान् + लिखति = विद्वाल्ँलिखति, महान् + लोभी = महाल्ँलोभी इत्यादि।

उद् से आगे यदि स्था और स्थम्भ हो तो उनके सकार की जगह पूर्व सवर्ण थकार होता है। और उस 'थ्' का वैकल्पिक लोप भी होता है। जैसे—उद् + स्थानम् = उत्थानम् या उत्थ्थानम्; उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम् इत्यादि।

(९) "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" (पा० सू०)

यदि पद के अन्त में यर् अर्थात् हकार को छोड़ कर कोई व्यञ्जन वर्ण हो और उसके आगे अनुनासिक; अर्थात् वर्ग का पञ्चम (ञ् म् ङ् ण् न्) वर्ण रहे तो पूर्व वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण विकल्प से हो जाता है। जब पञ्चम वर्ण नहीं होता है तो वर्ग का तृतीय वर्ण हो जाता है। जैसे—

दिक् + नागः = दिङ्नागः, प्राक् + मुखः = प्राङ्मुखः, अच् + नेदम् = अञ्नेदम्, उत् + नयनम् = उन्नयनम्, जगत् + नाथः = जगन्नाथः, मधुलिट् + नास्ति = मधुलिण्नास्ति, अप् + मयम् = अम्मयम् आदि। विकल्प में दिग्नागः, उद्नयनम् इत्यादि।

(१०) "मोऽनुस्वारः" (पा० सू०)

यदि पद के अन्त में मकार हो और उसके आगे कोई व्यञ्जन वर्ण हो तो म् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है। जैसे—

हरिम् + वन्दे = हरिंवन्दे, वशम् + वदः = वशंवदः, शीघ्रम् + याति = शीघ्रं याति, जलम् + वहति = जलंवहति, दुःखम् + सहति = दुःखं सहति, गृहम् + गच्छति = गृहंगच्छति, अयम् + चलति = अयं चलति आदि।

यदि पदान्त म् के आगे कोई स्पर्श या अन्तस्थ वर्ण हो तो म् के स्थान में अनुस्वार होता है या जिस वर्ग का वर्ण आगे में रहे उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है। जैसे—

किम्+करोति = किं करोति, किङ्करोति, नगरम्+गच्छति = नगरं गच्छति, नगरङ्गच्छति, शत्रुम्+जयति = शत्रुं जयति शत्रुञ्जयति नदीम् + तरति = नदीं तरति नदीन्तरति, गुरुम्+ नमति = गुरुं नमति, गुरुन्नमति फलम्+पतति = फलं पतति, फलम्पतति, सत्यम्+ब्रूते = सत्यं ब्रूते, सत्यम्ब्रूते इत्यादि।

ऐसेही सम् + यन्ता = संयन्ता, सय्यँन्ता इत्यादि। किन्तु सम् + राट् = सम्राट् यहाँ म ही रहता है।

(११) "नश्चापदान्तस्य झलि" (पा० सू०)

यदि न् और म् पद के अन्त में न हों और उनके आगे झल् (वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय चतुर्थ तथा श ष स ह) वर्ण हो तो नकार और मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है। जैसे—

यशान् + सि = यशांसि, पयान्+सि = पयांसि, विद्वान् + सौ = विद्वांसौ, हन् + सः = हंसः, धनून् + षि = धनूंषि, नम् + स्यति = नंस्यति,

(१२) "ङमोह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्" (पा० सू०)

यदि ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् पद के अन्त में हो और उनके आगे कोई स्वर वर्ण हो तो ङ्, ण् और न् का आगम हो जाता है। अर्थात् एक ङ् दो ङ् ङ् एक ण दो ण् ण् और एक न् दो न् न् हो जाते हैं। जैसे—

प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः, तस्मिन् + एव = तस्मिन्नेव, कस्मिन् + इति = कस्मिन्निति, सन् + अन्तः = सन्नन्तः।

(१३) "छे च" (पा० सू०)

ह्रस्व स्वर के बाद यदि छकार हो तो ह्रस्व के आगे और छकार से पूर्व च चला आता है। जैसे—शिव + छत्रम् = शिवच्छत्रम्, परि + छेदः = परिच्छेदः, तरु + छाया = तरुच्छाया, पितृ + छत्रम् = पितृच्छत्रम् आदि।

नोट—दीर्घ स्वर के बाद भी छ परे रहने से बीच में च् होता है। जैसे— चे + छिद्यते = चेच्छिद्यते। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया।

* यदि डकार और नकार के बाद सकार हो तो उस सकार के पहले एक 'त्' विकल्प से हो जाता है। जैसे—षट् + सन्तः = षट्त्सन्तः, षट् सन्तः, सन् + सः = सन्त्सः, सन्सः इत्यादि।

† पदान्त नकार के बाद तालव्य शकार के रहने पर न् और श के बीच में विकल्प से 'त्' हो जाता है। जैसे--

सन् + शम्भुः = सञ्च्छम्भुः, सञ् शम्भुः, 'च्' के लोप करने पर सञ्छम्भुः इत्यादि।

(१४) "नश्छव्यप्रशान्" (पा० सू०)

प्रशान् को छोड़कर पदान्त नकार को रु (र्) हो जाता है यदि उसके आगे 'छव्' (छ, ठ, थ, च, ट, त) वर्ण हो, किन्तु छव् से आगे केवल 'अम्' (स्वर, यण्, ह तथा वर्ग का पञ्चम) ही वर्ण होना चाहिए। जैसे—

राजन् + छिन्धि = राजँश्छिन्धि (रेफ की जगह विसर्ग और सकार हो गया तथा उसके पूर्व स्वर को अनुनासिक हो गया है), चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिँस्त्रायस्व इत्यादि।

इति हल् सन्धि

---

* "ङ्णोः कुक्टुक् शरि" "डः सि धुट्" "नश्च" (पा० सू०)

† "शि तुक्" (पा० सू०)

[४] विसर्ग सन्धि

विसर्ग के साथ स्वर वर्णों या हल्वर्णों की सन्धि को विसर्ग सन्धि कहते हैं।

(१) "विसर्जनीयस्य सः" (पा० सू०)

विसर्ग के बाद यदि खर् (वर्ग के प्रथम, द्वितीय तथा श् ष् स्) का कोई वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि (क) विसर्ग स्थानीय स् के बाद यदि च् या छ रहेगा तो हल्सन्धि का प्रथम सूत्र "स्तोः श्चुना श्चुः" से तालव्य श् हो जायगा। (ख) यदि स् के बाद ट् या ठ रहेगा तो 'ष्टुना ष्टुः" से मूर्धन्य ष् हो जायगा। जैसे—

(क) नरः + चलति = नरश्चलति, पूर्णः+चन्द्रः—पूर्णश्चन्द्रः, वृक्षः + छिन्नः = वृक्षश्छिन्नः, सुन्दरः + छत्री = सुन्दरश्छत्री।

(ख) धनुः+टङ्कारः = धनुष्टङ्कारः, चतुरः+ठक्कुरः = चतुरष्ठक्कुरः कठिनः + ठकारः = कठिनष्ठकारः। शिवः + तथा = शिवस्तथा, छिन्नः + तरुः = छिन्नस्तरुः, पयः + तत् = पयस्तत्।

(२) "वाशरि" (पा० सू०)

विसर्ग के आगे यदि शर् (श् ष् स्) वर्ण हो तो विकल्प से विसर्ग का विसर्ग ही रह जाता है। अर्थात् विसर्ग भी रहता है और श् के साथ श्, ष् के साथ ष् और स् के साथ स् भी पूर्व नियमों से हो जाते हैं। जैसे—हरिः + शेते = हरिः शेते, हरिश्शेते, विष्णोः + शयनम् = विष्णोः शयनम्, विष्णोश्शयनम्, मत्तः + षट्पदः = मत्तः षट्पदः, मत्तष्षट्पदः, रामः + षष्ठः = रामः षष्ठ, रामष्षष्ठः, साधुः + सेव्य = साधुः सेव्यः, साधुस्सेव्यः, कृष्णः + सेव्यते = कृष्णः सेव्यते, कृष्णस्सेव्यते।

नोट—विसर्ग के बाद शर् हो और उसके बाद खर् हो तो विसर्ग का लोप भी हो जाता है। जैसे—रामः+स्थाता = रामस्थाता, बाहुः+स्फुरति = बाहुस्फुरति आदि।

(३) "कुप्वो ≍क≍पौ च" (पा० सू०)

यदि क, ख या प, फ, परे हो तो विसर्ग की जगह क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय हो जाता है। और विसर्ग भी होता है। जैसे—

क≍करोति, कः करोति, क≍खनति, कः खनति, क≍पठति कः पठति, क≍फलति, कः फलति इत्यादि।

किन्तु पाश, कल्प क और काम्य शब्द के परे रहने पर सकार स्थानीय विसर्ग की जगह 'स्' होता है। जैसे—

पयः+पाशम् = पयस्पाशम्, यशः+कल्पम् = यशस्कल्पम्, यशः+कम् = यशस्कम्, यशः+काम्यति = यशस्काम्यति।

(४) "इणः षः" (पा० सू०)

यदि 'इण्' से आगे विसर्ग रहे और उसके आगे पाश, कल्प, क और काम्य शब्द हो तो विसर्ग की जगह मूर्धन्य षकार हो जाता है। जैसेः -

सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्, ऐसे ही सर्पिष्कल्पम् सर्पिष्कम् और सर्पिष्काम्यति।

* नमः और पुरः शब्दों में विसर्ग की जगह सकार हो जाता है यदि उसके आगे करोति, कृत्य आदि शब्द रहते हैं। जैसे—नमः + करोति = नमस्करोति, नमस्कृत्य, पुरस्करोति, पुरस्कृत्य आदि।

---

*"नमस्पुरसोर्गत्योः" (पा० सू०)

❀ जिसकी उपधा में इकार या उकार हो ऐसे अप्रत्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य षकार हो जाता है यदि उसके आगे में कवर्ग या पवर्ग रहे। जैसे:—

आवि: + कृतम् = आविष्कृतम्, दु: + कृतम् = दुष्कृतम् इत्यादि।

नोट—विसर्ग यदि प्रत्यय सम्बन्धी होगा तो षकार नहीं होगा। जैसे:—अग्नि: करोति' वायु: करोति इत्यादि।

† तिर: के आगे कवर्ग या चवर्ग रहने पर सकार विकल्प से होता है। जैसे:—तिरस्कर्ता, तिर: कर्ता आदि।

✱ द्वि:, त्रि: तथा चतु: के विसर्ग के स्थान में एवम् 'इस्' और 'उस्' प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्ग के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य षकार होता है यदि उसके आगे कवर्ग या पवर्ग रहे। जैसे:—द्विष्करोति—द्वि:करोति, त्रिष्करोति—त्रि:करोति, चतुष्करोति —चतु: करोति, सर्पिष्करोति—सर्पि:करोति, धनुष्करोति—धनु:-करोति आदि।

× अकार से आगे विसर्ग (जो अव्यय सम्बन्धी न हो तथा समास के उत्तर पद में न हो) के स्थान में 'सकार' हो जाता है यदि उसके आगे कृ धातु से बने शब्द हों तथा कमि, कंस,

---

❀ "इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य" (पा० सू०)

† "तिरसोऽन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

✱ "द्विस्त्रिचतुरिति कृत्वोऽर्थे" "इसुसो: सामर्थ्ये" (पा० सू०)

× "अतः कृ—कमि—कंस—कुम्भ—पात्र—कुशा—कर्णीष्व नव्ययस्य"

कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी शब्द हों। जैसे—अयः + कारः = अयस्कारः, अयस्कामः। अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी।

समास में अधः तथा शिरः के विसर्ग को सकार होता है यदि उसके आगे पद शब्द रहता है। जैसेः—

अधस्पदम्, शिरस्पदम्,। किन्तु परम शिरः पदम्।

कस्कादि गण में जितने शब्द हैं उन में भी विसर्ग की जगह सकार होता है। जैसे—भास्करः आदि।

इति विसर्ग सन्धिः

[५] स्वादिसन्धि

'सु' आदि प्रत्यय सम्बन्धी सन्धि को *स्वादिसन्धि* कहते हैं।

(१) "ससजुषोरुः" (पा० सू०)

पद के अन्तवाले सकार के तथा पदान्त सजुस् के सकार के स्थान में रु (र्) हो जाता है। जैसे—कविस् + अयम् = कवि· रयम्, रविस् + एव = रविरेव, भानुस् + अपि = भानुरपि, अग्निस् + इति = अग्निरिति।

(२) "अतोरोरप्लुतादप्लुते" (पा० सू०)

यदि दो ह्रस्व अकारों के बीच में (सकार स्थानीय) र हो तो तीनों की जगह 'ओ' हो जाता है और वहाँ पर (ऽ) यह चिन्ह भी रख सकते हैं या यों कहिये कि दो ह्रस्वाकारों के बीच वाले 'र्' के स्थान में इस सूत्र से उ होता है, पूर्व अकार के साथ

गुण करने से 'ओ' हो जाता है और आगे के अकार को 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप हो जाता है। जैसे—रामः + अयम् = रामोऽयम्, कृष्णः + अर्च्यः = कृष्णोऽर्च्यः, श्यामः + अयम् = श्यामोऽयम्।

नोट—यह स्मरण रखना चाहिये कि 'र्' यदि सकार स्थानीय नहीं है तो 'ओ' नहीं होगा। जैसे—

पुनर् + अयम् = पुनरयम् न कि शिवोऽयम् इत्यादि की तरह पुनोऽयम् इत्यादि।

(३) "हशि च" (पा० सू०)

यदि ह्रस्व अकार के बाद विसर्ग हो (या यों कहिए कि सकार स्थानीय र् हो) और उसके बाद हश् (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम तथा ह् य् व् र् ल्) वर्ण हो तो विसर्ग या र के स्थान में 'उ' होता है और पूर्व अकार के साथ गुण होने से 'ओ' हो जाता है। जैसे—

बालः + हसति = बालोहसति कृष्णः + वन्द्यः = कृष्णोवन्द्यः, मनः + रथ = मनोरथः, मनः + मोदते = मनोमोदते, छात्रः + याति = छात्रोयाति, पयः + लभते = पयोलभते, सुन्दरः + भवति = सुन्दरोभवति, प्रखरः + घर्मः = प्रखरोघर्मः, कर्तव्यः + धर्मः कर्तव्योधर्मः, शिष्टः + जनः = शिष्टोजनः, तीव्रः + झनत्कारः = तीव्रोझनत्कारः, माननीयः + नायक = माननीयोनायकः, सुन्दरः + डमरूः = सुन्दरोडमरूः, बाल + गच्छति = बालोगच्छति पयः + दीयते = पयोदीयते इत्यादि।

नोट – यदि रेफ या विसर्ग यहाँ भी सकार स्थानीय नहीं है तो ओ नहीं होगा। जैसे–पुनः + वन्द्यः = पुनर्वन्द्य, न कि पुनोवन्द्यः।

(४) "भो, भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि" (पा० सू०)

भो, भगो अघो तथा अ, आ से परे विसर्ग का (उसके स्थान में यकार होकर) लोप हो जाता है यदि उसके आगे (कोई स्वर वर्ण या वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम तथा ह्, य्, व्, र्, ल्) अश् वर्ण हो। जैसे–

भोः + मित्र = भो मित्रः, भगोः + नमस्ते = भगो नमस्ते, अघोः + याहि = अघोयाहि, श्यामः + आगतः = श्याम आगतः, श्यामः + इह = श्याम इह, वालः + एव = बालएव, देवाः + इह = देवाइह, नराः + आगच्छन्ति = नरा आगच्छन्ति अश्वाः + इमे = अश्वाइमे, लोकाः + उद्यताः = लोकाउद्यताः जनाः + एकत्र = जनाएकत्र, देवाः + वन्द्याः = देवावन्द्याः, नराः + यान्ति = नरायान्ति, सनातनाः + धर्माः = सनातनाधर्माः। वर्णाः + घोषाः = वर्णाघोषाः, जनाः + मोदन्ते = जनामोदन्ते इत्यादि।

नोट—(१) दो ह्रस्वाकारों के बीच यदि विसर्ग रहेगा तो लोप नहीं होगा। जैसे—रामोऽयम्, यदि ह्रस्वाकार से परे और हश् वर्णों के पूर्व विसर्ग रहेगा तो विसर्ग का लोप नहीं होगा। जैसे—रामोहसति इत्यादि। अतः "अतोरोरप्लुतादप्लुते" और "हशिच" इन दोनों सूत्रों को यहाँ ध्यान में रखना चाहिए।

(२) यहाँ भी विसर्ग यदि सकार स्थानीय न हो तो उस का लोप नहीं होगा। जैसे—

पुनः+आगतः=पुनरागतः, प्रातः+इहागतः=प्रातरिहागतः अन्तः+धानम् = अन्तर्धानम्, मातः+देहि = मातर्देहि, पितः+आगच्छ=पितरागच्छ, जामातः+आयाहि=जामातरायाहि, दुहितः+इहागच्छ=दुहितरिहागच्छ, स्वः+गतः स्वर्गतः, धातः+देहि=धातर्देहि इत्यादि।

(३) विसर्ग का लोप कर देने पर गुण, वृद्धि आदि सन्धि नहीं होती है। जैसे—

देवाः+इह=देवाइह न कि देवेह, नराः+एव=नराएव न कि नरैव इत्यादि।

(५) "हलिसर्वेषाम्" (पा० सू०)

भो, भगो, अघो तथा अकार से परे विसर्ग (या विसर्ग स्थानीय यकार) हो तो उसका लोप हो जाता है, यदि उसके आगे व्यञ्जन वर्ण रहें। जैसे—

भोः+श्रीश!=भो श्रीश!, भोः+देवा=भो देवाः! भोः+लक्ष्मि=भो लक्ष्मि! भोः+विद्वन्=भोविद्वन्! भगोः+नमस्ते =भगोनमस्ते! अघोः+याहि=अघोयाहि! देवाः+नम्याः =देवा नम्याः, नराः+यान्ति=नरायान्ति इत्यादि।

(६) "रोरि" (पा० सू०)

विसर्ग स्थानीय र् के बाद यदि रेफ हो तो पूर्व र् का लोप हो जाता है। इससे रेफ का लोप हो जाने पर—

(७) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (पा० सू०)

यदि रेफ या ढ् का लोप कराने वाला रेफ या ढ् आगे हो तो उसके पूर्व के ह्रस्व अ, इ तथा उ को दीर्घ हो जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि रेफ तथा ढ् के लोप हो जाने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है। ऐसा अर्थ करने पर 'करणीयम्' यहाँ पर 'अनीयर्' के रेफ का लोप होने के कारण य के बाद दीर्घ हो जायगा। वैसे ही 'चकार' में च के बाद दीर्घ हो जायगा क्योंकि यहाँ भी रेफ का लोप हुआ है। इसलिए जहाँ पर रेफ के परे रेफ का या ढकार के परे ढकार का लोप होगा वहीं पर इससे दीर्घ होगा। जैसे—

पुनर् + रमते = "रोरि" से रेफ का लोप करने के बाद पुन + रमते, तत्र दीर्घ होकर पुनारमते। ऐसे ही—निः + रसः = नीरसः, पितः + रक्ष = पितारक्ष, निः + रोगः = नीरोगः। भानुः + राजते = भानूराजते, विधिः + राजते = विधीराजते, मातः + रक्ष = मातारक्ष, लिढ् + ढः = लीढः इत्यादि।

(८) "एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि" (पा० सू०)

यदि व्यञ्जन वर्ण आगे हो तो 'एषः' और 'सः' के विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे—एषः + रामः = एषरामः, एषः + शिवः = एषशिवः, सः + कृष्णः = सकृष्णः, सः + वन्दनीयः = सवन्दनीयः, एषः + गच्छति = एषगच्छति, सः + पठति = सपठति आदि।

नोट—(१) यदि एषः और सः में विसर्ग के पहले 'क' हो तो विसर्ग का लोप नहीं होता है। जैसे—एषकः + रुद्रः = एषकोरुद्रः सकः + रामः = सकोरामः इत्यादि।

(२) यदि एषः और सः के पहले क्रम से अन् और अ आवे तो भी विसर्ग का लोप नहीं होता है। जैसे—असः +

शिवः=असश्शिवः, अनेषः+शिवः=अनेषश्शिवः।

(३) स्वादि सन्धि के सूत्र संख्या ४ तथा ८ से यह फलित हुआ कि 'एषः' और 'सः' के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि उसके आगे 'अ' को छोड़कर कोई भी वर्ण रहे।

(६) "सोऽचि लोपेचेत् पादपूरणम्" (पा० सू०)

अच् परे रहने से 'स' इसके 'सु' का लोप होता है यदि लोप करने से पाद की पूर्ति होती हो। जैसे—

सैष दाशरथी रामः सैष भीमोमहाबलः।
सैष कर्णो महात्यागी, सैष राजा युधिष्ठिरः॥

यहाँ पर स के बाद सु का लोप हो जाने पर वृद्धि हो गयी है।

इति स्वादि सन्धिः

---

(३)—अथ सुबन्त प्रकरणम्

"अपदं न प्रयुञ्जीत" इस नियम के अनुसार संस्कृत में जो पद नहीं है उसका प्रयोग नहीं होता है। जैसे 'बालकः पठति', न कि 'बालक पठति'। 'बालकं पश्य', न कि 'बालक पश्य' इत्यादि।

"सुप्तिङन्तंपदम्" (पा० सू०) के अनुसार सुबन्त और तिङन्त को 'पद' कहते हैं। 'सुप्' जिसके अन्त में हो वह '*सुबन्त*' है और 'तिङ्' जिसके अन्त में हो वह है '*तिङन्त*'।

सु, औ, जस् आदि २१ 'सुप्' विभक्तियाँ प्रातिपदिक से तथा ङ्यन्त, आबन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों से आती हैं। अतः 'प्रातिपदिक' का ज्ञान यहाँ अपेक्षित है।

प्रातिपदिक

"अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" (पा० सू०)

अर्थवान् शब्द को *प्रातिपदिक* कहते हैं, किन्तु वह अर्थवान् शब्द धातु से भिन्न, प्रत्यय से भिन्न और प्रत्ययान्त तदादि (प्रत्यय अन्त में हो और उसी प्रत्यय की प्रकृति आदि में हो, जैसे हरिषु, करोषि आदि) शब्दों से भिन्न होना चाहिए। जैसे कृष्ण, दार, जल, नीर, तीर आदि शब्द 'प्रातिपदिक' हैं। किन्तु भू, गम् आदि धातु; तृ, अक आदि प्रत्यय तथा 'हरिषु, करोषि, आदि प्रत्ययान्त तदादि शब्दों को प्रातिपदिक नहीं कहते हैं। इसलिए

हन् धातु के लङ् लकार में 'अहन्' यहाँ पर नकार का लोप नहीं होता है। और 'हरिषु' 'करोषि' में प्रत्ययों से या प्रत्ययान्त समुदायों से पुनः स्वादि विभक्ति नहीं होतो है।

"कृत्तद्धित समासाश्च" (पा० सू०)

कृत् प्रत्ययान्त, तद्धित प्रत्ययान्त एवं समास वाले शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं। जैसे—कृत्प्रत्यान्त—पाचक, कारक कर्तव्य, गत, गतवत् आदि; तद्धितप्रत्ययान्त—दाशरथि, शालीय, पितृव्य, मातामह, पितामह, आदि; राज-पुरुष, पीताम्बर, अहिनकुल, पाणिपाद आदि समस्त शब्द प्रातिपदिक संज्ञक हैं अतः इनसे सुप् विभक्ति आती है।

विभक्ति—(Case-affix)

सु, औ, जस् आदि २१ विभक्तियों की प्रथमा, द्वितीया आदि सात संज्ञाएँ हैं। प्रथमा, द्वितोया आदि प्रत्येक में तीन २ विभक्तियाँ हैं, जिन्हें 'त्रिक' कहते हैं।

वचन—(Number)

प्रत्येक प्रथमा आदि विभक्ति में एक वचन, द्विवचन और बहुवचन, ये तीन वचन (संख्या) होते हैं। एक वस्तु के लिए एकवचन का प्रयोग होता है। जैसे—एक बालक के लिए 'बालकः'। दो पदार्थ के लिए द्विवचन होता है। जैसे—दो लड़कों के लिए 'बालकौ'। तीन या तोन से अधिक में बहुवचन होता है। 'जैसे—तीन या तीन से अधिक लड़कों के लिए 'बालकाः'।

नोट:—कुछ शब्दों के वचन नियत हैं। जैसे—एक शब्द नित्य एकवचनान्त है। द्वि, उभ, अश्विन, रोदसी, द्यावापृथिवी आदि शब्द नित्य द्विवचनान्त हैं।

त्रि से लेकर अष्टादशन् शब्दतक सभी संख्यावाचक शब्द, अप्, दार, बहु, कति, आदि शब्द नित्य बहुवचनान्त हैं।

सुप् विभक्तियों की आकृतियाँ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (स्)	औ	जस् (अस्)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अस्)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि (अस्)	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस् (अस्)	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस	सुप् (सु)

लिङ्ग—(Gender).

तीन वचन की तरह प्रातिपदिक में तीन लिङ्ग भी होते हैं—पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक या क्लीबलिङ्ग। लिङ्गों का सम्बन्ध वस्तुतः शब्द के ही साथ होता है। अर्थ में भेद नहीं रहने पर भी लिङ्ग में भेद हो जाता है। जैसे—दार शब्द पुंलिङ्ग, स्त्री शब्द स्त्रीलिङ्ग और कलत्र शब्द नपुंसक। यहाँ तीनों के अर्थ समान ही हैं किन्तु लिङ्ग तीनों के तीन हैं। इसलिए पुरुष-वाचक शब्द पुंलिङ्ग, स्त्रीवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग और निर्जीव

वस्तु बोधक शब्द नपुंसक यह कहना असङ्गत है; क्योंकि घट, पट, आदि शब्द पुंलिङ्ग और अप् तटी, त्रिफला शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत 'पुलिस' शब्द भी इसी का परिचायक है।

अजन्त पुंलिङ्ग शब्द

अकारान्त 'राम' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्, रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	राम	रामौ	रामाः

देव, कृष्ण, बोध, गज, घट, पट, वृक्ष, अनुज, अग्रज, मातुल मातामह, पितामह आदि सभी अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप 'राम' शब्द के समान होते हैं।

नोट—(१) रेफ, ऋकार तथा मूर्धन्य षकार के बाद पदान्त नकार को छोड़कर (जैसे—'रामान्' में नकार) अगर नकार हो तो णकार हो जाता है। जैसे—चतुर्णाम्, पितृणाम् यूष्णाम् इत्यादि।

(२) यदि रेफ, ऋकार तथा षकार के बाद तथा नकार से पूर्व बीच में अट्, कवर्ग, पवर्ग, आ, तथा (ं) में से एक या एक से अधिक वर्ण का व्यवधान हो तो भी नकार को णकार होता है यदि रेफ आदि निमित्त तथा 'न' दोनों एक ही पद में हों। जैसे—

रामेण, रामाणाम्, हरीणाम्, धानुष्काणाम् इत्यादि। किन्तु 'कृष्णानाम्' यहाँ णत्व नहीं होगा, क्योंकि षकार और नकार के बीच 'ण' का व्यवधान है जो कि पूर्वोक्त अट् कवर्ग पवर्ग आ तथा अनुस्वार से भिन्न है।

(३) इसी तरह 'रामनाम' में भी 'नाम' वाले नकार को णकार नहीं होगा, क्यों कि रेफ रूप निमित्त और नकार एक पद में नहीं हैं, दोनों दो पदों में हैं।

(४) इण तथा कवर्ग के बाद आदेश सम्बन्धी या प्रत्यय सम्बन्धी 'सकार' हो तो उसे मूर्धन्य 'षकार' हो जाता है।

जैसे—हरिषु, भानुषु, धातृषु, रामेषु, वाक्षु इत्यादि।

शब्दों के रूप बनाने में छात्रों को इन नियमों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

अकारान्त पुंलिङ्ग होने पर भी 'सर्वादि' गण के शब्दों के सब रूप 'राम' शब्द के समान नहीं होते हैं। जैसे—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्

	एकव०	द्विव०	बहुव०
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः
प०	सर्वस्मात्	"	"
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु
सम्बो०	सर्व	सर्वौ	सर्वे

रेखांकित रूपो में ही विशेषता है, शेष रूप तो रामवत् है।

'सर्वादि' गण में ३५ शब्द हैं। इनके ही रूप 'सर्व' शब्द के समान होते हैं। वे शब्द ये हैं—

सर्व, विश्व, उभ, उभय, 'डतर, डतम', (ये दोनों प्रत्यय हैं) अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, 'पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर', (ये सातो शब्द व्यवस्था अर्थात् नियमतः अवधिसापेक्ष अर्थ में और संज्ञा से भिन्न में ही सर्व-नाम संज्ञक हैं), 'स्व' (यह शब्द आत्मीय और आत्मा ही अर्थों में 'सर्वनाम' है न कि ज्ञाति और धन अर्थों में), 'अन्तर' (शब्द बहिर्योग=बहिर्विद्यमान अर्थात् बाह्य अर्थ में तथा उपसंव्यान= परिधानीय अर्थों में सर्वनाम है), त्यद्, तद्, एतद्, इदम्, अदस् एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु और किम्, ये नौ शब्द त्यदादि कहलाते हैं।

नोटः—(१) सर्वादि शब्दों का यदि अपना मुख्य अर्थ नहीं रहेगा अर्थात् ये यदि किसी की संज्ञा रूप से या उपसर्जन=गौण

रूप से प्रयुक्त होंगे, तो सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी। जैसे—किसी का नाम यदि सर्व है तो वहाँ 'सर्वाय' देहि होगा न कि 'सर्वस्मै'। इसी तरह सर्व को जीतने वाला (सर्वान् अतिक्रान्तः अतिसर्वः) अतिसर्व के भी रूप 'अतिसर्वे' 'अतिसर्वस्मै' आदि नहीं होंगे अपितु 'अतिसर्वाः' 'अति-सर्वाय' आदि।

(२) सर्वादि शब्दों के साथ द्वन्द्व समास करने पर केवल 'जस्' में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसे—वर्णाश्रमे-तरे, वर्णाश्रमे तराः। 'आम्' में 'वर्णाश्रमेतराणाम्'।

(३) पूर्वादि नौ शब्दों में जस्, ङसि तथा ङि विभक्तियों में सर्वनाम प्रयुक्त कार्य विकल्प से होता है। यथा—पूर्वे-पूर्वाः, पूर्वस्मात्—पूर्वात्, पूर्वस्मिन्-पूर्वे। ऐसे ही परे-पराः आदि समझना चाहिए।

(४) तृतीया समास में भी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है। जैसे—मासेन पूर्वाय—मासपूर्वाय, न कि पूर्वस्मै।

(५) 'नेम' शब्द को जस् विभक्ति में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसे—नेमे—नेमाः। शेषरूप सर्ववत्।

(६) प्रथम, चरम, तय प्रत्ययान्त (यथा—द्वितय, तृतय आदि), अल्प, अर्घ तथा कतिपय शब्दों को भी प्रथमा बहुवचन हो (जस्) में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसे—प्रथमे-प्रथमाः, चरमे—चरमाः इत्यादि। इनके शेष रूप 'राम' की तरह होंगे, न कि 'सर्व' की तरह।

(७) 'तीय' प्रत्ययान्त शब्दों को ङे, ङसि, ङि आदि ङित् विभक्तियों में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसे—द्वितीयस्मै-द्वितीयाय, द्वितीयस्मात्-द्वितीयात्, द्वितीयस्मिन्-द्वितीये। इसी तरह तृतीय का समझना चाहिए।

'निर्जर' शब्द के भी कुछ रूप 'राम' शब्द से भिन्न होते हैं। अजादि विभक्तियों में 'जर' को 'जरस्' विकल्प से हो जाता है। जैसे—

	एक व०	द्वि व०	बहुव०
प्र०	निर्जरः	निर्जरसौ	निर्जरसः
द्वि०	निर्जरसम्	निर्जरसौ	निर्जरसः
तृ०	निर्जरसा	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
च०	निर्जरसे	"	निर्जरेभ्यः
प०	निर्जरसः	"	"
ष०	निर्जरसः	निर्जरसोः	निर्जरसाम्
स०	निर्जरसि	निर्जरसोः	निर्जरेषु
सम्बो०	निर्जर	निर्जरसौ	निर्जरसः

पक्षमें राम शब्द के समान ही रूप होते हैं।

पाद, दन्त आदि शब्दों को शस् विभक्ति से लेकर सुप् तक पद्, दत् आदि आदेश विकल्प से होते हैं। यथा—पदः—पादान्, पदा-पादेन, दतः-दन्तान् इत्यादि।

अकारान्त 'विश्वपा' (विश्वपालक) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः

	एकव०	द्विव०	बहुव०
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
च०	विश्वपे	"	विश्वपाभ्यः
प०	विश्वपः	"	"
ष०	"	विश्वपोः	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	"	विश्वपासु
सम्बो०	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः

इसी तरह शङ्खध्मा (शंख फूँकनेवाला), सोमपा, मधुपा, कीलालपा आदि शब्दो के रूप होते हैं।

इकारान्त 'हरि' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०	हरिम्	हरी	हरीन्
तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०	हरये	"	हरिभ्यः
प०	हरेः	"	"
ष०	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बो०	हरे	हरी	हरयः

इसी तरह ह्रस्व इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। जैसे—कवि, रवि, मुनि, कपि, अग्नि, गिरि, निधि, विधि

आदि। किन्तु पति और सखि शब्दों के रूप हरि के समान नहीं होते हैं। जैसे 'पति' शब्दः—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	हे पती	हे पतयः

नोटः—यदि पति शब्द समास के अन्त में आता है, जैसे—श्रीपति, भूपति, नरपति, सीतापति आदि शब्दों मे तो हरि शब्द के समान रूप होते हैं यथा—

तृतीया एकवचन—भूपतिना
चतुर्थी एकवचन—भूपतये
पञ्चमी और षष्ठी एकवचन—भूपतेः
सप्तमी एकवचन—भूपतौ
शेषरूप समान ही होते हैं।

इकारान्त 'सखि' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः

	एकव०	द्विव०	बहुव०
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

नोटः—सुसखि, अतिसखि, परमसखि आदि शब्दों के रूप तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, और सप्तमी के एकवचन में सखि शब्द के रूपों से भिन्न होते हैं। जैसे—

तृतीया एकवचन—सुसखिना
चतुर्थी एकवचन—सुसखये
पञ्चमी एकवचन—सुसखेः
षष्ठी एकवचन—सुसखेः
सप्तमी एकवचन—सुसखौ

(शेष रूप पूर्ववत्)

परन्तु सखीमति-क्रान्तः (सखी को अतिक्रमण करनेवाला) इस अर्थ में 'अतिसखि' शब्द हो तो 'अतिसखायौ' आदि रूप नहीं होते हैं। इसके रूप अतिसखिः, अतिसखी, अतिसखयः इत्यादि हरि शब्द के समान होते हैं।

दीर्घ इकारान्तं 'प्रधी' शब्द (प्रकृष्टं ध्यायतियः)

	एकवचन	द्वि व०	बहु व०
प्र०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च०	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
प०	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
ष०	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु
सम्बो०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः

नोट—प्रकृष्टा धी यस्य इस अर्थ में 'प्रधी' शब्द के कुछ भिन्न रूप होते हैं। जैसे—ङे प्रध्यै, ङसिङस्—प्रध्याः, आम्—प्रधीनाम्, ङि—प्रध्याम्, सम्बोधन प्रधि ! शेष पूर्ववत्।

दीर्घ ईकारान्त 'सुधी' शब्द के रूप भिन्न होते हैं।

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
प०	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
ष०	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बो०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः

ह्रस्व उकारान्त 'साधु' शब्द

	एक व०	द्वि व०	बहु व०
प्र०	साधुः	साधू	साधवः
द्वि०	साधुम्	साधू	साधून्
तृ०	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
च०	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पं०	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
ष०	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
स०	साधौ	साध्वोः	साधुषु
सम्बो०	साधो	साधू	साधवः

प्रभु, रिपु, शत्रु, विष्णु, भानु, शम्भु, जिष्णु, (जीतने वाला) भविष्णु, (होनहार), सहिष्णु, गुरु, केतु, राहु, पशु, शिशु आदि शब्दों के रूप साधु के समान होते हैं।

दीर्घ ऊकारान्त 'हूहू' (गन्धर्व) शब्द

	एक व०	द्वि व०	बहु व०
प्र०	हूहू	हूह्वौ	हूह्वः
द्वि०	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्
तृ०	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
च०	हूह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पं०	हूह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
ष०	हूह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
स०	हूह्वि	हूह्वोः	हूहूषु
सम्बो०	हूहूः	हूह्वौ	हूह्वः

खलं पुनातियः 'खलपू' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
द्वि०	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृ०	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
च०	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
प०	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
ष०	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
स०	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
सम्बो०	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः

इसी तरह सुष्ठुलुनाति यः 'सुलूः', केदारं लुनातिय. 'केदारलूः' इत्यादि शब्दों के रूप खलपू की तरह होते हैं। एवं वर्षासु भवति 'वर्षाभूः' (मेंढक) वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः इत्यादि खलपू की तरह समझना चाहिए।

ह्रस्व ऋकारान्त शब्दों में तृ (तृन, तृच्) प्रत्ययान्त कर्तृ, हर्तृ आदि शब्दों में तथा स्वसृ (बहन), नप्तृ (नाती), नेष्टृ (सोमयाग के ऋत्विक्), त्वष्टृ (विश्वकर्मा, बढई आदि), क्षत्तृ (ब्रह्मा, सारथी, दासीपुत्र आदि), होतृ (हवन करने वाला) पोतृ (पोता), प्रशास्तृ (राजा, शासक, सूबेदार आदि) तथा उद्गातृ (यज्ञ में सामवेद का गान करने वाला , शब्दों में उपधा को सम्बुद्धि (सम्बोधन का सु) को छोड़कर सर्वनामस्थान (सु, औ, जस, अम्, औट्) में दीर्घ हो जाता है। इसके अतिरिक्त पितृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, आदि शब्दों में दीर्घ नहीं होता है।

ह्रस्व ऋकारान्त 'दातृ' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ	दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
प०	दातुः	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
ष०	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
स०	दातरि	दात्रोः	दातृषु
सम्बो०	दातः	दातारौ	दातारः

इसी तरह तृन् और तृच् कृत् प्रत्ययान्त ऋकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। जैसे—कर्तृ, गन्तृ, विधातृ, श्रोतृ, रक्षितृ, नेप्तृ (नाती), पोतृ (पोता), ज्ञातृ, धातृ, होतृ आदि।

ऋकारान्त 'पितृ' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
प०	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
ष०	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बो०	पितः	पितरौ	पितरः

इसी तरह भ्रातृ, जामातृ (दमाद), नृ (मनुष्य), आदि शब्दों के रूप होते हैं। मातृ के भी रूप पितृ के समान ही होते हैं केवल द्वितीया बहुवचन में "मातॄः" होता है। 'नृ' शब्द के षष्ठी बहुवचन में दीर्घ विकल्प से होता है। अतः नॄणाम् और नृणाम् दो रूप होते हैं।

उकारान्त शब्द होने पर भी 'क्रोष्टु' (सियार) शब्द के रूप निम्नलिखित होते हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वि०	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृ०	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
च०	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	"	क्रोष्टुभ्यः
प०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	"	"
ष०	" "	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
स०	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	" "	क्रोष्टुषु
सम्बो०	क्रोष्टो	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः

दीर्घ ॠकारान्त 'कॄ' शब्द

	एकव०	द्वि०	बहुव०
प्र० सम्बो०	कीः, कॄः	किरौ, क्रौ	किरः, क्रः
द्वि०	किरम्, कॄम्	" "	" कॄन्
तृ०	किरा, क्रा	कीर्भ्याम्, कॄभ्याम्	कीर्भिः, कॄभिः
च०	किरे, क्रे	" "	कीर्भ्यः, कॄभ्यः
प०	किरः, क्रः	" "	" "

	एकव०	द्विव०	बहुव०
ष०	किरः, क्रः	किरोः, क्रोः	किराम्, क्राम्
स०	किरि, क्रि	" "	कीर्षु, कॄषु

ऐसे ही 'तृ' शब्द के रूप होते हैं।

लृकारान्त 'गम्लृ' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	गमा	गमलौ	गमलः
द्वि०	गमलम्	"	गमॄन्
तृ०	गमला	गम्लृभ्याम्	गम्लृभिः
च०	गम्ले	"	गम्लृभ्यः
प०	गमुल्	"	"
ष०	"	गम्लोः	गमॄणाम्
स०	गमलि	"	गम्लृषु
सम्बो०	गमल्	गमलौ	गमलः

इसी तरह 'शक्लृ' शब्द के रूप होते हैं।

एकारान्त 'से' (सकाम) शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	सेः	सयौ	सयः
द्वि०	सयम्	"	"
तृ०	सया	सेभ्याम्	सेभिः
च०	सये	"	सेभ्यः
प०	सेः	सेभ्याम्	सेभ्यः

	एकव०	द्विव०	बहुव०
ष०	सेः	सयोः	सयाम्
स०	सयि	”	सेषु
सम्बो०	से	सयौ	सयः

ऐकारान्त 'रै' (धन) शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	राः	रायौ	रायः
द्वि०	रायम्	”	”
तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	”	राभ्यः
प०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायोः	रायाम्
स०	रायि	”	रासु
सम्बो०	राः	रायौ	रायः

ओकारान्त 'गो' शब्द (गाय या बैल)

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र० सम्बो०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	”	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	”	गोभ्यः
प०	गोः	”	”
ष०	”	गवोः	गवाम्
स०	गवि	गवोः	गोषु

ऐसे ही 'स्मृतो' 'सुद्यो' आदि शब्दों के रूप होते हैं।

औकारान्त 'ग्लौ' (चन्द्र) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० सम्बो०	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	"	"
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
च०	ग्लावे	"	ग्लौभ्यः
प०	ग्लावः	"	ग्लौभ्यः
ष०	"	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	"	ग्लौषु

स्त्रीलिङ्ग 'नौ' शब्द के रूप ग्लौ की तरह होते हैं।

इत्यजन्ताः पुंलिङ्गाः

अजन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

आकारान्त 'रमा' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	"	रमाभ्यः
पञ्चमी	रमायाः	"	"
षष्ठी	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	"	रमासु
सम्बोधन	रमे	रमे	रमाः

ऐसे ही आकारान्त स्त्रीलिङ्ग दुर्गा, वामा, अबला, कन्या, अजा, अश्वा आदि शब्दों के रूप होते हैं। किन्तु अम्बा, अक्का और अल्ला (माता) शब्दों के सम्बोधन के एक वचन में अम्ब, अक्क और अल्ल रूप होते हैं। शेष रूप रमा की तरह।

नोटः—अम्बाडा, अम्बाला और अम्बिका शब्द की सम्बुद्धि में ह्रस्व नहीं होता है। जैसे—हे अम्बाडे, हे अम्बाले, हे अम्बिके।

'जरा' शब्द के रूप निम्नलिखित होते हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जरा	जरसौ—जरे	जरसः-जराः
सम्बो०	जरे	” ”	” ”
द्वि०	जरसम्-जराम्	” ”	” ”
तृ०	जरसा-जरया	जराभ्याम्	जराभिः
च०	जरसे-जरायै	”	जराभ्यः
प०	जरसः-जरायाः	”	”
ष०	” ”	जरसो-जरयोः	जरसाम्-जराणाम्
स०	जरसि-जरायाम्	” ”	जरासु

सर्वनाम आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भी रूप रमा से भिन्न होते हैं। जैसेः—

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सम्बो०	सर्वे	”	”
द्वि०	सर्वाम्	”	”
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	”	सर्वाभ्यः
प०	सर्वस्याः	”	”
ष०	”	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	”	सर्वासु

इसी तरह विश्वा, अन्या, अन्यतरा आदि शब्दों के रूप होते हैं।

नोटः—(१) उत्तरपूर्वा, दक्षिणपूर्वा आदि शब्दों में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। अतः उत्तरपूर्वस्यै—उत्तरपूर्वायै, उत्तरपूर्वस्याः २ उत्तरपूर्वायाः २ उत्तरपूर्वासाम्–उत्तरपूर्वाणाम्, उत्तरपूर्वस्याम्–उत्तरपूर्वायाम् इत्यादि रूप होंगे। इसी तरह द्वितीया और तृतीया शब्दों के केवल ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तियों में द्वितीयस्यै—द्वितीयायै इत्यादि रूप होते हैं। इनके शेष रूप रमा के समान होते हैं।

(२) नासिका और निशा शब्दों के रूप रमा की तरह होते हैं। किन्तु शस् विभक्ति से सुप् तक नासिका के स्थान में 'नस्' और निशा की जगह 'निश्' भी विकल्प से होता है। अतः नसः, नसा, नोभ्याम्, नोभिः तथा निशः, निशा, निड्भ्याम् निड्भिः इत्यादि भी रूप होंगे।

ह्रस्व इकारान्त 'मति' (बुद्धि) शब्द

	एकवचन०	द्विवचन०	बहुवचन
प्र०	मतिः	मती	मतयः
सम्बो०	मते	"	"
द्वि०	मतिम्	"	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मत्यै–मतये	"	मतिभ्यः
प०	मत्याः–मतेः	"	"
ष०	" "	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम्–मतौ	"	मतिषु

इसी तरह श्रुति, स्मृति, कीर्ति, कान्ति आदि इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

दीर्घ ईकारान्त 'गौरी' शब्द

	एक व०	द्विव०	बहुव०
प्र०	गौरी	गौर्यौ	गौर्यः
द्वि०	गौरीम्	"	गौरीः
तृ०	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
च०	गौर्यै	"	गौरीभ्यः
प०	गौर्याः	"	"
ष०	"	गौर्योः	गौरीणाम्
स०	गौर्याम्	"	गौरीषु
सम्बो०	गौरि	गौर्यौ	गौर्यः

ऐसे ही वाणी, काली, नदी, सखी, राज्ञी, पत्नी आदि शब्दों के रूप होते हैं।

नोटः—अवी (रजस्वला), तन्त्री (वीणा के तार), तरी (नौका) लक्ष्मी, धी (बुद्धि), ह्री (लज्जा) और श्री (लक्ष्मी) शब्दों के रूप प्रथमा एकवचन में विसर्गान्त-अवीः, तन्त्रीः आदि होते हैं।

दीर्घ ईकारान्त 'स्त्री' शब्द

	एकव०	द्वि०	बहुव०
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
सम्बो०	स्त्रि	"	"
द्वि०	स्त्रियम्-स्त्रीम्	"	स्त्रियः-स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रिभिः
च०	स्त्रियै	"	स्त्रीभ्यः

प०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	"	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	"	स्त्रीषु

स्त्रियम् अतिक्रान्ता इस अर्थ में स्त्रीलिङ्ग 'अतिस्त्रि' शब्द के रूप—'टा' में अतिस्त्रिया, 'ङे' में अतिस्त्रियै-अतिस्त्रये, 'ङसि-ङस' में अतिस्त्रियाः-अतिस्त्रेः, 'ङि' में अतिस्त्रियाम्-अतिस्त्रौ। शेष रूप पुंलिङ्ग अतिस्त्रि के समान। केवल 'शस' में 'अतिस्त्रीन्' की जगह अतिस्त्रीः।

स्त्रियम् अतिक्रान्तः इस अर्थ में पुंलिङ्ग 'अतिस्त्रि' शब्द के रूप

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	अतिस्त्रिः	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः
स०	अतिस्त्रे	"	"
द्वि०	अतिस्त्रियम्-अतिस्त्रिम्	"	अतिस्त्रीन्
तृ०	अतिस्त्रिणा	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
च०	अतिस्त्रये	"	अतिस्त्रिभ्यः
प०	अतिस्त्रेः	"	"
ष०	"	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रीणाम्
स०	अतिस्त्रौ	"	अतिस्त्रिषु

'श्री' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
सम्बो०	श्रीः	"	"

द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै-श्रिये	,,	श्रीभ्यः
प०	श्रियाः–श्रियः	,,	,,
ष०	,, – ,,	श्रियोः	श्रीणाम्–श्रियाम्
स०	श्रियाम्-श्रियि	,,	श्रीषु

सुष्ठु धीः इस अर्थ में 'सुधीः' सुधियौ, सुधियः आदि श्रीवत्। सुष्ठु ध्यायति या सुष्ठुधी र्वा यस्याः इन अर्थों में 'सुधी' शब्द के रूप 'श्री' के समान और पुंलिङ्ग 'सुधी' के समान भी। इसी तरह प्रकृष्टा धीः 'प्रधीः', प्रध्यौ, प्रध्यः आदि गौरीवत्। प्रकृष्टं ध्यायति अथवा प्रकृष्टा धीः यस्याः इन अर्थों में 'प्रधी' लक्ष्मी-वत् तथा पुंलिङ्ग 'प्रधी' के समान।

ह्रस्व उकारान्त 'धेनु' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
सम्बो०	धेनो	,,	,,
द्वि०	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै–धेनवे	,,	धेनुभ्यः
प०	धेन्वाः–धेनोः	,,	,,
ष०	,, — ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्-धेनौ	,,	धेनुषु

'क्रोष्टु' के स्त्रीलिङ्ग में क्रोष्ट्री, क्रौष्ट्र्यौ, क्रोष्ट्र्यः आदि गौरीवत्।

दीर्घ ऊकारान्त 'वधू' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
सम्बो०	वधु	,,	,,
द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
प०	वध्वाः	,,	,,
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु

श्वश्रू (सास), चमू (सेना), कर्कन्धू (ईरानी बैर, पेड़, या फल), यवागू (जौ से बनी हुई लप्सी), (चम्पू गद्य-पद्यमयकाव्य) आदि शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं। 'सुभ्रू' शब्दके रूप सुभ्रूः सुभ्रुवौ, सुभ्रुवः सुभ्रुवम्, सुभ्रुवौ, सुभ्रुवः आदि 'श्री' शब्द के समान। सम्बुद्धि में 'हे सुभ्रूः'। किन्तु 'वर्षाभू' (भेकी या पुनर्नवा) शब्दके रूप वर्षाभूः, वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः, वर्षाभ्वम्' वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः आदि। शेषरूप 'वधू' की तरह। इसी तरह 'पुनर्भू' आदि शब्दों के रूप होते हैं।

स्वसृ, 'तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ तथा मातृ इन सातों को स्वस्रादि कहते हैं। इनमें ङीप् (ई) नहीं होता है।

इनमें स्वसृ (बहिन) के रूप स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः आदि धातृ के समान। केवल 'शस्' में स्वसॄः। ननाद्रृ या ननन्दृ (पतिकी बहिन) ननान्दा, ननान्दरौ, ननान्दरः, ननान्दरम्, ननन्दरौ, ननान्दॄः। शेषरूप धातृवत्। दुहितृ (कन्या), यातृ (जिठानी और देवरानी), मातृ शब्दोंके रूप पितृवत् होते हैं केवल 'शस्' में दुहितॄः यातॄः तथा मातॄः। तिसृ और चतसृ शब्दों के रूप संख्या-वाचक शब्दों में देखना चाहिए। 'द्यो' शब्द के रूप गो शब्द के समान, 'रै' (सम्पत्ति) के रूप पुलिङ्ग 'रै' के समान, और नौ (नाव) शब्द के रूप 'ग्लौ' के समान होते हैं

इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

अजन्त नपुंसक शब्द

अकारान्त 'फल' शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
द्वि०	फलम्	फले	फलानि

शेष रूप राम शब्द के समान। ऐसे ही ज्ञान, धन, वन, मित्र आदि शब्दों के रूप होते हैं।

डतर तथा डतम प्रत्यान्त कतर एवं कतम शब्द तथा अन्य, अन्यतर और इतर शब्दों के सु, अम् की जगह अदड् (अद्) आदेश होता है। अतः कतरत्-कतरद्, कतरे, कतराणि; कतमत् कतमद्, कतमे, कतमानि; अन्यत्-अन्यद्, अन्ये, अन्यानि; अन्यतरत्-अन्यतरद्, अन्यतरे, अन्यतराणि; इतरत्-इतरद्, इतरे, इतराणि रूप होते हैं। तृतीया से लेकर शेषरूप सर्व के समान होते हैं। नोटः—'एकतर' से एकतरम्, एकतरे, एकतराणि आदि फल के समान रूप होंगे।

अविद्यमाना जरा यस्य (कुलस्य) तत् अजरम् (कुलम्। इस 'अजर' शब्द के रूप निम्नलिखित होते हैं जैसेः—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अजरम्	अजरसी-अजरे	अजरांसि-अजराणि
सम्बो०	अजर	,, — ,,	,, ,,

द्वि०	अजरसम्-अजरम्	अजरसी-अजरे	अजरांसि-अजराणि
तृ०	अजरसा-अजरेण	अजराभ्याम्	अजरैः
च०	अजरसे-अजराय	„	अजरेभ्यः
प०	अजरसः-अजरात्	„	„
ष०	अजरसः-अजरस्य	अजरसोः-अजरयोः	अजरसाम्-अजराणाम्
स०	अजरसि-अजरे	„ — „	अजरेषु

हृदय, उदक तथा आस्य शब्दों के सुट्में (सु, औ, जस् अम्, औट्) फल के समान रूप होते हैं। शसादि विभक्तियां में उनके स्थानों में क्रमसे हृद्-उदन् तथा आसन् आदेश विकल्प से होता है। इसलिए हृन्दि, हृदा, हृद्भ्याम्, हृद्भिः; उदानि, उद्ना, उद्भ्याम् उदभिः, आसानि, आस्ना, आसभ्याम्, आसभिः इत्यादि और हृदयानि, हृदयेन, हृदयाभ्याम्, हृदयैः इत्यादि 'फल'-वत् भी रूप होंगे। इसीतरह मांसम् मांसे, मांसानि, मांसम्, मांसे, मांसि, मांसानि, - मांसेन, मान्भ्याम् मान्भिः-मांसैः इत्यादि रूप होते हैं।

ह्रस्व इकारान्त 'वारि' (जल) शब्द

	एकव०	द्वि०	बहुव०
प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	वारि	„	„
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	„	वारिभ्यः
प०	वारिणः	„	„

ष०	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	"	वारिषु
सम्बो०	वारे-वारि	वारिणी	वारीणि

जिन शब्दों के पुंलिङ्ग तथा नपुंसक में समान अर्थ होते हैं ऐसे इकारान्त नपुंसक शब्दों के तृतीयादि अजादि विभक्तियों में (जैसे टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस् २, आम्, ङि में) पुंलिङ्ग के समान भी रूप होते हैं। जैसेः—'अनादि' शब्द के ङे में अनादये-अनादिने, ङसि तथा ङस् में अनादेः—अनादिनः, ओस् में-अनाद्योः—अनादिनोः, आम् में केवल अनादीनाम्, ङि में—अनादौ—अनादिनि। शेषरूप वारि के समान। इसी तरह 'सुधि' शब्द के टा-में—सुधिया-सुधिना, ङे में सुधिये-सुधिने; ङसि तथा ङस् में—सुधियः—सुधिनः, ओस् में—सुधियोः—सुधिनोः, आम् में—सुधियाम्—सुधीनाम्, ङि में—सुधियि-सुधिनि। अवशिष्ट रूप 'वारि' की तरह।

'दधि' शब्द के रूप अजादि तृतीयादि विभक्तियों में निम्नलिखित होते हैं। दध्ना, दध्ने, दध्नः २, दध्नोः २, दध्नाम्, दध्नि—दधनि। शेष रूप वारि की तरह होते हैं। ऐसे ही अस्थि (हड्डी), सक्थि (जांघ), और अक्षि (नेत्र) शब्द के रूप दधि के समान होते हैं। जैसे:—

(सक्थि, सक्थिनी, सक्थीनि), २ सक्थ्ना सक्थ्ने, सक्थ्नः २ सक्थ्नोः २ सक्थ्नाम्। सक्थ्नि-सक्थनि शेषरूप वारिवत्। (अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि) २, अस्थ्ना, अस्थ्ने, अस्थ्नः २,

अस्थ्नोः २, अस्थ्नाम्, अस्थ्नि-अस्थनि शेष रूप वारि की तरह। (अक्षि, अक्षिणी, अक्षीणि) २' अक्ष्णा, अक्ष्णे, अक्ष्णः १, अक्ष्णः, अक्ष्णोः २ अक्ष्णाम्, अक्ष्णि-अक्षणि शेष रूप वारि के समान ।

उकारान्त 'मधु' शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुने	,,	मधुभ्यः
प०	मधुनः	,,	,,
ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	,,	मधुषु
सम्बो०	मधो-मधु	मधुनी	मधूनि

सानु (शिखर) शब्द के सुट् में मधुवत् रूप होते हैं। शसादि विभक्तियों में सानु की जगह विकल्पसे 'स्नु' भी आदेश होता है। अतः-स्नूनि-सानूनि, स्नुना-सानुना, स्नुभ्याम्-सानुभ्याम्, स्नुभिः-सानुभिः स्नुने-सानुने, स्नुनः-सानुनः २, स्नुनोः-सानुनोः २, स्नूनाम्-सानूनाम्, स्नुनि-सानुनि। शेष रूप 'मधु' की तरह।

नोट—स्नु और सानु पुंलिङ्ग भी हैं। इसलिए स्नवे—सानवे, स्नोः—सानोः आदि साधु शब्द के समान भी रूप होंगे।

'प्रियक्रोष्टु' शब्द के सुट् में मधु की तरह रूप होते हैं।

तृतीयादि अजादि विभक्तियों में प्रियक्रोष्ट्रा, प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टुः आदि भी रूप होते हैं।

शेष रूप प्रियक्रोष्टवे-प्रियक्रोष्टुने आदि 'सानु' की तरह होते हैं। अम्बु (जल) शब्द के रूप मधुवत्।

ऋकारान्त 'धातृ' (दधाति यत् तत् धातृ) शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	धात्रा-धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे-धातृणे	,,	धातृभ्यः
प०	धातुः-धातृणः	,,	,,
ष०	,, — ,,	धात्रोः-धातृणोः	धातॄणाम्
स०	धातरि-धातृणि	,, — ,,	धातृषु
सम्बो०	धातः-धातृ	धातृणी	धातॄणि

नोटः—(१) तृतीयादि अजादि विभक्तियों में प्रथम रूप पुंवद्भाव पक्षमें हैं। ऐसे ही 'ज्ञातृ' 'कर्तृ' आदि शब्दों के रूप होते हैं।

(२) नपुंसक में सभी दीर्घान्त शब्द ह्रस्वान्त हो जाते हैं। जैसेः—श्रीपा-श्रीप, सुधी-सुधि, प्रै-प्रि, सुनौ-सुनु इत्यादि। अतः इनके रूप अगन्त (अ, इ, उ, ऋ, लृ वर्णान्त) शब्दोंके समान ही होंगे।

इत्यजन्ताः नपुंसकलिंगाः

हलन्त पुंलिंग शब्द

इकारान्त 'विश्ववाह्' (सब को धारण करने वाला, विश्वम्भर)

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०सम्बो०	विश्ववाट्-विश्ववाड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
द्वि०	विश्ववाहम्	”	विश्वौहः
तृ०	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
च०	विश्वौहे	”	विश्ववाड्भ्यः
प०	विश्वौहः	”	”
ष०	”	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
स०	विश्वौहि	”	विश्ववाट्सु-ट्सु

ऐसे ही भारवाह्, हव्यवाह् (अग्नि) श्वेतवाह आदि शब्दों के रूप होते हैं।

'दुह्' शब्द के रूप धुक्-धुग्, दुहौ, दुहः आदि तथा भ्याम् आदि हलादि विभक्तियों में धुग्भ्याम्३, धुग्भिः, धुग्भ्यः२, धुक्षु रूप होते हैं।

अनडुह् (बैल) शब्द

प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
सम्बो०	अनड्वन्	”	”
द्वि०	अनड्वाहम्	”	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः

च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
प०	अनडुहः	”	”
ष०	”	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	”	अनडुत्सु

'सुदिव्' (शोभनाद्यौः यस्मिन्स सुदिव अर्थात्-स्वच्छ आकाश वाला दिन)

प्र०,सम्बो०	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वि०	सुदिवम्	”	”
तृ०	सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
च०	सुदिवे	”	सुद्युभ्यः
प०	सुदिवः	”	”
ष०	”	सुदिवोः	सुदिवाम्
स०	सुदिवि	”	सुद्युषु

राजन् शब्द

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
सम्बो०	राजन्	”	”
द्वि०	राजानम्	”	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्यम्	राजभिः
च०	राज्ञे	”	राजभ्यः
प०	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
ष०	”	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि-राजनि	”	राजसु

नोटः—'यज्वन्' (यज्ञकरनेवाला) तथा 'ब्रह्मन्' शब्दोंके रूप राजन् के समान होते हैं। केवल शसादि अजादि विभक्तियोंमें निम्नलिखित रूप होते हैं।

यज्वनः, यज्वना, यज्वने, यज्वनः२ यज्वनोः२, यज्वनाम्, यज्वनि।
ब्रह्मणः, ब्रह्मणा, ब्रह्मणे, ब्रह्मणः२, ब्रह्मणोः२, ब्रह्मणाम्, ब्रह्मणि।
आत्मन्, सुशर्मन् आदि शब्दों के रूप ब्रह्मन् की तरह होते हैं।

(वृत्रंहन्ति) 'वृत्रहन्' (इन्द्र) शब्द

प्र०	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
सम्बो०	वृत्रहन्	,,	,,
द्वि०	वृत्रहणम्	,,	वृत्रघ्नः
तृ०	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
च०	वृत्रघ्ने	,,	वृत्रहभ्यः
प०	वृत्रघ्नः	,,	,,
ष०	,,	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
स०	वृत्रघ्नि-वृत्रहणि	,,	वृत्रहसु

ऐसे ही पूषा, पूषणौ, पूषणः, आदि पूषन् (सूर्य) शब्द के तथा अर्यमा, अर्यमणौ, अर्यमणः आदि अर्यमन् (सूर्य) शब्द के रूप होते हैं।

मघवन् (इन्द्र) शब्द

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
सम्बो०	मघवन्	,,	,,

द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	,,	मघवद्भ्यः
प०	मघवतः	,,	,,
ष०	,,	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	,,	मघवत्सु

ऐसे ही भगवत्, धनवत्, गुणवत्, विद्यावत्, रूपवत्, भवत् (आप), यावत् तावत्, एतावत्, कियत्, इयत्, धीमत्, श्रीमत्, बुद्धिमत्, गोमत् आदि शब्दों के रूप होते हैं। किन्तु 'महत्' शब्द के रूप महान्, महान्तौ, महान्तः, महान्तम्, महान्तौ, महतः। शेष रूप पूर्वोक्त मघवत् की तरह। 'मघवन्' शब्द के एक तरह के रूप और होते हैं।

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
सम्बो०	मघवन्	,,	,,
द्वि०	मघवानम्	,,	मघोनः
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
प०	मघोनः	,,	,,
ष०	,,	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	,,	मघवसु

'युवन्' शब्द

प्र०	युवा	युवानौ	युवानः

सम्बो०	युवन्	युवानौ	युवानः
द्वि०	युवानम्	,,	यूनः
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	,,	युवभ्यः
प०	यूनः	,,	,,
ष०	,,	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	,,	युवसु

'श्वन्' (कुक्कुर) शब्द

श्वा, श्वानौ, श्वानः श्वानम्, श्वानौ शुनः, शुना, श्वभ्याम्, श्वभिः शुने, शुनः २, शुनोः२, शुनाम्, शुनि। शेष रूप युवन् की तरह।

इन्नन्त 'गुणिन्' शब्द

प्र०	गुणी	गुणिनौ	गुणिनः
सम्बो०	गुनिन्	,,	,,
द्वि०	गुणिनम्	,,	,,
तृ०	गुणिना	गुणिभ्याम्	गुणिभिः
च०	गुणिने	,,	गुणिभ्यः
प०	गुणिनः	,,	,,
ष०	,,	गुणिनोः	गुणिनाम्
स०	गुणिनि	,,	गुणिषु

ऐसेही 'इन्' या विन्' धनिन्, मानिन् दण्डिन्, शार्ङ्गिन् (विष्णु) मनस्विन्, यशस्विन्, पयस्विन्, मेधाविन्, स्रग्विन् (मालाधारी), मालिन् (माली या मालाधारी), शालिन् (सम्पन्न,

चमकदार) शास्त्रिन् (शस्त्रधारी), नखिन्, (नखवाला), शृङ्गिन् (सींगवाला), पुच्छिन् (पूँछवाला), शरीरिन्, देहिन्, प्राणिन् सहवासिन् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

किन्तु 'पथिन्' (मार्ग) शब्दके रूप निम्नलिखित होते हैं।

प्र०, सम्बो०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	,,	पथः
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	,,	पथिभ्यः
प०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	पथः	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथोः	पथिषु

ऐसे ही 'मथिन्' (मन्थन दण्ड) शब्द के मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ, मथः, मथा, मथिभ्याम्, मथिभिः, मथे, मथः २, मथोः २, मथाम्, मथि। शेषरूप पथिन् के समान। एवं 'ऋभुक्षिन्' (इन्द्र) शब्द के ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षिभ्याम् ३, ऋभुक्षिभिः, ऋभुक्षे, ऋभुक्षः २, ऋभुक्षोः २; ऋभुक्षाम्, ऋभुक्षि; शेषरूप 'पथिन्' की तरह होते हैं।

जकारान्त 'परिव्राज' (संन्यासी) शब्द

प्र०	परिव्राट्-परिव्राड्	परिव्राजौ	परिव्राजः
द्वि०	परिव्राजम्	,,	,,

तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
च०	परिव्राजे	"	परिव्राड्भ्यः
प०	परिव्राजः	"	"
ष०	परिव्राजः	परिव्राजोः	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	"	परिव्राट्सु-ट्सु

इसी तरह राट्-राड, राजौ, राजः राटसु-राटसु आदि 'राज्' शब्द के तथा विश्वसृट्-विश्वसृड्, विश्वसृजौ, विश्वसृजः इत्यादि 'विश्वसृज' (ब्रह्मा) शब्द के रूप होते हैं।

'ऋत्विज्' (यज्ञ करनेवाला) शब्द के रूप निम्नलिखित होते हैं।

ऋत्विक्-ऋत्विग्, ऋत्विजौ, ऋत्विजः, ऋत्विजम्, ऋत्विजौ, ऋत्विजः, ऋत्विजा, ऋत्विग्भ्याम् ३, ऋत्विग्भिः, ऋत्विजे, ऋत्विजः २, ऋत्विजोः२, ऋत्विजाम्, ऋत्विजि, ऋत्विक्षु आदि।

'प्राञ्च्' शब्द

प्र० सम्बोधन	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	"	प्राचः
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	"	प्राग्भ्यः
प०	प्राचः	"	"
ष०	"	प्राचोः	प्राचाम्
स०	प्राचि	"	प्राक्षु

'प्रत्यञ्च्' के रूप निम्नलिखित होते हैं।

प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः, प्रत्यञ्चम्, प्रत्यञ्चौ, प्रतीचः, प्रतीचा, प्रत्यग्भ्याम् ३, प्रत्यग्भिः, प्रतीचे, प्रत्यग्भ्यः २ प्रतीचः २, प्रतीचोः २, प्रतीचाम् प्रतीचि, प्रत्यक्षु

शतृ (अत्) प्रत्ययान्त 'भवत्' (होता हुआ) शब्द

प्र० सम्बोधन भवन्, भवन्तौ, भवन्तः

द्वि० भवन्तम् भवन्तौ भवतः। शेषरूप भगवत् की तरह।

ऐसे ही गच्छत् (जाता हुआ), बदत् (बोलता हुआ), गायत् (गाता हुआ), पठत् (पढ़ता हुआ), अदत् (खाता हुआ) आदि शतृ प्रत्ययान्त शब्दों के रूप होते हैं।

नोटः—ददत्, दधत्, जुह्वत्, बिभ्यत्, आदि द्वित्ववाले शतृ प्रत्ययान्त शब्दों में तथा जक्षत्, जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीध्यत्, और वेव्यत् शब्दों में नुम् (न) नहीं होता है। अतः इनके रूप ददत्–ददद्, ददतौ, ददतः आदि होंगे।

'तादृश्' (वैसा) शब्द

प्र०	तादृक्–तादृग्	तादृशौ	तादृशः
द्वि०	तादृशम्	”	”
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः

शेषरूप तादृशे, तादृग्भ्याम् २, तादृग्भ्यः २, तादृशः २, तादृशोः २, तादृशाम्, तादृशि, तादृक्षु होते हैं। किन्तु 'विश्' के रूप विट्, विड्, विशौ, विशः, विड्भ्याम् विट्सु आदि होते हैं।

सकारान्त 'विद्वस्' शब्द

प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
सम्बो०	विद्वन्	,,	,,
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
प०	विदुषः	,,	,,
ष०	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु

ऐसे ही जग्मिवस्, जगन्वस् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

	प्रथमा सु	औ;	द्वि० शस्;	भ्याम्	सुप्
जग्मिवस्-	जग्मिवान्	जग्मिवांसौ	जग्मुषः	जग्मिवद्भ्याम्	जग्मिवत्सु
जगन्वस्-	जगन्वान्	जगन्वांसौ	जग्मुषः	जगन्वद्भ्याम्	जगन्वत्सु
तस्थिवस्-	तस्थिवान्	तस्थिवांसौ	तस्थुषः	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवत्सु
शुश्रुवस्-	शुश्रुवान्	शुश्रुवांसौ	शुश्रुवुषः	शुश्रुवद्भ्याम्	शुश्रुवत्सु
सेदिवस्-	सेदिवान्	सेदिवांसौ	सेदुषः	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवत्सु
दाश्वस्-	दाश्वान्	दाश्वांसौ	दाशुषः	दाश्वद्भ्याम्	दाश्वत्सु

'पुंस्' शब्द

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
सम्बो०	पुमन्	,,	,,
द्वि०	पुमांसम्	,,	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः

च०	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुंभ्यः
प०	पुंसः	,,	,,
ष०	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	,,	पुंसु

वेधस् (ब्रह्मा) शब्द

प्र०	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
सम्बो०	वेधः	,,	,,
द्वि०	वेधसम्	,,	,,
तृ०	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
च०	वेधसे	,,	वेधोभ्यः
प०	वेधसः	,,	,,
ष०	,,	वेधसोः	वेधसाम्
स०	वेधसि	,,	वेधस्सु-वेधःसु

'चन्द्रमस्' शब्द के रूप वेधस् के समान होते हैं।

उशनस् (शुक्र) के रूप उशना, उशनसौ उशनसः आदि वेधस् की तरह होते हैं। केवल सम्बुद्धि में उशनन्-उशन-उशनः तीन रूप होते हैं।

(Personal Pronouns) अस्मद्, युष्मद्, भवत्।

(१) पुरुषवाचक 'अस्मद्' सर्वनाम (मैं) शब्द। इनके तीनों लिङ्गों में समान रूप होते हैं।

प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम् [मा]	आवाम् [नौ]	अस्मान् [नः]
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः

च०	मह्यम् [मे]	आवाभ्याम् [नौ]	अस्मभ्यम् [नः]
प०	मत्	,,	अस्मत्
ष०	मम [मे]	आवयोः [नौ]	अस्माकम् [नः]
स०	मयि	,,	अस्मासु

'युष्मद्' (-तू,-तूँ) शब्द। इनके भी तीनों लिङ्गों में समान रूप होते हैं।

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम् [त्वा]	युवाम् [वाम्]	युष्मान् [वः]
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम् [ते]	युवाभ्याम् [वाम्]	युष्मभ्याम् [वः]
प०	त्वत्	,,	युष्मत्
ष०	तव [ते]	युवयोः [वाम्]	युष्माकम् [वः]
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

नोट :— (१) 'त्यदादि' शब्दों के सम्बोधन नहीं होते हैं। 'त्यदादि' के लिए 'सर्वादि' देखना चाहिए।

(२) कोष्ठान्तर्गत त्वा, मा आदि शब्दों का प्रयोग किसी शब्द के बाद में तथा पाद के बीच या अन्त में ही होता है। वाक्य के आदि में तथा श्लोक-पाद के आदि में नहीं होता है।

जैसेः—त्वाम्पातु, माम् पातु की जगह त्वामा पातु नहीं होता है। ऐसे ही 'त्रैलोक्य-पालकः कृष्णः युष्मान् रक्षतु सर्वदा' यहाँ 'युष्मान्'

पाद के आदि में है, अतः उसके स्थान में वः आदेश नहीं होता है।

(३) वाक्य में एक ही तिङन्त पद रहने से ये आदेश होते हैं। इसलिए ओदनं पच तव भविष्यति यहाँ 'तव' की जगह 'ते' नहीं होता है।

(४) त्वाम्, माम् आदि शब्दों के बाद च, वा, हा, अह तथा एव शब्दों के रहने पर ये त्वा, मा आदि आदेश नहीं होते हैं यथा :—

हरिः त्वां मां 'च' रक्षतु, कृष्णः कथं त्वां मां 'वा' नरक्षेत्, कृष्णो मम 'हा' प्रसीदति, कृष्णः तव 'अह' न प्रसीदति, कृष्णो मम 'एव' सेव्यः इत्यादि वाक्यों में त्वा, मा आदि आदेश नहीं होते हैं।

(५) 'भवत्' के रूप भगवत् के समान होते हैं। यह पहले बतलाया गया है।

(२) निश्चय वाचक (Demonstrative Pronouns)

तद्,त्यद्, एतद्, इदम् और अदस्। इनके तीनों लिङ्गों के रूप साथ ही दिये जाते हैं। तत् (वह–That-or he, she, it)

पुंलिङ्ग

प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	,,	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः

च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
प०	तस्मात्	,,	,,
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	,,	तेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
प०	तस्याः	,,	,,
ष०	,,	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	,,	तासु

नपुंसक में (तत्, ते, तानि,) २ शेषरूप पुंलिङ्ग के समान ।

त्यद् के रूप स्यः, त्यौ, त्ये, स्या, त्ये, त्याः, त्यत्, त्ये, त्यानि आदि 'तत्' के समान ।

एतद् (यह This) पुंलिङ्ग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम् [एनम्]	एतौ [एनौ]	एतान् [एनान्]
तृ०	एतेन [एनेन]	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	,,	एतेभ्यः
प०	एतस्मात्	,,	,,
ष०	एतस्य	एतयोः [एनयोः]	एतेषाम्

स०	एतस्मिन्	एतयोः [एनयोः]	एतेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम् [एनाम्]	एते [एने]	एताः [एनाः]
तृ०	एतया [एनया]	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	,,	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	,,	,,
ष०	,,	एतयोः [एनयोः]	एतासाम्
स०	एतस्याम्	,, [एनयोः]	एतासु

क्लीबलिङ्ग में (एतत्, एते, एतानि) २ तथा द्वितीया में (एनत् एने, एनानि) शेष रूप पुंलिङ्ग एतत् के समान।

इदम् (यह–This) पुलिंङ्ग

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम् (एनम्)	इमौ (एनौ)	इमान् (एनान्)
तृ०	अनेन [एनेन)	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्	,,	,,
ष०	अस्य	अनयोः [एनयोः]	एषाम्
स०	अस्मिन्	,, [,,]	एषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम् [एनाम्]	इमे [एने]	इमाः [एनाः]

तृ०	अनया [एनया]	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	,,	आभ्यः
प०	अस्याः	,,	,,
ष०	अस्याः	अनयोः [एनयोः]	आसाम्
स०	अस्याम्	,, [,,]	आसु

नपुंसक में (इदम्, इमे, इमानि) २ तथा द्वितीया में [एनत्, एने, एनानि]

नोटः—इदम् तथा एतत् शब्दों में द्वितीया, टा तथा ओस् विभक्तियों में 'अन्वादेश' रहनेपर 'एनम्' आदि वैकल्पिक रूप होते हैं। वे रूप कोष्ठ में दे दिये गये हैं। किसी कथन की द्विरुक्ति को अन्वादेश कहते हैं। अर्थात् एकवार किसी के बारे में कुछ कहकर फिरसे उसके बारे में कुछ कहना अन्वादेश कहलाता है। जैसेः—अयं व्याकरणम् अधीतवान्, एनं साहित्यम् अध्यापय। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं धनम् इत्यादि

अदस् (वह—That) पुंलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः
प०	अमुष्मात्	,,	,,
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
प०	अमुष्याः	,,	,,
ष०	,,	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	,,	अमूषु

नपुंसक में (अदः, अमू, अमूनि) २ शेषरूप पुंलिङ्ग 'अदस' के समान।

इदम्, एतद्, अदस् तथा तत् शब्दों के समुचित प्रयोगों के लिये निम्नलिखित कारिका को ध्यान में रखना चाहिए।

'इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदोरूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥'

अर्थात् इदम्' का प्रयोग समीप की वस्तु या व्यक्ति के विषय में होता है 'अदस्' 'एतत्' का प्रयोग समीपतर अर्थात् अति समीप की वस्तु या व्यक्ति के वारे में होता है 'अदस्' का प्रयोग दूरस्थ विषयों के लिए एवं 'तत्' का परोक्षमें अर्थात् जो अनुपस्थित है उसमें किया जाता है।

(३) सापेक्षताबोधक सर्वनाम (Relative Pronoun) यत् (जो-who which) इसके पुंलिङ्ग में यः, यौ, ये आदि; स्त्रीलिङ्ग

में या, ये, याः आदि तथा नपुंसक में यत्, ये, यानि आदि रूप 'तत्' के समान समझना चाहिए।

(४) प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronoun) किम् (कौन, क्या आदि who, which, what) इसके पुंलिङ्ग में कः, कौ, के आदि; स्त्रीलिङ्ग में का, के, काः आदि एवं नपुंसकमें किम्, के, कानि आदि रूप 'तत्' के समान ही होते हैं।

(५) निजवाचक सर्वनाम (Reflexive Pronoun है 'स्व'। इसके रुप स्वः स्वौ' स्वे-स्वाः आदि। शेषरूप सर्व की तरह होते हैं। निजवाचक शब्द 'आत्मन्' औ 'स्वयम्' भो हैं। जैसेः—ते सर्वे आत्मानं रचित-वन्तः, राजा स्वयं समर भूमिम् अगच्छत् इत्यादि।

(६) अनिश्चय वाचक सर्वनाम (Indefinite Pronoun)। 'किम्' शब्दसे तीनों लिङ्गों में तथा सब विभक्तियों में चित्, चन, अपि, स्वित् जोड़ने के बाद अनिश्चय वाचक सर्वनाम बनता है। जैसेः—कश्चित्, काचित्, किञ्चित्—, कोऽपि, केचन कयाचन कास्चित् इत्यादि। इनके रूप निम्नलिखित होते हैं। कश्चित्, कौचित् २, केचित्, कञ्चित् कौंश्चित्, केनचित् काभ्याञ्चित् ३, कैश्चित्, कस्मैचित्, केभ्यश्चित् २, कस्माच्चित्, कस्यचित्, कयोश्चित् २, केषाञ्चित्, कस्मिँश्चित्, केषुचित्। ऐसे ही 'चन लगाकर कश्चन आदि। अपि के साथ—कोऽपि, कावपि २, केऽपि, कमपि कानपि, केनापि, काभ्यामपि ३. कैरपि, कस्माअपि, केभ्योऽपि २, कस्मादपि, कस्यापि, कयोरपि २, केषामपि, केष्वपि। ऐसेही स्रीलिङ्ग और नपुंसक में भी 'चित्', 'चन', 'अपि' आदि लगाकर

काचित्, काचन, कापि, किञ्चित्, किञ्चन, किमपि आदि रूप होते हैं।

(७) सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषण (Possessive Pronouns) त्यदादि शब्दों में ईय (छ) प्रत्यय लगाकर तदीय, यदीय, मदीय, अस्मदीय, युष्मदीय आदि शब्द बनते हैं। युष्मद् और अस्मद् शब्दों से अण् तथा ईन (ख) प्रत्यय लगाकर तावक, मामक, यौष्माक, आस्माक एवं यौष्माकीण, आस्माकीन आदि शब्द बनते हैं। येही सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं।

(८) अन्योन्य सम्बन्ध वाचक (Reciprocal Pronouns) अन्योन्य, इतरेतर तथा परस्परको अन्योन्यसम्बन्ध सूचक सर्वनाम कहते हैं।

हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

उपानह् (जूता)

प्र० सम्बोधन	उपानत्-उपानद्	उपानहौ	उपानहः
द्वि०	उपानहम्	,,	,,
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	,,	उपानद्भ्यः
प०	उपानहः	,,	,,
ष०	,,	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	,,	उपानत्सु

'गिर्' (वाणी) शब्द के रूप—गीः, गिरौ, गिरः, गिरम्, गिरौ, गिरः, गिरा, गीर्भ्याम्, गीर्भिः, गिरे, गीर्भ्याम् ३, गीर्भ्यः२, गिरः २, गिरोः २, गिराम्, गिरि, गीर्षु होते हैं।

'दिश्' (दिशा) शब्द के रूप—दिक्-दिग्, दिशौ, दिशः दिशम्, दिशौ, दिशः, दिशा, दिग्भ्याम् ३, दिग्भिः दिशे, दिग्भ्यः२ दिशः २, दिशोः २, दिशाम्, दिशि, दिक्षु होते हैं।

'वाच्' (वाणी) शब्द के रूप—वाक्-वाग्, वाचौ, वाचः, वाचम्, वाचौ, वाचः, वाचा, वाग्भ्याम् ३, वाग्भिः, वाचे, वाग्भ्यः वाचः २, वाचोः २, वाचाम्, वाचि, वाक्षु होते हैं।

नित्यबहुवचनान्त 'अप्' (जल) शब्द के रूप—आपः, अपः, अद्भिः, अद्भ्यः अपाम्, अप्सु होते हैं।

'आशिष्' शब्दके रूप—आशीः, आशिषौ, आशिषः आशिषम् आशिषौ, आशिषः, आशिषा, आशीर्भ्याम् ३, आशीर्भिः, आशिषे, आशीर्भ्यः २, आशिषः २, आशिषोः २, आशिषाम् आशिषि, अशीःषु आशीष्षु ।

त्यद् , तद् आदि शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप पुंलिङ्गरूपों के साथ दे दिये गये हैं ।

इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

हलन्त नपुंसक शब्द

नकारान्त 'ब्रह्मन्' शब्द

प्र०, द्वि०	ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि
सम्बो०	ब्रह्मन्-ब्रह्म	"	"
तृ०	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः
च०	ब्रह्मणे	"	ब्रह्मभ्यः
प०	ब्रह्मणः	"	"
ष०	"	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
स०	ब्रह्मणि	"	ब्रह्मसु

ऐसे ही कर्मन् के रूप होते हैं।

'अहन्' (दिन) शब्दके रूप—(अहः, अह्नी - अहनी, अहानि) २, अह्ना, अहोभ्याम् ३, अहोभिः, अह्ने, अहोभ्यः २, अह्नः २ अह्नोः २, अह्नाम् , अह्नि-अहनि अहःसु-अहस्सु होते हैं।

'नामन्' शब्द के रूप—(नाम, नाम्नी-नामनी, नामानि) २, नाम्ना, नामभ्याम् ३, नामभिः, नाम्ने, नामभ्यः २, नाम्नः २, नाम्नोः २, नाम्नाम् , नाम्नि - नामनि, नामसु । सम्बोधनमें हेनामन् हेनाम, नाम्नी -नामनी होते हैं।

ऐसे ही 'सामन्' (सामवेद), 'व्योमन्' (आकाश), प्रेमन् धामन् (तेज या गृह) आदि शब्दों के रूप होते हैं।

'दण्डिन्' शब्द के रूप—(दण्डि, दण्डिनी, दण्डीनि) २, पुंलिङ्ग 'दण्डिन्' वत् शेषरूप। ऐसे ही 'वाग्मिन्' 'स्रग्विन्' आदि शब्दों के रूप होते हैं।

(क) 'शतृ' (अत्) प्रत्ययान्त 'भवत्' शब्द के प्रथमा, द्वितीया तथा सम्बोधन में भवत्, भवन्ती, भवन्ति। शेषरूप पुंलिङ्ग भवत् की तरह। ऐसे ही पचत्, गच्छत्, वदत्, पश्यत्, जिघ्रत्, तिष्ठत्, नयत्, दीव्यत्, चोरयत्, चिकीर्षत्, पुत्रीयत् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

(ख) 'तुदत्' के रूप प्र॰ द्वि॰ तथा सम्बोधन में तुदत्' तुदन्ती-तुदती, तुदन्ति होते हैं। शेषरूप "भवत्' की तरह। ऐसे ही भात्, भान्ती-भाती, भान्ति तथा यात्, दास्यत्, करिष्यत् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

(ग) किन्तु 'अदत्' शब्द के प्र॰ द्वि॰ सम्बो॰ में अदत्, अदती अदन्ति। शेषरूप भवत् के समान। ऐसे ही सुन्वत्, तन्वत् रुन्धत् क्रीणत् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

(घ) 'ददत्' शब्द के रूप प्र॰ द्वि॰ सम्बो॰ में ददत्, ददती ददन्ति-ददति होते हैं। ऐसे ही दधत्, बिभ्यत्, जुह्वत् आदि द्वित्व वाले शब्द तथा जक्षत्, शासत्, जाग्रत्, चकासत्, दरिद्रत्, दीध्यत् और वेव्यत् शब्द के रूप 'ददत्' के समान होते हैं। ये सभी शब्द अभ्यस्त संज्ञक कहलाते हैं।

नोट—: (१) 'शप्', 'श्यन्' वाले शतृ प्रत्ययान्त शब्दों के शीमें तथा नदी में (प्र॰ द्वि॰ के द्विवचन में तथा ङीप् करने पर)

नित्य नुम् (न्) होता है। इनके उदाहरण (क) में दिये गये हैं।

(२) शप् और श्यन् से भिन्न जगहों में जहाँ अवर्ण से आगे अत् (शतृ) रहता है वहाँ 'शी' और 'नदी' में विकल्प से नुम् (न्) होता है, जिनके उदाहरण (ख) में दिये गये हैं।

(३) इन से अतिरिक्त जगहों में शी तथा नदी में नुम् नहीं होता है, जोकि (ग) में बतलाया गया है।

(४) अभ्यस्त संज्ञक शब्दों से जस् तथा शस् । में ('शि' में) विकल्प से नुम् होता है। इनके उदाहरण (घ) में दिये गये हैं।

धनुष् शब्द के प्र० द्वि० तथा सम्बो० में धनुः, धनुषी, धनूंषि, इसके आगे धनुषा, धनुर्भ्याम् ३, धनुर्भिः, धनुषे, धनुर्भ्यः २, धनुषः २, धनुषोः २, धनुषाम्, धनुषि, धनुष्षु-धनुःषु। ऐसे ही चक्षुष्, हविष्, ज्योतिष् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

मनस् शब्द के रूप प्र० द्वि० तथा सम्बो० में मनः, मनसी, मनांसि, आगे मनसा, मनोभ्याम् ३, मनोभिः। मनसे मनोभ्यः २, मनसः २, मनसोः २, मनसाम्, मनसि, मनस्सु-मनःसु। ऐसे ही नभस्, यशस्, वक्षस्, उरस्, वयस्, पयस्, वचस्, सरस्, चेतस्, श्रेयस्, प्रेयस् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

तद्, यद् आदि शब्दों के रूप पुंलिंग रूपों के साथ ही बतलाये गये हैं।

इति हलन्त नपुंसकलिङ्ग

संख्यावाचक शब्द

(क) संख्या वाचक 'एक' शब्द नित्य एकवचनान्त है। द्विशब्द नित्य द्विवचनान्त तथा 'त्रि' से लेकर अष्टादशन् पर्यन्त शब्द नित्य बहुवचनान्त हैं। एकोनविंशति से आगे सभी संख्या वाचक शब्द एकवचनान्त ही होते हैं।

(ख) इन में एक से लेकर अष्टादश पर्यन्त संख्या केवल संख्येय अर्थ में, अर्थात् विशेषण रूप में प्रयुक्त होती है। जैसे— एकः छात्रः दश छात्राः, नकि छात्रस्य एकः, छात्राणां दश आदि। यथा 'अष्टादशभ्य एकाद्याः संख्याः सख्येय गोचराः।' किन्तु 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे 'सर्वाः संख्येय संख्ययोः' एकोनविंशति से लेकर आगे की संख्यायें संख्या और संख्येय दोनों में प्रयुक्त होती हैं। जैसे-विंशतिः छात्राः, छात्राणां विंशतिः आदि।

(ग) एक से अष्टादश पर्यन्त संख्या तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होती है। और विंशति से लेकर 'नवनवति' पर्यन्त संख्यायें स्त्रीलिङ्ग है। जैसे—विंशतिः बालकाः, विंशतिः बालिकाः तथा विंशतिः फलानि इत्यादि।

(घ) विंशत्यादि संख्यायें जब संख्या अर्थ में प्रयुक्त होती हैं तब उनसे द्विवचन और बहुवचन भी होते हैं। जैसे—द्वे विंशती (४०) तिस्रः विंशतयः (६०) आदि। छात्राणां विंशतिः (२०), छात्राणां विंशती (४०), छात्राणां विंशतयः (६०) इत्यादि गवां शतं, शते, शतानि इत्यादि।

(छ) एक-दश-शत-सहस्त्रायुत-लक्ष प्रयुत कोटयः क्रमशः।
अर्बुद मब्जं खर्व-निखर्व-महापद्म-शङ्कवस्तस्मात् ॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः ॥

इन में खर्व, निखर्व, पुंलिङ्ग और नपुंसक भी; महापद्म, शंकु तथा जलधि पुंलिङ्ग है। कोटि स्त्रीलिङ्ग और शत आदि अवशिष्ट शब्द नपुंसक है।

संख्या वाचक शब्दों के रूप

एक शब्द

	पुंलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसक
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एकः	एका	एकम्
द्वि०	एकम्	एकाम्	एकम्
तृ०	एकेन	एकया	एकेन आदि
च०	एकस्मै	एकस्यै	
प०	एकस्मात्	एकस्याः	
ष०	एकस्य	एकस्याः	
स०	एकस्मिन्	एकस्याम्	

जब 'एक' शब्द संख्या से अतिरिक्त अर्थों में प्रयुक्त होता है तब द्विवचन और बहुवचन भी होते हैं। जैसे—एके कथयन्ति, एके सत्पुरुषाः, इत्यादि।

एकशब्द—'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायाञ्च प्रयुज्यते॥
इतने अर्थों में आता है।

'द्वि' शब्द (द्विवचनान्त) इसके पुंलिङ्ग में द्वौ २, द्वाभ्याम् ३, द्वयोः २ तथा स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसक में द्वे २, द्वाभ्याम् ३, द्वयोः २, रूप होते हैं। बहुवचनान्त 'त्रि' शब्द के पुंलिङ्ग में त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः २, त्रयाणाम्, त्रिषु रूप होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में तिस्रः २, तिसृभिः, तिसृभ्यः २, तिसृणाम्, तिसृषु रूप होते हैं। नपुंसक में त्रीणि २, त्रिभिः आदि शेष पुंलिङ्गवत्।

बहुवचनान्त 'चतुर्' शब्द

	पुलिङ्ग	स्त्रीलिंग	नपुंसक
प्र०	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
द्वि०	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
तृ०	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः आदि
च०	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	
प०	चतुर्भ्यः	"	
ष०	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	
स०	चतुर्षु	चतसृषु	

नोटः—"न तिसृचतसृ" (पा० सू०) के अनुसार तिसृ और चतसृ शब्दों के 'आम्' में दीर्घ नहीं होता है।

पञ्चन् के आगे अष्टादशन् तक तीनों लिङ्गों मे समान रूप होते हैं।

'पञ्चन्' शब्द के रूप-पञ्च २ पञ्चभिः, पञ्चभ्यः २, पञ्चानाम्, पञ्चसु होते हैं। ऐसे ही सप्तन्, नवन्, दशन् आदि शब्दों के रूप होते हैं। 'षष्' के रूप-षट् २, षड्भिः, षड्भ्यः २, षण्णाम्, षट्सु होते हैं।

'अष्टन्' के रूप-अष्टौ २, अष्टाभिः, अष्टाभ्यः २, अष्टानाम्, अष्टासु और अष्ट २, अष्टभिः, अष्टभ्यः २, अष्टानाम्, अष्टसु भी होते हैं।

एकः-प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः तथा इनमें 'आ' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग में एका-प्रथमा, द्वितीया-तृतीया, एवं चतुर्थः-तुरीयः-तुर्यः पञ्चमः, षष्ठः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः, दशमः, एकादशः आदि और इनमें "ई" लगाकर स्त्रीलिङ्ग चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी आदि पूरणार्थक शब्द (Ordinals) बनते हैं। 'विंशति' से विंशः-विंशतितमः, 'त्रिंशत्' से त्रिंशः-त्रिंशत्तमः, 'चत्वरिंशत्' से चत्वारिंशः—चत्वारिंशत्तमः, 'पञ्चाशत्' से पञ्चाशः—पञ्चाशत्तमः, 'षष्टि' से षष्टितमः. 'सप्तति' से सप्ततितमः, 'अशीति' से अशीतितमः, "नवतिसे" 'नवतितमः' 'शत' से शततमः आदि पूरणार्थक शब्द बनते हैं।

इति सुबन्त प्रकरणम्

अथ अव्यय-प्रकरणम्

अव्यय (Indeclinables)

सदृशं त्रिषुलिङ्गेषु सर्वासुच विभक्तिषु ।
वचनेषुच सर्वेषु यन्नव्येति *तदव्ययम्* ॥

अर्थात् जो शब्द तीनों लिङ्गों में, सभी कारकों में (विभक्तियों में) तथा सभी वचनों में सदृश ही-एकप्रकार ही-रहें किन्तु विकृत न हों वे अव्यय (नव्येति=विकारं प्राप्नोति इति अव्ययम्) कहलाते हैं। इनके साधारण पाँच भेद हैं।

(१) उपसर्ग (Prepositions), (२) क्रिया विशेषण (Advebs), (३) चादिनिपात (Particles), (४) समुच्चयबोधक Conjunctions) और (५) विस्मयादि बोधक (Interjections)

(१) *उपसर्ग या गति*—प्र, परा, अप, सम्, अनु आदि सामान्य प्रकरणमें बतलाये गये हैं। ये उपसर्ग नियमतः धातु से पूर्व प्रयुक्त होते हैं। इनमें से कुछ तो धातु के अर्थों को बदल देते हैं, जैसे-गच्छति आगच्छति, क्रीणाति-विक्रीणीते इत्यादि; कुछ धातु के अर्थों का अनुसरण करते हैं, जैसे-गच्छति,-अनुगच्छति, सरति-अनुसरति आदि, और कुछ उपसर्ग धातुके अर्थों को और परिवर्द्धित करते हैं, जैसे-भवति - संभवति, वदति-प्रवदति आदि। जैसे कहा गया है—

धात्वर्थं बाधते कश्चित् तमनुवर्तते ।
तमेव विशिनष्ट्यन्यः उपसर्गगतिस्त्रिधा॥
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्रनीयते ।
प्रहाराहार - संहार - विहार - परिहारवत्॥

(२) *क्रिया विशेषण* रूप अव्यय क्रिया की विशेषता को बतलाते हैं। इनमें विना अन्तरा आदि अव्यय कारक विभक्तियों के साथ आते हैं। कुछ स्थान, काल, परिमाण, रीति आदि के वाचक हैं।

जैसेः—स्वः (स्वर्ग), अन्तः(मध्य)प्रातः, पुनः, उच्चैः (ऊँचा-ऊपर) नीचैः (नीचे) शनैः (धीरे), ऋते - विना, युगपत् (एक साथ), आरात् (दूर या समीप), पृथक्, ह्यः (बीता हुआ कल) श्वः (आनेवाला कल) दिवा, रात्रौ, सायं, चिरम् (बहुकाल), ईषत् (अल्प), तूष्णीम् (मौन), बहिः (बाहर), समया-निकषा (समीप) स्वयम् (अपने), वृथा, नक्तम् (रात), न, वत् (पुत्रवत्, छात्रवत्), अन्तरा (मध्य, विना), अन्तरेण (विना), सहसा (आकस्मिक-अविमर्श), नाना, स्वस्ति (मङ्गल), अलम् (भूषण, पर्याप्ति, निवारण आदि), मृषा-मिथ्या-मुधा, पुरा (अतीत), मिथो-मिथः (एकान्त, परस्पर), प्रायः, मुहुः (पुनः), साकम्-सार्द्धम् (साथ), नमः, धिक् (निन्दा, भर्त्सना), एव, एवम्, नूनम् (निश्चय) भूयः (पुनः), खलु (निश्चय) अथ, सुष्ठु (सुन्दर) आदि तथा यतः, ततः, सर्वतः, उभयतः; यत्र, क्व, तत्र, बहुत्र;यदा, कदा तदा, सर्वदा, एकदा; इदानीम्, अधुना,

तदानीम्; यर्हि, तर्हि, एतर्हि; पुरः-पुरस्तात् अधः-अधस्तात् अवः-अवस्तात्, पश्चात्; दक्षिणा-दक्षिणेन दक्षिणाहि, उत्तरा-उत्तरेण-उत्तराहि आदि; यथा, तथा, कथम्, इत्थम्-आदि सर्वादि से बने हुए तद्धित प्रत्ययान्त शब्द भी अव्यय हैं।

एवं स्मारं,स्मारम् आदि; गन्तुम्, भोक्तुम् आदि; कृत्वा, गत्वा आदि कृत्प्रययान्त शब्द तथा अधिहरि, यथाशक्ति, अनुरूपम्-आदि अव्ययी भाव समास वाले शब्द अव्यय हैं।

(३) *चादिनीपात* (Particles) किल, खलु, च, तु, नु, वै, हि, चित्, चन, स्वित्, न (अ-अन्) आदि।

(४) *समुच्चयबोधक अव्ययों* में अथ, अथो, उत, च, किंच आदि संयोजनात्मक (Copulative) हैं, वा अथवा आदि वियोजनात्मक (Disjunctive) हैं; आहो, उताहो आदि प्रश्नात्मक (Interrogative) हैं; यदि, चेत् नोचेत्, आदि सोपाधिक (Conditional) हैं; हि, तत् तेन आदि कारणात्मक (Causal) हैं; तथा 'अथ' और 'इति' क्रमशः आरम्भ और अन्त सूचित करते हैं।

(५) *विस्मयादि बोधक अव्ययों* में अह, अहह, अहो, बत, हा, हाहा आदि आश्चर्य, दुःख आदि प्रगट करते हैं; किम्, धिक्, आदि घृणा प्रगट करते हैं; हन्त से दुख और सुख प्रगट होते हैं; अङ्ग, अये, अयि, ओ भोः, हे है, हो आदि आदर, सम्बोधन आदि सूचित करते हैं, अरे, रे, रेरे, अरेरे आदि अनादर सूचित करते हैं।

इत्यव्यय-प्रकरणम्

अथ स्त्री प्रत्यय-प्रकरणम्

Formation of Feminine Bases

सुबन्त प्रकरण के आरम्भ में यह बतलाया गया है कि 'लिङ्ग' का भी वाचक प्रातिपदिक ही है। इसलिए स्वार्थ (प्रातिपदिकार्थ) की तरह लिङ्ग भी प्रातिपदिकार्थ ही है! यथा घटः, फलम्, इत्यादि में 'विसर्ग' और 'अम्' से क्रमशः पुंस्त्व और नपुंसकत्व द्योतित होता है, वैसे ही कुछ स्त्रीत्व के भी द्योतक-प्रकाशक प्रत्यय है। इन्ही प्रत्ययों के योग से स्त्री प्रत्ययान्त शब्द बनते हैं। वे प्रत्यय हैं—

आ (टाप्, डाप्, चाप्), ई (ङीप्, ङीष्, ङीन्), ऊ (ऊङ्,) और ति

टाप् (आ) ("अजाद्यतष्टाप्" पा० सू०)

अजादि गण पठित अज, एडक आदि प्रातिपदिकों से तथा अदन्त प्रातिपदिकों से 'टाप्' (आ) होता है। 'टाप्' होने के बाद प्रातिपदिक के अन्तिम अकार का लोप हो जाता है। जैसे—

अज + आ = अजा, एडका (भेड़ी) अश्वा, चटका (मादा गोरैया), मूषिका, बाला, सम्फला, सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा, शूद्रा, अमूला, क्रुञ्च् (क्रौंच पक्षी) क्रुञ्चा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, कोकिला इत्यादि शब्दों में 'अजादि' मान कर और खट्व-खट्वा, शयान-शयाना, भुञ्जान-भुञ्जाना इत्यादि में अदन्त मानकर टाप् हुआ है।

नोट :—महाशूद्र से *महाशूद्री* होता है और शूद्र की स्त्री इस अर्थ में भी *शूद्री* होता है न कि शूद्रा।

डाप् (आ) "डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

जिसके अन्त में 'मन्' हो उस मन्नन्तप्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में डाप् होता है। जिसके अन्त में अन् हो उस अन्नन्त बहुव्रीहि शब्दों से 'डाप्' विकल्प से होता है। जैसे :—मन्नन्त-सीमन्+डाप् (आ) =सीमा, दामन्—दामा, इत्यादि। अन्नन्त-बहुव्रीहि—बहुयज्वन् बहुयज्वा इत्यादि रमा शब्दवत्। डाप् के अभाव में सीमानौ सीमानः बहुयज्वानौ, बहुयज्वानः इत्यादि।

चाप् (आ) "सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः" (का वा०)

यथा सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या।

"यङश्चाप्" (पा० सू०)

यङ्प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में चाप् होता है। जैसे :—आम्बष्ठ्या, कारीषगन्ध्या।

ङीप (ई) ("ऋन्नेभ्योङीप्" "उगितश्च" पा० सू०)

ऋदन्त और नकारान्त प्रातिपदिकोंसे स्त्रीलिङ्गमें ङीप् होता है। और उगित् अर्थात् उ ऋ तथा लृ की इत्संज्ञा वाले, प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है। जैसे :—

ऋदन्त—कर्तृ—कर्त्री, विधातृ-विधात्री आदि।

नकारान्त—राजन्—राज्ञी, दण्डिन्—दण्डिनी आदि

उगिदन्त—भवत् (तु)—भवती, विद्वस्—विदुषी।

'शतृ' प्रत्ययान्त शब्दों से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् इसी सूत्र से

होता है। और नुम् (न) का वहाँ आगम हो जाता है यदि शतृ प्रत्यय भ्वादिगणीय दिवादि गणीय, चुरादि गणीय, णयन्त, सन्नन्त, तथा नाम धातु ओं से निहित रहता है। जैसे :—भवन्ती दीव्यन्ती, चोरयन्ती, गमयन्ती, चिकीर्षन्ती, पुत्रीयन्ती आदि। एवं यदि शतृ प्रत्यय तुदादि गणीय धातुओंसे तथा अदादि गणके आकारान्त धातुओं से निहित होगा तो वहाँ नुमागम विकल्प से होता है। जैसे:—तुदन्ती-तुदती, पात् से पान्ती-पाती, भात्से भान्ती—भाती, यात् से यान्ती—याती आदि। किन्तु पूर्वोक्त गणों से भिन्न जगहों में नुम् नहीं होता है। जैसे—अदती, सती, दद्ती, दधती, कुर्वती, तन्वती, सुन्वती, शासती, चकासती इत्यादि।

नोट :—यदि उगित् धातु हों तो केवल 'अञ्च्' सेही ङीप् होगा जैसे :—प्राच्-प्राची, प्रतीच्—प्रतीची, उदीच्—उदीची आदि।

प्रत्ययस्थ ककारसे पूर्व अकार को इकार होजाता है यदि उसके (ककारके) आगे आप् (आ) सुप्से परे नहीं हो।

जैसे :—सर्विका, कारिका, अश्विका इसी तरह मामिका, नरिका, दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका आदि समझना चाहिए।

नोट: त्यकन् प्रत्ययान्त शब्दों से टाप् करनेपर इत्व नहीं होता है। जैसे उपत्यका (पर्वत के नीचेकी भूमि) अधित्यका (पर्वतके ऊपर की समतलभूमि)। इसीतरह आशीर्वाद अर्थमें वुन् (अक) प्रत्यय के ककार से पूर्व इत्व नहीं होता है। जैसे जीवका, भवका आदि।

* यका, सका आदिमें तथा क्षिपका, ध्रुवका, कन्यका चटका आदिमें भी इत्व नहीं होता है। कुछ शब्दों में विकल्प से इत्व होता है जैसे—सूतका—सूतिका, पुत्रका—पुत्रिका, वृन्दारका-वृन्दारिका इत्यादि।

† यदि क से पूर्व स्त्री प्रत्यय सम्बन्धी आकार स्थानीय अकार 'य' या 'क' से आगे रहे तो उसे इत्वविकल्प से होता है। जैसे—आर्या+क=आर्यक+आ=आर्यिका या आर्यका, चटका+क=चटकक+आ=चटकिका या चटकका।

‡ किन्तु उस स्त्री प्रत्यय सम्बन्धी आकार स्थानीय अकार से पूर्व 'य' या 'क' यदि धात्वन्त 'य' या 'क' हो तो नित्यही इत्व होता है। जैसे—सुनया+क=सुनयक+आ=सुनयिका, सुपाका+क =सुपाकक+आ=सुपाकिका। ऐसे ही सुशयिका, अशोकिका आदि समझना चाहिए।

§ टित् (टकारेत्संज्ञक) ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, तथा क्वरप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीप् (ई) होता है। जैसे—टित्—कुरुचरी, नदट्—नदी, देवट्—देवी आदि।

ढ—एय—सौपर्णेयी, वैनतेयी, आग्नेयी आदि।

---

* "न यासयोः" पा० सू० "क्षिपकादीनांच" का० वा०, "सूतका पुत्रिका वृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम्" (का० वा०) इससे ककार से पूर्वस्वर को विकल्प से अकार होता है।

† उदीचामातः स्थानेयकपूर्वायाः ‡ धात्वन्तयकोस्तु नित्यम्।

§ "टिड्ढाणञ् द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप् ठक् ठञ् कञ् क्वरपः" (पा० सू०)

अण्—औपगव—औपगवी, कुम्भकार—कुम्भकारी, चौर—चौरी, छात्र—छात्री आदि।

अञ्—औत्स—औत्सी। इसके बाद ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी आदि क्रमसे समझना चाहिए।

नोट :—"कियत् तद् बहुषु कृञोऽज्विधानम्" इसके अनुसार किंकर—किंकरा, यत्करा, तत्करा, और बहुकरा में ङीप् नहीं होता है, क्योंकि यहाँ 'ट' प्रत्यय नहीं है, अच् प्रत्यय हुआ है।

नञ्, स्नञ्, ईकक्, ख्युन् प्रत्ययान्त तथा तरुण एवं तलुन शब्दों से ङीप् होता है। जैसे :—स्त्रैणी, पौंस्नी, शाक्तिकी, आढ्यङ्करणी, तरुणी, तलुनी।

"यञश्च" (पा० सू०)

अपत्यके अधिकार में विहित जो 'यञ्' प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् होता है। ङीप् होने के बाद अकार और यकार का लोप हो जाता है। जैसे—गार्ग्यस्य अपत्यं स्त्री गार्गी, वात्स्यस्य अपत्यं स्त्री वात्सी इत्यादि।

❀ यञ् प्रत्यायान्त से ष्फ (फ) प्रत्यय भी विकल्प से होता है। फ की जगह 'आयन' हो जाता है और षित् होने के कारण ङीष् होता है। जैसे—गार्ग्य + (ष्फ) आयन = गार्ग्यायण + ई (ङीष्) गार्ग्यायणी। इसी तरह वात्स्यायनी इत्यादि।

❀ "प्राचां ष्फ तद्धितः" (पा० सू०)

* लोहित, कत आदि यञन्त शब्दों से नित्य ही ष्फ प्रत्यय होता है। लोहितस्य अपत्यं स्त्री लौहित्यायनी, कतस्य अपत्यं स्त्री कात्यायनी इत्यादि।

† कुरोः अपत्यंस्त्री कौरव्यायणी, मण्डूकस्य अपत्यं स्त्री माण्डूकायनी। असुरस्य अपत्य स्त्री आसुरायणी भी समझना चाहिए।

"वयसि प्रथमे" (पा० सू०) (वयसि अचरमे इतिवाच्यम्' वा०) चरम अवस्था के अतिरिक्त वयके वाचक शब्दों से ङीप् होता है। जैसे—कुमारी, किशोरी, वधूटी, चिरण्टी आदि। किन्तु कन्या से ङीप् नहीं होता है और वृद्धा, स्थविरा आदि में चरम अवस्था होने की कारण ङीप् नहीं होता है

"द्विगोः" (पा० सू०)

द्विगुसमास में अकारान्त शब्दों से ङीप् होता है। जैसे—त्रिलोकी, पञ्चमूली, सप्तशती, पञ्चाश्वी आदि किन्तु त्रिफला, त्र्यनीका आदि में अजादित्वात् टाप् ही होता है।

‡ यदि संख्या और अव्ययादि से परे ऊधस् शब्द बहुव्रीहि समासमें हो तो ङीप् होता है। और ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि को स्त्रीलिङ्गमें अन्त्यसकारकी जगह अनङ् आदेश होता है। यथा—द्वे ऊधसी यस्याः द्व्यूध्नी, अति शयितम् ऊधः यस्याः अत्यूध्नी। बहुव्रीहि से भिन्नमें नहीं होता है। जैसे—ऊधः अति क्रान्ता अत्यूधाः।

---

* "सर्वत्र लोहितादि कतन्तेभ्यः" [पा० सू०]

† "कौरव्य माण्डूका भ्यांञ्च" [पा० सू०]

‡ "संख्याव्ययादे ङीप्" (पा० सू०) "ऊधसोऽनङ्" (पा० सू०)

* बहुव्रीहि समासमें संख्या वाचक शब्द से परे यदि दामन् और हायन शब्द हो तो ङीप् होता है। जैसेः—द्वेदामनी यस्याः द्विदाम्नी, द्वौ हायनौ यस्याः—द्विहायनीबाला इत्यादि।

नोटः—त्रि और चतुर् शब्द से परे हायन शब्द यदि अवस्था वाचक हो तो ङीप् के साथ णत्व भी होता है। जैसेः—त्रयः हायनाः यस्याः—त्रिहायणी, चत्वारः हायनाः यस्याः चतुर्हायणी बाला। अवस्था से भिन्न में त्रिहायना, चतुर्हायना शाला।†

"पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" "विभाषासपूर्वस्य" (पा० सू०)

यज्ञ के साथ सम्बन्ध रूप अर्थ रहने पर पति शब्द को स्त्रीलिङ्ग में नकारान्तादेश होता है। जैसेः—वशिष्ठस्य *पत्नी*। यज्ञसंयोग नहीं रहने पर ग्रामस्य इयं *पतिः*, सभाया इयं*पतिः*

यदि पति शब्द समास के अन्तिम अवयव रूप होकर स्त्रीत्व का वाचक हो तो नकारान्तादेश होता है। तब नान्तमानकर ङीप् होता है। जैसेः—गृहस्य पतिः-गृह पत्नी-गृहपतिः,

वृषलस्य पतिः—वृषलपत्नी-वृषलपतिः, सभापत्नी-सभापतिः।

‡ समास में पति शब्द यदि समान, एक, वीर, पिण्ड, भ्रातृ, पुत्र आदि शब्दों के बाद आवे तो नित्य ही नकारान्तादेश होता है। यथाः—समानः पतिः यस्याः—सपत्नी, एकपत्नी, वीरपत्नी,

---

* "दामहायनान्ताच्च" (पा० सू०)

† "त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्" "वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते" (का० वा०)

‡ "नित्यं सपत्न्यादिषु" (पा० सू०)

भ्रातृपत्नी, पुत्रपत्नी आदि।

* पूतक्रतु (इन्द्र) वृषाकपि (शिव-विष्णु), अग्नि, कुसित (सूदखोर यादेव विशेष तथा कुसिद (सूदखोर या देव विशेष) शब्द से पुंयोग अर्थ में ङीप् और ऐकारान्तादेश होजाता है। यथाः—पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी (इन्द्राणी) वृषाकपेः स्त्री—वृषाकपायी (गौरी-लक्ष्मी), अग्नायी कुसितायी (सूदखोर की स्त्री), कुसिदायी (सूदखोर की स्त्री)।

† मनु शब्द को पुंयोग में औकार तथा ऐकार आदेश विकल्प से होता है और साथही ङीप् भी होता है। जैसेः—मनोः स्त्री· मनावी, मनायी, मनुः, ये तीनरूप होंगे।

"वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तोनः॥ (पा० सू०) अनुदात्तस्वरान्त एवं तकारोपध वर्णवाचक प्रातिपदिक से ङीप् विकल्प से होता है और ङीप् के साथ साथ २ उपधा तकार को नकार हो जाता है। जैसेः—

रोहिणी-रोहिता (लाल) लोहिनी-लोहिता (लाल), एनी-एता (रंग विरंग) श्वेत-) किन्तुश्वेत, असित (काला) तथा पलित (सफेद) शब्दों से पूर्वोक्त सूत्रानुसार ङीप् या नकारादेश नहीं होता है। यथा—श्वेता, असिता, पलिता।

‡ पिशङ्ग (भूरा रंग बोधक) शब्द से ङीप् विकल्प से होता है। जैसे—पिशङ्गी—पिशङ्गा।

---

* "पूतक्रतो रैच्॥ "वृषाकप्य ग्निकुसित कुसिदानाम् उदात्तः"(पा० सू०)

† "मनोरौ वा" (पौ० सू०)

‡ "पिशङ्गादुप संख्यानम्" (का० वा०)

"अन्यतोङीष्" (पा० सू०)

अनुदात्तस्वरान्त वर्णवाचक शब्द यदि तकारोपध से भिन्न भी हो तो भी स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है।

जैसे कल्माषी (चित्रवर्णा), सारङ्गी (चित कबरा) आदि किन्तु अनुदात्त स्वरान्त न होने से कृष्ण, कपिल आदि से ङीष् नहीं होता है। जैसे कृष्णा, कपिला आदि।

"षिद् गौरादिभ्यश्च" (पा० सू०)

षित् (जिस में षकार की इत्संज्ञा हुई है), प्रातिपदिक से तथा गौरादि गण में पठित शब्दों से ङीष् होता है। जैसे—
षित् नर्तकी, रजकी, रञ्जकी, लुण्टाकी, लुण्ठाकी, (लूटनेवाली), कुट्टाकी (काटनेवाली) आदि।

गौरादि—गौरी, पिप्पली, मृगी, हरिणी, मातामही, पितामही *मत्सी, ‡ मनुषी, आदि। सुन्दर-सुन्दरी स्त्री तथा पाण्डुर-पाण्डुरी स्त्री मनुष्य जाति में। इससे भिन्न में सुन्दरा, पाण्डुरा भूमिः।

"वो तो गुणवचनात्" (पा० सू०)

‡ खरु तथा संयोगोपध से भिन्न गुणवाचक ह्रस्व उकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीष् विकल्प से होता है। जैसे— मृदु-

---

* 'मत्स्यस्यङ्याम्' (वा) से मत्स्य में यकार का लोप हो जाता है।

‡ "हलस्ताद्धितस्य" (पा० सू०) से मनुष्य में यकार का लोप होता है।

‡ 'खरु संयोगोपधान्न' का० वा०)

मृद्वी, मृदुः, पटु-पट्वी, पटुः, गुरु-गुर्वी, गुरुः; लघु-लघ्वी, लघुः आदि। किन्तु खरु (पतिं वरा कन्या) से खरुः, पाण्डु से पाण्डुः आदि।

"बह्वादिभ्यश्च" (पा० सू०)

बह्वादिगण पठित शब्दों से तथा 'क्तिन्' प्रत्यय या क्तिन् प्रत्यय के अर्थ में विहित प्रत्ययों से भिन्न जो इकारान्त कृत् प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प करके होता है। जैसे—बहु, बह्वी, बहुः; पद्धति-पद्धती, पद्धतिः; उदार-उदारी, उदारा; कृपण कृपणी, कृपणा, पुराण-पुराणी पुराणा; यष्टि-यष्टी, यष्टिः। रात्री रात्रिः; अवनी, अवनिः; धरणी, धरणिः; श्रेणी, श्रेणिः; रजनी रजनिः; किन्तु कृतिः गतिः, मतिः में क्तिन्नन्त होने के कारण ङीष् नहीं होगा। ऐसे ही अजननिः यहाँ भी अ+जन्+अनि क्तिन् के अर्थ में है। अतः ङीष् नहीं होगा।

"पुंयोगादाख्यायाम्" (पा० सू०)

जो पुंवाचक शब्द (दाम्पत्य रूप या जन्य जनक भावरूप) पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हो उससे ङीष् होता है। जैसेः—गोपस्य स्त्री-गोपी, सूर्यस्य स्त्री-सूरी, अगस्त्यस्य स्त्री-अगस्ती, गणकस्य स्त्री गणकी आदि। केकयस्य कन्या-केकयी, देवकस्य दुहिता-देवकी आदि। यदि पुंवाचक शब्द के अन्त में 'पालक' शब्द हो तो ङीष् नहीं होता है। जैसे—गोपालिका, अश्वपालिका (गोपालक, अश्वपालक की स्त्री)।

"इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्" (पा० सू०)

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व रुद्र, मृड, हिम, अरण्य यव यवन, मातुल तथा आचार्य शब्दों से पुंयोग तथा कुछ अर्थ विशेषों में आनुक् और उसीके साथ ङीष् भी होता है। जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। ऐसे ही वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, मातुलानी तथा ❀ आचार्यानी पुंयोग में। हिम और अरण्य से महत्त्व अर्थ में आनुक तथा ङीष् होता है। जैसे—महत् हिमं *हिमानी*, महत् अरण्यम् *अरण्यानी*। 'यव से दुष्ट अर्थ में जैसे—दुष्टो यवो *यवानी*। 'यवन' से लिपि अर्थ में, जैसे—यवनानां लिपिः *यवनानी*, पुंयोग में यवनी।

'मातुलोपाध्याय योरानुग्वा' (का० वा०)

मातुल और उपाध्याय शब्द से आनुक् (आन) विकल्पसे होता है। जैसे— मातुलानी, मातुली; उपाध्यायानी, उपाध्यायी। किन्तु जो स्वयम् अध्यापिका है वहाँ उपाध्याय शब्द से ङीष् विकल्प करके होता है। जैसे—उपाध्यायी, उपाध्याया।

ऐसे ही जहाँ स्वयं व्याख्यात्री है वहाँ 'आचार्य' से ङीष् नहीं होता है। जैसे :—आचार्या = स्वयं व्याख्यात्री।

अर्य (स्वामी या वैश्य) तथा क्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में आनुक् विकल्प से होता है। जैसे—अर्याणी, अर्या (स्वामिनी या वैश्य जाति की स्त्री), क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। पुंयोग में अर्यी, क्षत्रियी।

"स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" (पा० सू०)

❀ 'आचार्यादणत्वंच' (का० वा०) आचार्य से स्त्रीलिङ्ग में णत्व नहीं होता है। ऐस ही जहाँ स्वयं व्याख्यात्री है वहाँ 'आचार्य' से ङीष् नहीं होता है। जैसे—आचार्या = स्वयं व्याख्यात्री।

असंयोगोपध (जिसके उपधा में संयोग न हो ऐसा) तथा उपसर्जन (विशेषणी भूत अर्थ बोधक) जो स्वाङ्ग वाचक शब्द तदन्त (स्वाङ्गान्त) जो अदन्त प्रातिपदिक उससे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् विकल्प करके होता है। यथाः—केशान् अतिक्रान्ता–अतिकेशी, अतिकेशा; चन्द्र इव मुखं यस्याः –चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा आदि। किन्तु संयोगपध में सुगुल्फा, सुपार्श्वा इत्यादि। यहाँ 'स्वाङ्ग' का अपना अङ्ग यह अर्थ नहीं है। यहाँ कुछ खास अर्थों में यह प्रयुक्त हुआ है। यहाँ तीन तरह के स्वाङ्ग लिए जाते हैं। जैसे :—

(१) जो अद्रव हो, मूर्तिमत् हो, प्राणियों में स्थिति हो एवं अविकारज हो (शरीर के विकार से उत्पन्न न हो) उसे स्वाङ्ग कहते हैं। इसलिए '*सुस्वेदा*' में 'स्वेद (पसीना) द्रवीभूत होने के कारण, 'सुज्ञाना' में 'ज्ञान' अमूर्त होने के कारण, '*सुमुखाशाला*' में 'मुख' अप्राणिस्थ होने के कारण एवं '*सुशोफा*' में 'शोफा' विकारज होने के कारण स्वाङ्ग नहीं है, अतः इन शब्दों में ङीष् नहीं होता है।

(२) अप्राणिस्थ होने पर भी यदि वह प्राणी में देखा गया हो तो भी स्वाङ्ग माना जाता है। जैसेः—सुकेशी, सुकेशावा रथ्या यहाँ 'केश' अप्राणिस्थ होने पर भी पूर्व प्राणिस्थ होने के कारण स्वाङ्ग है।

---

(१) अद्रवं मूर्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थम् अविकारजम्।

(२) अतत्स्थं तत्र दृष्टं च।

(३) तृतीय स्वाङ्ग का लक्षण यह है कि—यदि प्राणिस्थ अवयव विशेष से वह अप्राणि—द्रव्य (प्रतिमादि) प्राणिद्रव्य की तरह सम्बन्ध हो तो अप्राणियों के अङ्ग स्वाङ्ग हैं। जैसेः—सुमुखी सुमुखा, वा प्रतिमा, सुस्तनी, सुस्तना वा मूर्त्तिः। यहाँ 'मुख' या 'स्तन' अप्राणि—द्रव्य (प्रतिमा) में होता हुआ भी इस में प्राणिद्रव्य (ललनादि) की तरह सम्बद्ध होने के कारण स्वाङ्ग है।

❀ नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण और शृंग शब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् विकल्प से होता है। जैसेः—तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका, कुम्भोदरी, कुम्भोदरा, बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा, दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा, शुभ्रदन्ती, शुभ्रदन्ता सुकर्णी, सुकर्णा, सुशृंगी, सुशृङ्गा आदि।

÷ पुच्छ, अङ्ग, गात्र तथा कण्ठ शब्दान्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व अर्थ में ङीष् विकल्प करके होता है। जैसेः—सुपुच्छी, सुपुच्छा; मृद्वङ्गी, मृद्वङ्गा, सुगात्री, सुगात्रा, कोकिलकण्ठी, कोकिलकण्ठा आदि।

+ कवर, मणि, विष, तथा शर शब्दों से परे जो पुच्छ शब्द एवं उपमान से परे जो पक्ष और पुच्छ शब्द उनसे ङीष् नित्य ही होता है। जैसेः—कवर-पुच्छी, मणि-पुच्छी विष पुच्छी, शर-पुच्छी, उलूक-पक्षी, उलूक-पुच्छी आदि।

---

(३) तेनचेत्तत् तथा युतम् ॥ इति त्रिविधं स्वाङ्गम्।

❀ "नासिकोदरौष्ठ जङ्घा. दन्त, कर्ण, शृङ्गाच्च" (पा० सू०)

÷ "पुच्छाच्च" 'अङ्गगात्र कण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' (का० वा०)

+ 'कवर मणि विष-शरेभ्यो नित्यम्'

'उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च' (का० वा०)

+ क्रोड़ादिगण पठित स्वाङ्ग शब्दों से तथा बहुत अच् वाले स्वाङ्ग शब्दों से ङीष् नहीं होता है। इसी तरह सह, नञ् (अ) तथा विद्यमान पूर्वक स्वाङ्ग शब्दों से एवं संज्ञा में स्वाङ्ग, नख. और मुख शब्दों से ङीष् नहीं होता है। जैसे:—

क्रोड़ादि—कल्याण क्रोड़ा, सुशफा, सुघोणा, बह्वच, सुजघना, सुनयना, चारुदशना, महाललाटा, सुकेशा, अकेशा, विद्यमान नासिका; शूर्पणखा, गौरमुखा इत्यादि।

"जातेरस्त्री विषयादयोपधात्" (पा० सू०)

जातिवाचक जो अनियत स्त्रीलिङ्ग (हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्यको छोड़कर) अयोपध (जिसकी उपधामें यकार न हो ऐसा अदन्त प्रातिपदिक) उससे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है। जैसे :—तटी, वृषली, औपगवी, कठी आदि।

पारिभाषिक *स्वाङ्ग* की तरह *जाति* भी यहाँ पारिभाषिक ही ली जाती है। यह भी तीन तरह की होती है। जैसे :—

(१) * आकृति (अवयव सन्निवेश) ही जिसका ग्रहण (व्यञ्जक) है, वह एक जाति है। जैसे तटी आदि।

+ "न क्रोड़ादि बह्वचः॥ "सहनञ् विद्यमान पूर्वाच्च" "नख मुखात् संज्ञायाम्" (पा० सू०)

* (१) आकृति-ग्रहणा जातिः,

(२) जिस शब्दका व्यवहार तीनो लिङ्गों में न होता हो तथा केवल एक व्यक्ति में कह देने से और व्यक्तिओं में विना कहे ही जिसका बोध हो वह भी जाति है। जैसे :—वृषली, मनुषो आदि। त्रिलिङ्ग होनेसे 'शुक्ला' जाति नहीं है। संज्ञा होनेसे 'देवदत्ता' आदि शब्द भी जातिवाचक नहीं है। अतः ङीष् नहीं होता है।

(३) अपत्य प्रत्ययान्त शब्द तथा वेदकी शाखाओंके अध्येतृ-वाची शब्द भी यहाँ जातिवाचक हैं। जैसे :—औपगवी, कठी बह्वृची, चारायणी इत्यादि।

"इतोमनुष्यजातेः" (पा० सू०)

इदन्त मनुष्य-जातिवाचक शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है। जैसेः—दाक्षि-दाक्षी औदमेयी इत्यादि। मनुष्य से भिन्नमें तित्तिरिः यहाँ ङीष् नहीं होता है।

"ऊङुतः" (पा० सू०)

यकारोपधसे भिन्न मनुष्य जातिवाचक उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व में ऊङ् होता है। जैसे :—कुरूः।

❀ संज्ञामें बाहु शब्दान्त प्रातिपदिक से तथा पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। जैसेः—भद्रबाहूः पङ्गूः।

श्वशुर शब्दसे स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् होता है और साथही मध्य उकार तथा अन्त्य अकार का लोप भी हो जाता है। जैसे :—श्वशुर-श्वश्रूः।

---

(२) लिङ्गानांच न सर्वभाक् सकृदाख्यात निर्ग्राह्या

(३) गोत्रंच चरणैः सह॥

❀ "बाह्वन्तात् संज्ञायाम्" (पा० सू०)

† पूर्वपद उपमानवाचक हो और 'ऊरु' उत्तरपदमें हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् होता है। जैसेः— करभौ इव ऊरू यस्याः—करभोरूः, रम्भोरूः आदि।

+ संहित, शफ, लक्षण तथा वाम एवं सहित और सह शब्दों में से कोई पूर्व पदमें हो और ऊरू यदि उत्तर पदमें हो तो स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। जैसेः—संहितोरूः, शफोरूः, लक्षणोरूः तथा वामोरूः। एवं सहितोरूः, सहोरूः।

"संज्ञायाम्" (पा० सू०)

संज्ञा में कद्रु और कमण्डलु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। जैसे :—कद्रूः (नागमाता), कमण्डलूः (मृगविशेष) असंज्ञा में कद्रुः (वर्णविशेष), कमण्डलुः (पात्रविशेष)।

"शार्ङ्गरवाद्यञोङीन्" (पा० सू०)

जातिवाचक शार्ङ्गरव आदि शब्दों से तथा अञ् प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् होता है। जैसे—शार्ङ्गरवी, ब्राह्मणी आदि अञ् प्रत्ययान्त-वैदी, पार्थिवी इत्यादि। नृ और नर शब्दों से ङीन् और उसके साथ वृद्धि भी होती है। जैसे—नृ नर-नारी।

"यूनस्तिः" (पा० सू०)

युवन् शब्दसे स्त्रीलिङ्गमें 'ति' प्रत्यय होता है। जैसे—युवतिः। शतृ प्रत्ययान्त युवत् शब्द से स्त्रीलिंग में 'युवती' प्रयोग होता है।

नोट—छात्र स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों के संग्रह को अवश्य पढ़ें। अनेक शब्दों के लिए जो एक शब्द दिये गये हैं उनमें भी बहुत से स्त्री प्रत्ययान्त शब्द हैं जिनका विवेचन यहाँ जानबूझ कर छोड़ दिया गया है। अतः उन्हें भी ध्यानपूर्वक पढ़ें।

---

† "ऊरूत्तर पदादौपम्ये" (पा० सू०)

+ "संहितशफलक्षणवामादेश्च" (पा० सू०)

सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् (का० वा०)

छात्रों को सुविधा के लिए कुछ आवश्यक स्त्री प्रत्ययान्त शब्दों के रूप दिये जाते हैं। जिनके अर्थों में भेद होता है उनके अर्थ पृथक् पृथक् बतलाये गये हैं।

	प्रातिपदिक	स्त्री प्रत्ययान्त शब्द	अर्थ
१	अकेश	अकेशा	केश-रहिता
२	अग्नि	अग्नायी	अग्नि की स्त्री
३	अतिधीवन्	अतिधीवरी	धीवानम् अतिक्रान्ता
४	अतिसुत्वन्	अतिसुत्वरी	सुत्वानम् अतिक्रान्ता
५	अनडुह्	अनड्वाही-अनडुही	गाय
६	अरण्य	अरण्यानी	महत् अरण्यम्
७	अर्य	अर्याणी -अर्या	स्वामिनी या वैश्या
		अर्यी	अर्य (वैश्य) की स्त्री
८	अशिशु	अशिश्वी	शिशुहीना
९	अष्टक	अष्टका	पितृदेवत्य श्राद्ध
		अष्टिका	अष्टाध्यायी
१०	आचार्य	आचार्यानी	आचार्य की स्त्री
		आचार्या	स्वयं व्याख्यात्री
११	इन्द्र	इन्द्राणी	इन्द्र की स्त्री
१२	उपाध्याय	उपाध्यायानी—उपाध्याया	उपाध्याय की स्त्री
		उपाध्यायी—उपाध्याया	स्वयम् अध्यापिका
१३	एकपति	एकपत्नी	एकः पतिः यस्याः
१४	एत	एनी—एता	चित्रवर्णा

१५	कवर	कवरी	केशवेश -गुथी हुई चोटी
		कवरा	चित्रा—रंगबिरंगा
१६	कामुक	कामुकी	मैथुनेच्छावती
		कामुका	धनादि की इच्छावाली
१७	काल	काली	कृष्णवर्णा
		काला	क्रूरता से युक्त स्त्री या कालकेय माता
१८	कुमार	कुमारी	अविवाहिता कन्या
१९	कुरुचर	कुरुचरी	कुरौचरति या
२०	कुश	कुशी	लोहविकार फाला
		कुशा	रस्सी, रज्जुः
२१	कुण्ड	कुण्डी	कमण्डलुः-जारजा स्त्री
		कुण्डा	दहनीया
२२	कुर्वत्	कुर्वती	करती हुई
२३	क्रीडत्	क्रीडन्ती	खेलती हुई
२४	क्रीणत्	क्रीणती	खरीदती हुई
२५	किंकर	किंकरा	नौकरानी
		किंकरी	किंकर की स्त्री
२६	कुसित (सूदखोर)	कुसितायी	कुसित की स्त्री
२७	कुसिद (")	कुसिदायी	कुसिद की स्त्री
२८	केकय	केकयी	केकयस्य दुहिता
२९	कोकिल	कोकिला	कोयल
३०	क्षत्रिय	क्षत्रियाणी, क्षत्रिया	क्षत्रिय जाति की स्त्री
		क्षत्रियी	क्षत्रियस्य स्त्री

३१	गृहपति	गृहपत्नी, गृहपतिः	गृहस्थ स्वामिनी
३२	गोण	गोणी	बोरा (आवपन)
		गोणा	कस्याश्चित् नाम
३३	घट	घटी	क्षुद्र घटः
		घटा	समूहार्थे (गजघटा)
३४	घटोधस्	घटोध्नी	घट इव ऊधः यस्याः
३५	जानपद	जानपदी (ङीप्)	वृत्तिः (जीविका)
		जानपदी (ङीप्)	जनपदवासिनी
३६	जुह्वत्	जुह्वती	हवन करती हुई
३७	तस्थिवस्	तस्थुषी	
३८	तन्वत्	तन्वती	विस्तार करती हुई
३९	तारक	तारका	ज्योतिषि, नक्षत्र
		तारिका	तारनेवाली
४०	तुदत्	तुदन्ती, तुदती	व्यथित करती हुई
४१	ददत्	ददती	देती हुई
४२	दण्डिन्	दण्डिनी	दण्डवाली
४३	दाक्षि	दाक्षी	दक्षस्य अपत्यं स्त्री
४४	दिव्यत्	दिव्यन्ती	खेलती हुई
४५	धीवन्	धीवरी	बुद्धिमती
४६	नरपति	नरपत्नी, नरपतिः	नरस्य रक्षिका
४७	नृ, नर	नारी	
४८	नाग	नागी	स्थूला स्त्री हथिनी की तरह
		नागा	दीर्घ नागिन की तरह

४६	निषेदिवस्	निषेदुषी	बैठी हुई
५०	नील	नीली	गौः, ओषधिः
		नीला	शाटी, मेघमाला
५१	पचत्	पचन्ती	पाक करती हुई
५२	पङ्गु	पङ्गूः	पङ्गु स्त्री
५३	पाण्डु	पाण्डुः	पाण्डु वर्ण
५४	पाणिगृहीत	पाणिगृहीती	भार्या
		पाणिगृहीता	अन्या हस्तगृहीता
५५	पुत्र	पुत्री	कन्या
५६	पूतक्रतु	पूतक्रतायी	शची, इन्द्राणी
५७	भव	भवानी	पार्वती
५८	भवत् (शत्रन्त)	भवन्ती	होती हुई
५९	भवत् (सर्वनाम)	भवती	
६०	भाज	भाजी	पक्व व्यञ्जन विशेष
		भाजा	अपक्वा
६१	मघवन्	मघोनी, मघवती	इन्द्राणी
६२	मत्स्य	मत्सी	मछली
६३	मनु	मनावी, मनायी, मनुः	मनोः स्त्री
६४	महाराज	महाराजी	महाराज की स्त्री
६५	मातुल	मातुलानी, मातुली	मातुलस्य स्त्री
६६	मृड	मृडानी	रुद्राणी
६७	यव	यवानी	दुष्टो यवः

६८	यवन	यवनानी	यवनस्य लिपिः
		यवनी	यवनस्य स्त्री
६९	यातृ	यान्ती, याती	जाती हुई
७०	युवत्	युवती	
७१	युवन्	युवतिः	
७२	युवराज	युवराजी	
७३	वर्तक	वर्तका	पक्षि-विशेषः
		वर्तिका	
७४	वर्णक	वर्णका	प्रावरण विशेषः
		वर्णिका	स्तोत्री, स्तुति करनेवाली
७५	वृषाकपि	वृषाकपायी	श्री गौरी लक्ष्मी च
७६	राजन्	राज्ञी	
७७	राजसख	राजसखी	
७८	रोहित	रोहिणी, रोहिता	रक्तवर्णा
७९	लोहित	लोहिता	रक्तवर्णा
८०	शूद्र	शूद्रा	शूद्रत्व जाति विशिष्टा
		शूद्री	शूद्र की स्त्री
८१	श्वन्	शुनी	कुक्कुरी
८२	श्वेत	श्वेता	श्वेतवर्णा
८३	सकेश	सकेशा	केशेन सह वर्तमाना, केशवाली
८४	सखि	सखी	
८५	सुकेश	सुकेशी, सुकेशा	सुन्दर केशवाली

८६	सुदन्त	सुदन्ता, सुदन्ती	सुन्दर दाँतवाली
		सुदती	(युवती) अवस्था अर्थमें
८७	सूर्य	सूर्या	सूर्यस्य देवता स्त्री
		सूरी (कुन्ती)	सूर्यस्य मानुषी स्त्री
८८	स्थल	स्थली	अकृत्रिमा भूमिः
		स्थला	पुरुषादि परिष्कृता कृत्रिमा भूमिः
८९	सारङ्ग	सारङ्गी	चित्रवर्णा
९०	हरित	हरिणी, हरिता	हरितवर्णा
९१	हरिण	हरिणी	मृगी

इति स्त्री-प्रत्यय प्रकरणम् ।

अथ कारक-प्रकरणम्

कारक (Case)

'क्रिया जनकं *कारकम्*,। अर्थात् क्रिया के जनक या सम्पादक को कारक कहते हैं। करोति क्रियां निर्वर्तयति' इति कारकम् यही कारक पदकी सर्व सिद्धान्त व्युत्पत्ति है। इसलिए जो क्रिया या व्यापार का निर्वर्तक या किसी न किसी रूप में साधक नहीं है उसे कारक नहीं कहते हैं। ये कारक संस्कृत में छः हैं। यथा :—(१) कर्त्ता (२) कर्म च (३) करणं च (४) सम्प्रदानं तथैवच (५) अपादानम (६) अधिकरणम् इत्याहुः कारकाणि षट्। जैसे—

'छात्रः विद्यालये अध्यापकात् ज्ञानाय मनसा पुस्तकं पठति। यहाँ पठन रूप व्यापार का सम्पादक किसी न किसी रूप में प्रत्येक है, क्योंकि *छात्र* कर्त्ता होकर, *विद्यालय* आधार होकर, *अध्यापक* अपादान रूप से, *ज्ञान* उद्देश्यत्वेन सम्प्रदान होकर, *मन* प्रकृष्ट उपकारक तथा करण रूप से तथा पुस्तक कर्म रूप से एक हो पठन क्रिया के निष्पादन करते हैं। जो क्रिया का सम्पादक नहीं है उसे *कारक* नहीं कहते हैं। इसोलिये *सम्बन्ध* और *सम्बोधन* संस्कृत में कारक नहीं माने गये हैं;

क्योंकि 'हे बालक (त्वम्) रामस्य वस्त्रं पश्य' यहाँ पर 'देखो' इस व्यापार का कर्त्ता 'त्वम्' है न कि बालक। और राम केवल वस्त्र का सम्बन्ध बतलाता है न कि व्यापार का सम्पादन करता है

इसलिए सम्बन्ध और सम्बोधन कारक नहीं है। पूर्वोक्त-कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, और अधिकरण-इन छः कारकों में क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी सप्तमी विभक्ति होती है। सम्बन्ध में षष्ठी और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

नमः स्वस्ति, विना, नाना ऋते आदि कुछ अव्यय शब्दों के योग में भी विभक्तियाँ होती हैं। उन विभक्तियों को उपपदविभक्ति कहते हैं। जहाँ उपपदविभक्ति और कारक विभक्ति दोनों की प्राप्ति रहती है वहाँ कारक विभक्ति ही होती है। 'उपपदविभक्तेः कारक विभक्तिर्बलीयसी'। जैसे—'मुनित्रयं' नमस्कृत्य' यहाँ नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति से बलवती, जो नमस्करण रूप क्रिया के योग में द्वितीया कारक विभक्ति है, वही होती है।

जहाँ एकही शब्द में दो कारक विभक्तियों की प्राप्ति हो वहाँ अधोलिखित क्रम के अनुसार उत्तरोत्तर पर विभक्ति होती है। यथा—

'अपादान-सम्प्रदान-करणाधार-कर्मणाम्।
कर्तुश्चोभय सम्प्राप्तौ परमेव प्रवर्तते'॥

जैसे—'पश्य बालको गच्छति' यहाँ पर 'पश्य का कर्म होने के कारण बालक से कर्म-विभक्ति द्वितीया की प्राप्ति है और 'गच्छति का कर्त्ता होने के कारण उससे कर्तृ-विभक्ति प्रथमा की भी प्राप्ति है; किन्तु यहाँ पर इस पूर्वोक्त क्रम में पर जो कर्तृ विभक्ति प्रथमा है वही होती है।

प्रथमा विभक्ति (First Case ending suffix)

'प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिणाम-वचन मात्रे प्रथमा' (पा० सू०)

प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गं च परिमाणं च वचनं च इति प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनानि (इतरेतर द्वन्द्व) तानि एव इति प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग परिमाण वचन मात्रम् तस्मिन् प्रथमा स्यात्। द्वन्द्व समास के अन्त या आदि में श्रूयमाण जो पद रहता है उसका प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है ❀। इसलिये यहाँ मात्र पद का सम्बन्ध प्रातिपदिकार्थ आदि प्रत्येक शब्द के साथ होगा। अतः इसका अर्थ हुआ प्रतिपदिकार्थ मात्र में, प्रातिपदिकार्थापत्तया लिङ्गमात्र के आधिक्य में तथा परिमाण मात्र के आधिक्य में एवं वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिक का अर्थ है सत्ता ❀ अथवा स्वार्थ और द्रव्य; या स्वार्थ, द्रव्य और लिङ्ग; या स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग और संख्या; या स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग, संख्या एवं कारक। जिस प्रातिपदिक के उच्चारण करते ही स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग, संख्या और कारक इन पाँचों में जिसका ज्ञान निश्चित रूप से हो उसे ही यहाँ प्रातिपदिकार्थ कहते हैं † इसलिये उच्चैः नीचैः आदि अलिङ्गक एवं सत्ता

❀ द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते।

❀ प्रातिपदिकार्थः सत्ता।

† स्वार्थ—द्रव्य—लिङ्ग—संख्या—कारकाणि इति पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः।

‡ यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते स्वार्थ-द्रव्य-लिङ्ग-संख्या कारकेषु मध्ये यस्यार्थस्यनियमेनोपास्थितिः स प्रातिपदिकार्थः।

मात्र बोधक अव्यय शब्दों से तथा रामः, सीता एवं ज्ञानम् आदि नियतलिङ्गक शब्दों से प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

जिन शब्दों का लिङ्ग निश्चित नहीं हैं उन शब्दों से लिङ्ग मात्राधिक्य में प्रथमा होती है। जैसे—तटः, तटी, तटम् तथा कृष्णः, कृष्णा, कृष्णम् इत्यादि विशेषण शब्दों में लिङ्ग मात्राधिक्य में प्रथमा विभक्ति हुई है।

परिमाण मात्रे प्रथमा का उदाहरण है—द्रोणः, तण्डुलः, *खारी* शाली, आढ़कं, चूर्णम् इत्यादि। यहाँ परिमाण मात्र में प्रथमा करने से द्रोणरूप परिमाण से परिच्छिन्न (तौला हुआ) तण्डुल ऐसा अभीष्ट अर्थ होता है। यदि प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा होती तो द्रोण रूप तण्डुल ऐसा अर्थ होता जो कि अभीष्ट नहीं है।

वचनमात्रे प्रथमा का उदाहरण है—एकः, द्वौ, बहवः आदि। यहाँ पर एकत्व, द्वित्व तथा बहुत्व एक, द्वि और बहु शब्द से क्रमशः उक्त होने पर भी वचन मात्र में प्रथमा विधान करने के कारण प्रथमा विभक्ति होती है। अन्यथा 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस नियम से यहाँ एकत्व, द्वित्व एवं बहुत्व के द्योतक क्रमसे सु, औ और जस विभक्ति नहीं आती।

"सम्बोधनेच" (पा० सू०)

अभिमुखी कृत्य ज्ञापनं सम्बोधनम्। सम्बोधने अधिकेगम्येऽपि प्रथमास्यात्। अर्थात् जो वस्तु पहले से * *सिद्ध* है उसके अभि-

---

* सिद्धस्याभिमुखीकरणभावं सम्बोधनं विदुः।

मुखीकरण को सम्बोधन कहते हैं, इसलिये सम्बोधन विभक्ति अनुवाद्य विषय में होती है न कि विधेय विषय में जैसे—हे राम! मां पाहि।' 'किन्तु राजन्! सार्व भौमो भव' यहाँ राजा पहले से सिद्ध है इसलिये अनुवाद्य होने के कारण सम्बोधन में प्रथमा हुई, किन्तु 'सार्व भौम' विधेय है अतः उससे सम्बोधन में प्रथमा नहीं होती है।

[इति प्रथमा]

द्वितीया विभक्ति (Second Case ending)

कर्म कारक (Accusative Case)

"कर्तुरीप्सिततमं कर्म" (पा० सू०)

कर्तुः व्यापारेण प्राप्तुं यत् इष्टतमं तत् कारकम् कर्मसंज्ञं भवति कर्ता के व्यापार के द्वारा प्राप्त करने में अत्यन्त अभिष्ट जो कारक उसे कर्म संज्ञा होती है। यह कर्म तीन तरह का होता है। ❀ निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य।

(१) उत्पाद्य को निर्वर्त्य कर्म कहते हैं। अर्थात् जो पहले से नहीं है क्रिया के द्वारा उत्पन्न होता है। जैसे:—

घटं करोति। पुत्रं प्रसूते आदि।

(२) विकार्य कर्म वह है जो प्रकृति का उच्छेद करके अवस्थान्तर को प्राप्त करता है। जैसे—काष्ठं *भस्म* करोति। सुवर्णं कुण्डलं करोति। तण्डुलान् ओदनं पचति आदि।

❀ यदसंजायतेपूर्वं जन्मना यत् प्रकाशते। तन्निर्वर्त्यम्, विकार्यं चकर्म द्वेधा व्यवस्थितम्॥ प्रकृत्युच्छेदसम्भूतं किञ्चित् काष्ठादि भस्मवत् किञ्चिद् गुणान्तरोत्पत्या सुवर्णादि विकारवत्॥ क्रियाकृत विशेषाणां सिद्धिर्यत्र नगम्यते। दर्शनादनुमानाद्वा तत् प्राप्यमिति कथ्यते॥

(३) प्राप्यकर्म उसे कहते हैं जिसमें कर्ता की क्रिया से कुछ विशेषता नहीं होती है। जैसे--*ग्रामं* गच्छति। चन्द्रं पश्यति। *शास्त्रं* पठति। धनम् इच्छति आदि।

"कर्मणि द्वितीया" (पा० सू०)

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जब सकर्मकधातु से कर्ता में तिङ् या कृत् प्रत्यय होता है तब कर्म अनुक्त रहता है। वहाँ द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे-*मधुरं* खादति। *हरिं* सेवते। *ग्रामं* गतवान् इत्यादि। कर्म उक्त होने पर कर्म से प्रथमा विभक्ति होती है। जब सकर्मक धातु से कर्म में तिङ् या कृत् प्रत्यय होता है तब कर्म उक्त हो जाता है वहाँ प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे भक्तेन *हरिः* सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः *विष्णुः* इत्यादि। कर्म का अभिधान जैसे तिङ् और कृत् से होता है वैसे ही तद्धित, समास और निपात से भी होता है। जैसे—शतेन क्रीतः शत्यः अश्वः यहाँ पर 'शत्यः' में तद्धित 'यत्' प्रत्यय से अश्वरूप कर्म उक्त हो गया, अतः द्वितीया नहीं हुई। प्राप्तः आनन्दः यम् स प्राप्तानन्दः पुरुषः। यहाँ पर कर्म रूप अन्य पदार्थ समास से उक्त हो गया है अतः पुरुष से द्वितीया नहीं हुई। निपात से भी कर्म उक्त हो जाने पर द्वितीया नहीं होती है। जैसे- *विषवृक्षोऽपि* संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् यहाँ पर *असाम्प्रतम्* (न युज्यते) इस निपात से कर्म उक्त हो गया है अतः विषवृक्ष से द्वितीया नहीं होती है। ऐसे 'तं मूर्खं इति मन्यते' यहाँ पर इति से मूर्खरूप कर्म उक्त है अतः मूर्ख से द्वितीया नहीं हुई।

तथायुक्तं चानीप्सितम्" (पा० सू०)

ईप्सिततमवत् क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्म संज्ञं-स्यात्।

कर्ता के व्याप्यार में ईप्सिततम के साथ अनीप्सित भी कारक कर्म संज्ञक होता है। जैसे—छात्रः विद्यालयं गच्छन् तृणं स्पृशति यहाँ 'तृण' उपेक्ष्य होने से अनीप्सित है। ओदनं खादन् विषं खादति यहाँ पर 'विष' द्वेष होने के कारण अनीप्सित है।

"अकथितं च" (पा० सू०)

अपादानादि विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। अपादान, सम्प्रदान, अधिकरण आदि से अविवक्षित कारक भी कर्म संज्ञक होता है। यहाँ अकथित का अर्थ "अनुक्त" नहीं है। अकथित का अर्थ है अविवक्षित या अप्रधान या गौण। अर्थात्—

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शास्-जि-मथ्-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यात् *अकथितं* तथा स्यात् नी-हृ-कृष्-वहाम्॥

दुह् से लेकर मुष् पर्यन्त बारह धातुओं के तथा नी-हृ-कृष् और वह इन चार धातुओं के मुख्य कर्म से युक्त (सम्बद्ध) जो गौण कर्म उसे *अकथित कर्म* कहते हैं। यथा—

गोपः *गां* दुग्धं दोग्धि। यहाँ गो शब्द में अपादानत्व की अविवक्षा करके कर्मत्व की विवक्षा की गई।

दरिद्रः *धनिकं* धनं याचते। यहाँ धनिकात् की जगह 'धनिकं' गौण कर्म है। 'पाचकः *तण्डुलान्* ओदनं पचति' में 'तण्डुलैः' की जगह 'तण्डुलान्' अकथित कर्म है। राजा चौरान् शतं दण्डयति।

यहाँ पर भी 'चौरेभ्यः' में अपादानत्व की अविवक्षा करके कर्मत्व की विवक्षा की गई। गोपः व्रजम् गाम् अवरुणद्धि। यहाँ 'व्रजे' की जगह 'व्रजं हुआ है। शिष्यः गुरुं धर्मं पृच्छति 'गुरुणा' में करणत्व की अविवक्षा करके यहाँ कर्मत्व की विवक्षा हुई है।

'पूजकः वृक्षं पुष्पं चिनोति' में 'वृक्षात्' की जगह वृक्षं' है। पिता पुत्रं धर्मं ब्रूते। यहाँ 'पुत्राय' में सम्प्रदानत्व को अविवक्षा करके कर्मत्व की विवक्षा की गई है।

शिक्षकः *बालं* पाठं शास्ति में भी 'बालं' 'बालाय' की जगह है। यज्ञदत्तः देवदत्तं शतं जपति। यहाँ 'देवदत्तात् के स्थान में 'देवदत्तम् हुआ है।

विष्णुः *क्षीरनिधिं* सुधां मथ्नाति। यहाँ पर अपादान कारक की जगह 'क्षीरनिधिम्' अकथित कर्म है।

'चौरः देवदत्तं शतं मुष्णाति' में भी अपादानत्व की अविवक्षा है और 'देवदत्तम्' यह कर्म की विवक्षा है। गोपः *ग्रामं* गां नयति विजयी स्वगृहं धनं हरति, कृषकः क्षेत्रं हलं कर्षति, भृत्यः *ग्रामं* भारं वहति आदि में 'ग्रामं', 'स्वगृहं' तथा 'क्षेत्रम्' अधिकरण कारक की जगह कर्मत्वेन विवक्षा करने पर अकथित कर्म हैं।

यहाँ सभी भिन्न आकृति वाले शब्द अकथित कर्म हैं तथा दुग्धम् आदि दूसरे कर्म मुख्य कर्म है।

नोट—(१) इन पूर्वोक्त सोलह धातुओं के अर्थों में और भी जितने द्विकर्मक धातु हैं उनके भी मुख्य कर्म से सम्बद्ध कर्म को अकथित कर्म कहते हैं। जैसेः—वामनः बलिं वसुधां *भिक्षते*। अध्यापकः *शिष्यं* धर्मं *भाषते*, *कथयति*, वक्ति इत्यादि।

(२) अविवक्षित कारक ही अकथित कर्म होता है। इसलिये राज्ञः पुरुषं मार्गं पृच्छति इत्यादि जगहों में 'राज्ञः' के स्थान में 'राजानम् पुरुषम्' नहीं होगा, क्योंकि सम्बन्ध कारक नहीं है।

(३) दुहादि बारह धातुओं से कर्मवाच्य में तिङ् या कृत् प्रत्यय गौण कर्म में होता है। इसलिये गौण कर्म ही उक्त होगा और उससे द्वितीया विभक्ति नहीं होगी, प्रथमा विभक्ति होगी। और नी, हृ, कृष् तथा वह् से कर्मवाच्य में प्रधान कर्म में प्रत्यय होता है, अतः वही उक्त होगा और उससे द्वितीया नहीं होगी, प्रथमा विभक्ति होगी। जैसे—गोपेन गौः दुग्धं दुह्यते, दीनेन धनिकः धनं याचितः इत्यादि; पुरुषेण ग्रामम् अजा नीयते, गोपेन ग्रामं गौः नीता इत्यादि।*

† अकर्मक धातुओं के योग में देशवाचक (कुरु आदि) काल-वाचक (मास आदि) भाववाचक (गोदोह आदि) तथा गन्तव्य मार्गवाचक (क्रोश आदि) शब्दों से कर्म संज्ञा होती है। जैसे—कुरून्, पाञ्चालान् वा स्वपिति; मासं, वर्षं वा आस्ते; गोदोहम् तिष्ठति; क्रोशं, योजनं वा आस्ते इत्यादि।

"अधि शीङ् स्थासां कर्म" (पा० सू०)

'अधि' (उपसर्ग) पूर्वक शी, स्था और आस् धातुओं के आधार को कर्मसंज्ञा होती है। जैसे—शय्यामधिशेते, आसन-मधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

---

* गौणे कर्मणि दुह्यादेः, प्रधाने नीहृकृष् वहाम् ..लादयोमताः॥

† 'अकर्मक धातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्'। [का० वा०]

"अभिनिविशश्च" (पा० सू०)

'अभिनि' (पूर्वक) विंश धातु का आधार कर्मसंज्ञक होता है। जैसे—अभिनिविशते सन्मार्गम्। कहीं इससे कर्मसंज्ञा नही भी होती है। जैसे—अभिनिविशते पापे, पापे अभिनिवेशः। यहाँ अधिकरण में सप्तमी हुई है।

नोट—यदि विश् धातु से पूर्व 'अभि-नि' सम्मिलित होकर नहीं रहेगा तो कर्म संज्ञा नहीं होगी। जैसे—कुशः पदे निविशते।

"उपान्वध्याङ् वसः" (पा० सू०)

उप, अनु, अधि, आङ, इनमें से किसी उपसर्ग के आगे वस् धातु के रहने पर उसके आधार को कर्मसंज्ञा होती है। जैसे—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसतिवा।

नोट—यदि उपपूर्वक वस् धातु का अर्थ उपवास करना (निराहार रहना) होगा तो कर्मसंज्ञा नहीं होगी। जैसे—मुनिः वने उपवसति।

* उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अध्यधि, अधोऽधः, अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति, अन्तरा तथा अन्तरेण शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—उभयतः (दोनों तरफ) कृष्णं गोपाः, सर्वतः (चारों तरफ) गुरुं छात्राः धिक् कृष्णाभक्तम्, उपर्युपरि लोकं हरिः अध्योधि लोकं हरिः,

---

* उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापिदृश्यते'॥
'अभितः परितः समया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि'॥
"अन्तरान्तरेणयुक्ते" (पा० सू०)

अधोऽधः लोकं हरिः; अभितः शिक्षकं छात्राः; परितश्च हरिं सुराः, वर्तते समया (समीपे) ग्रामम्; निकषा (समीपे) लङ्काम् हनिष्यति; हा मनुजं कृष्णाभक्तम्; बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्; अन्तरा (मध्य) त्वां मां च कृष्णः; किं सुखं कृष्णम् अन्तरेण (विना) इत्यादि। ❀

"कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे" (पा० सू०)

गुण, क्रिया या द्रव्य से कालवाचक या अध्व (मार्ग) वाचक शब्द का निरन्तर (अविच्छिन्न) संयोग रहने पर कालवाचक और अध्व वाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—गुण के साथ अत्यन्त संयोग—मासं कल्याणवान्, क्रोशं कुटिलोगिरिः; क्रिया के साथ निरन्तर संयोग में—मासम् अधीते, क्रोशम् अधीते; द्रव्य के साथ अविच्छिन्न संयोग में—मासं गुडधानाः, क्रोशं सस्यानि सन्ति इत्यादि। किन्तु अत्यन्त संयोग नहीं रहने पर 'मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्य एकदेशे पर्वतः आदि।

"कर्म प्रवचनीयाः (पा० सू०)

कर्म (क्रियां) प्रोक्तवन्तः इति कर्मप्रवचनीयाः। कुछ, अनु, प्रति, परि, अपि आदि अव्यय हैं जो तत्काल में क्रिया को नहीं बतलाते हैं किन्तु सुबन्तपदों के साथ मिलकर अर्थ विशेष को

❀ उपर्यादिषु सामीप्ये द्वित्वेषु द्वितीया। अर्थात् उपरि, अधि तथा अधः शब्दों में जहाँ "उपर्यध्यधसः सामीप्ये" (पा० सू०) से द्वित्व होगा वहीं द्वितीया विभक्ति होगी। जहाँ वीप्सा में "नित्यवीप्सयोः" (पा० सू०) से द्वित्व होगा वहाँ षष्ठी हो जायगी। जैसे—उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः। उपर्युपरि सर्वेषाम् आदित्य इव ते जसा इत्यादि।

बतलाते हैं उन्हें *कर्मप्रवचनीय* कहते हैं, वे उपसर्ग नहीं हैं। इन कर्मप्रवचनीयों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है।

* लक्षण, तृतीयार्थ तथा हीनार्थ द्योत्य रहने पर 'अनु' कर्मप्रवचनीय है और उसके योग में द्वितीया होती है। जैसे—*जपमनु प्रावर्षत्* (जप करने के बाद वृष्टि), *नदीम् अनु सेना सम्बद्धा* (नदी के साथ सेना), *अनु हरिं सुराः* हरि से हीन अर्थात् अधम श्रेणी के सुर इत्यादि।

† हीन और अधिक अर्थ में 'उप' कर्मप्रवचनीय होता है। किन्तु अधिक अर्थ में उसके साथ सप्तमी होती है, जिसका विवेचन आगे किया जायगा। हीनार्थ में—*उपहरिं देवाः* (हरि से देवन्यून हैं।)

* लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग तथा वीप्सा अर्थों में प्रति, परि तथा अनु; भाग से अतिरिक्त पूर्वोक्त तीनों अर्थों में 'अभि', एवं पदार्थ, सम्भावना अन्ववसर्ग गर्हा तथा समुच्चय अर्थों में 'अपि' कर्मप्रवचनीय संज्ञक होते हैं। जैसे—लक्षण में वृक्षं प्रति, परि, अनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थंभूताख्यान में भक्तो विष्णुं प्रति, परि, अनु वा। भाग में लक्ष्मीः हरिं प्रति, परि, अनु वा। वीप्सा में वृक्षं वृक्षं प्रति, परि, अनु वा इत्यादि।

---

* "अनुर्लक्षणे" "तृतीयार्थे" "हीने" (पा० सू०)

† "उपोऽधिके च" (पा० सू०)

* "लक्षणेत्थंभूताख्यान भाग वीप्सासु प्रतिपर्यनवः"
"अभिरभागे" "अपिः पदार्थ-सम्भावनान्ववसर्ग-गर्हा-समुच्चयेषु" (पा० सू० (

† अतिक्रमण तथा पूजा अर्थ में 'अति' कर्मप्रवचनीय-संज्ञक होता है। जैसे—अति देवान् कृष्णः।

"गति-बुद्धि-प्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाणाम् अणिकर्ता सणौ" (पा० सू०)

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक (भक्षणार्थक,) शब्द-कर्मक तथा अकर्मक धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। अर्थात् णिच करने से पूर्व शुद्धधातु के कर्ता, जो णिच, करने पर प्रयोज्य कर्ता होते हैं, इन पूर्वोक्त अर्थों कर्म हो जाते हैं। जैसे—गमनार्थक धातु—

उमेशः गृहं गच्छति, याति, व्रजति; रमेशः *उमेश* गृहं गमयति, यापयति, व्राजयति आदि। बुद्ध्यर्थक धातु—*शिष्यः* धर्मं बुध्यते, जानाति, वेत्ति; गुरुः *शिष्यम्* धर्मं बोधयति, ज्ञापयति, वेदयति आदि। प्रत्यवसानार्थक धातु—*शिशुः* अन्नं भुङ्क्ते, अश्नाति; माता *शिशुम्* अन्नं भोजयति, आशयति आदि। शब्द कर्मक धातु छात्रः वेदम् अधीते, पठति; गुरुः *छात्रं* वेदम् अध्यापयति, पाठयति आदि। अकर्मक धातु—*बालकः* आस्ते, तिष्ठति, शेते, हसति, निद्राति; माता *बालकम्* आसयति, स्थापयति, शाययति, हासयति, निद्रापयति इत्यादि।

---

† "अतिरतिक्रमणेच" (पा० सू०)

नोट—(१) पूर्वोक्त पाँच ही अर्थों में प्रयोज्य कर्ता को कर्म संज्ञा होती है। इनसे भिन्न अर्थों में प्रयोज्य कर्ता से तृतीया होती है। जैसे—पाचकः ओदनं पचति, प्रभुः पाचकेन ओदनं पाचयति इत्यादि। (२) अण्यन्त का कर्ता ही ण्यन्त में कर्म होता है। ण्यन्त का कर्ता फिर ण्यन्त में कर्मसंज्ञक नहीं होता है। जैसे—देवेन्द्रः माधवं ग्रामं गमयति, नरेन्द्रः देवेन्द्रेण माधवं ग्रामं गमयति।

गत्यर्थक धातुओं में ण्यन्त नी और वह् धातु का प्रयोज्य कर्ता कर्मसंज्ञक नहीं होता है। जैसे--भृत्यः भारं नयति, वहति वा, प्रभुः भृत्येन भारं नाययति, वाहयतिवा। किन्तु ण्यन्त वह् धातु का प्रयोजक कर्ता नियन्ता (सारथि) हो तो प्रयोज्य से कर्म संज्ञा होती ही है। जैसे--सूतः वाहान् रथं वाहयति। *

† भक्षणार्थक धातुओं में ण्यन्त अद्, खाद् तथा अहिंसार्थक भक्ष् के प्रयोज्य कर्ता से कर्म संज्ञा नहीं होती है। जैसे—माता बालकेन अन्नम् आदयति, खादयति, भक्षयति वा। किन्तु हालिकः भक्षयति बालवर्दान् सस्यम्। यहाँ हिंसार्थक होने से कर्म संज्ञा होती ही है।

‡ जल्प्, भाष् आदि तथा दृश धातु के अण्यन्त कर्ता ण्यन्त में कर्म संज्ञक होता है। जैसे--पुत्रो धर्मं जल्पति, भाषते वा; पिता पुत्रं धर्मं जल्पयति, भाषयति वा। भक्ताः हरिं पश्यन्ति, गुरुः भक्तान् हरिं दर्शयति।

---

* 'नीवह्योर्न' 'नियन्तृ कर्तृकस्यवहेरनिषेधः' (का० वा०)

† 'आदिखाद्योर्न' 'भक्षेरहिंसार्थस्य न" (का० वा०)

‡ 'जल्पति प्रभृतीनामुपसंख्यानम्। 'दृशेश्च' (का० वा०)

शब्दाययति (शब्द+क्यङ्+णिच = शब्दाययति शब्दं करोति) का प्रयोज्य कर्ता कर्म संज्ञक नहीं होता है। जैसे—देवदत्तः शब्दायते, यज्ञदत्तः देवदत्तेन शब्दाययति।

ण्यन्तहृ और कृधातु तथा आत्मनेपदी ण्यन्त दृश् धातु एवं अभिपूर्वक वद् धातु के अण्यन्त कर्ता णिच करने पर कर्म विकल्प से होता है। जैसे—*भृत्यः* कटं हरति, करोति वा, तं प्रेरयति *भृत्यं*, *भृत्येन* वा कटं हारयति कारयति वा। भक्तः देवम् अभिवदति, पश्यति वा तं गुरुः प्रेरयति इति गुरुः *भक्तं*, भक्तेन वा देवम् अभिवादयते, दर्शयते वा।❀

नोटः—† ण्यन्त धातुओं से कर्म में प्रत्यय करने पर प्रयोज्य कर्म उक्त होता है। अतः उससे द्वितीया विभक्ति नहीं होती है।

जैसे—सूतः *वाहान्* रथं वाहयति—कर्तृवाच्य,

सूतेन *वाहाः* रथं वाह्यन्ते—कर्मवाच्य।

क्रियाविशेषण से द्वितीया विभक्ति होती है। क्रिया विशेषण सदा नपुंसक और एकवचनान्त होता है। जैसे—*मधुरं* गायति, सुन्दरं पठति, *शीघ्रं* गच्छति इत्यादि।

इति द्वितीया

❀ "हृक्रोरन्यतरस्याम्" (पा० सू०) 'अभिवादि—दृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम्' (का० वा०)

(बुद्धिभक्षार्थयोः शब्द कर्मकाणां निजेच्छया।)

† 'प्रयोज्य कर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयोमताः'।

[अथ तृतीया (Third case affix)]

कर्तृकारक (Nomin ıtive Case)

"स्वतन्त्रः कर्ता" (पा० सू०)

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितः अर्थः 'कर्ता' स्यात्। किसी (धातुवाच्य) व्यापार में स्वतन्त्र (प्रधान) रूपसे विवक्षित जो अर्थ उसे 'कर्ता' कहते हैं। या यों कहिये कि 'धात्वर्थ व्यापाराश्रयः स्वतन्त्रः', अर्थात् धात्वर्थ व्यापार की विवक्षा *जिसमें* की जाय उस व्यापार का *आश्रय* स्वतन्त्र कहलाता है, वही कर्ता है। यह कर्ता जब कर्तृवाच्य में उक्त रहता है तब उससे *प्रथमा* और जब कर्मवाच्य या भाव भाच्य में अनुक्त रहता है तब उससे *तृतीया* विभक्ति होती है। जैसेः—पाचकः काष्ठैः ओदनं पचति। पाचकेन ओदनः पच्यतेइत्यादि। किन्तु स्वातन्त्र्य की विवक्षा काष्ठ में की जाय तो 'काष्ठानि पचन्ति' ऐसा भी प्रयोग होता है क्योंकि 'विवक्षावशात्' कारकाणि भवन्ति'।

करण कारक (Instrumental case)

"साधक तमं करणम्" (पा० सू०)

क्रिया सिद्धौ यत् प्रकृष्टोपकारकं तत्करणसंज्ञं स्यात्।
क्रिया की निष्पत्ति में प्रकृष्ट उपकारक को करण कहते हैं।
* अर्थात् क्रिया-फल की निष्पत्ति जिस व्यापार के अव्यवहित उत्तर काल में हो उस साधकतम को करण कहते हैं।

---

* क्रियायाः फल निष्पत्तिर्यद् व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदायत्र करणं तत् तदा स्मृतम्॥

कारकान्तर में कर्ता की विवक्षा की तरह करण कारक की भी विवक्षा की जा सकती है। जैसे :—"स्थाल्यां" पचति और 'स्थाल्या' पचति (बटलोई में या बटलोई से पकाता है)।

"कर्तृ करणयोस्तृतीया" (पा० सू०)

अनुक्तकर्ता और करण से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे:- *रामेण वाणेन* वाली हतः। यहां राम से अनुक्तकर्ता में और वाण से अनुक्त करण में तृतीया हुई है। किन्तु उक्त कर्त्ता में—*हरिः* करोति, पाचकः, शाब्दिकः इत्यादि। यहाँ 'ति' 'एवुल' और 'ठक्' प्रत्ययों से कर्ता उक्त है अतः तृतीया नहीं होती है। ऐसे ही (कृतं विश्वं येन) 'कृतविश्वः' *प्रजापतिः* में समास से कर्त्ता उक्त होने से तथा (जीवन्ति अनेन) '*जीवनम्*' जलम् (करणेल्युट्) यहाँ भी करण उक्त होने से तृतीया नहीं होती है।

गम्य मानापि क्रिया कारक विभक्तौ प्रयोजिका।

केवल श्रूयमाण ही नहीं गम्यमान (ध्वनित) भी व्यापार रहने पर कारक विभक्तियाँ होती हैं। जैसे:—अलं *श्रमेण* (श्रमेण साध्यं नास्ति) यहाँ गम्यमान साधन क्रिया के प्रति 'श्रम' करण हैं। *शतेन शतेन* वत्सान् पाययति पयः। यहाँ 'परिच्छिद्य' (छाँट करके) यह क्रिया गम्यमान है। उसके प्रति 'शत' करण है।

'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' (का० वा०)

प्रकृत्यादिगण पठित प्रकृति, प्राय, गोत्र आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे:—*प्रकृत्या* सुन्दरः; *प्रायेण* याज्ञिकः; *गोत्रेण* काश्यपः, *नाम्ना* दुर्वासाः, *चरितेन* शान्तः, *धान्येन* धनवान् *सुखेन* याति, *दुःखेन* गच्छति, *समेन* एति, *विषमेण* एति सेटकेन, *द्विद्रोणेन* वा धान्यं क्रीणाति इत्यादि।

"दिवः कर्मच" (पा० सू०)

'दिव' धातु के साधकतम कारक से कर्म संज्ञा और करण संज्ञा होती है। जैसे :—अक्षान् दीव्यति और अक्षैः दीव्यति।

"अपवर्गे तृतीया" (पा० सू०)

अपवर्ग (फल प्राप्ति) रहने पर अत्यन्त संयोग में कालवाचक और मार्ग वाचक शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। अपवर्ग अर्थ में यह "कालध्वनो रत्यन्त संयोगे" का अपवाद है। जैसे :—दिनेन, क्रोशेन वा व्याकरणमधीतम्। यहां अध्ययन से ग्रहण किया ऐसा अर्थ होता है। जहाँ अपवर्ग नहीं है वहाँ दिनं, क्रोशं वा व्याकरणमधीतम् किन्तु नायातमित्यर्थः।

" सहयुक्तेऽप्रधाने "

सह, साकं, सार्द्धं, समम् आदि शब्दों के योग रहने पर *अप्रधान* से तृतीया विभक्ति होती है। क्रिया के साथ जिसका शाब्दिक या साक्षात् सम्बन्ध होगा वह प्रधान है जिसका आर्थिक या परम्परया सम्बन्ध होगा वह *अप्रधान* है। इसी अप्रधान से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—छात्रेण सह गुरुः आगच्छति। *गुरुणा* साकमछात्राः गच्छन्ति। इत्यादि।

नोट—सह आदि शब्द के अभावमें भी सहार्थ रहने पर तृतीया होती है। जैसे:—'पिता मात्रा' 'वृद्धो यूना' इत्यादि। ये सूत्रकार के प्रयोग इसमें प्रमाण हैं। अतः मात्रा आगता दुहिता इत्यादि में भी तृतीया होती है।

"येनाङ्ग विकारः" (पा० सू०)

येन अङ्गेन विकृतेन अङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात् । अङ्गानि सन्ति अस्य इति अङ्गम् (शरीरम्)। यहां पर अङ्ग शब्द से मत्वर्थीय 'अच्' प्रत्यय हुआ है। अङ्गस्य विकारः अङ्गविकारः। अर्थात् जिस अङ्ग के विकृत होने पर अङ्गी में विकार मालूम हो उस अङ्ग वाचक शब्द से तृतीया होती है। जैसे :— नेत्रेण काणः, पादेन खञ्जः, उदरेण तुन्दिलः, पृष्ठेन कुब्जः आदि। अङ्गी का विकार यदि नहीं होगा तो तृतीया नहीं होगी। जैसे :—'अक्षि काणम् अस्य' यहाँ अक्षि में (अङ्ग में) विकार है नकि अङ्गी में।

"इत्थं भूतलक्षणे" (पा० सू०)

अयं प्रकारः इत्थं, तं भूतः=प्राप्तः (भू प्राप्तौ चौरादिकः ततः कर्तरिक्तः) इत्थंभूतः, तस्यलक्षणे अर्थात् ज्ञापके तृतीया स्यात्। अर्थात् किसी प्रकार-विशेष को जिसने प्राप्त किया है उसके ज्ञापक से तृतीया होती है या वह ऐसा है यह जिससे जान पड़े उसके बोधक शब्द से तृतीया होती है। जैसे —जटाभिः तापसः, दण्डेन सन्यासी आदि। यहाँ तापसत्व रूप प्रकार विशेष को तापस ने प्राप्त किया है, उसके लक्षण (ज्ञापक) जटा से तृतीया विभक्ति हुई है।

* सम्पूर्वक 'ज्ञा' धातु के कर्म से तृतीया विभक्ति विकल्प से होती है।

जैसे—पित्रा संजानीते, विकल्प में पितरं संजानीते।

"हेतौ" (पा० सू०)

हेतु, अर्थात् कारण, के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। करण और हेतु में निम्नलिखित भेद हैं, अतः 'करणे तृतीया' से पृथक् 'हेतौ तृतीया' का विधान किया गया है।

† (१) केवल क्रिया के जनक में करणत्व रहता है, किन्तु द्रव्य, गुण और क्रिया तीनों के जनक में हेतुत्व रहता है। या यों कहिए कि 'करण' केवल क्रिया का उत्पादक है, किन्तु 'हेतु' द्रव्य, गुण और क्रिया तीनों का।

(२) करणत्व केवल व्यापार वाले वस्तुओं में नियमित रूप से रहता है, किन्तु हेतुत्व व्यापार वाले और विना व्यापार वाले पदार्थों में भी रहता है।

(३) करण कर्त्ता के अधीन होता है। (कर्त्रधीनं करणम्) किन्तु हेतु के अधीन कर्त्ता होता है (हेत्वधीनः कर्त्ता)। द्रव्य के प्रति हेतु का उदाहरणः—दण्डेन घटः। यहाँ घट रूप द्रव्य का जनक दण्ड है जो व्यापार वान् होते हुए भी क्रिया का जनक नहीं है। अतः दण्ड करण नहीं है।

---

* "संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि" (पा० सू०)

† द्रव्य गुणक्रिया निरूपितं निर्व्यापार सव्यापार वृत्तिचयत् तत् हेतुत्वम्। क्रियामात्र,निरूपितं व्यापार पद्वृत्ति च यत् तत् करणत्वम्।

गुण के प्रति हेतु यथा—*पुण्येन गौर वर्णः*। यहाँ गौरवर्ण रूप गुण का जनक पुण्य है, जो क्रिया के जनक न होने के कारण करण नहीं है। क्रिया के प्रति हेतु, यथा—*पुण्येन दृष्टो हरिः*। यहाँ हरि दर्शन रूप क्रिया का जनक पुण्य है, जिसमें व्यापार न होने के कारणकरणत्व नहीं है।

फल (उद्देश्य) भी हेतु होता है। जैसे—*अध्ययनेन वसति*। यहाँ वास का फल अध्ययन है उससे हेतु में तृतीया हुई है।

अशिष्ट व्यवहार में 'संयच्छते' के प्रयोग रहने पर चतुर्थी के अर्थ में तृतीया होती है। जैसे—*दास्या* संयच्छते कामुकः, किन्तु शिष्ट व्यवहार में *भार्यायै* संयच्छति, चतुर्थी होती है।

इति तृतीया

[अथ चतुर्थी (Fourth case affix)]

सम्प्रदानकारक (Dative case)

"कर्मणा यमभि प्रैति स सम्प्रदानम्" (पा० सू०)

सम्यक् प्रदीयते अस्मै इति सम्प्रदानम्। कर्त्ता दानस्य कर्मणा यम् अभिप्रैति सम्बन्धुम् ईप्सति स सम्प्रदान संज्ञः स्यात्। अर्थात् कर्त्ता दान-क्रिया के कर्म से *जिसको* सम्बद्ध करना चाहता है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में "चतुर्थी सम्प्रदाने" (पा० सू०) से चतुर्थी होती है। जैसे—*दरिद्राय* धनं ददाति। चतुर्थी भी अनुक्त ही सम्प्रदान में होती है। इसलिये दीयते अस्मै इति दानीयः *विप्रः*। यहाँ अनीयर प्रत्यय से सम्प्रदान उक्त है, अतः विप्र से चतुर्थी नहीं होती है।

नोटः—'खण्डिकोपाध्यायः *शिष्याय* चपेटां ददाति' इस भाष्य-प्रयोग से यहाँ 'दा' धातु के मुख्यार्थ में ही आग्रह नहीं है। इसलिए *रजकाय* वस्त्रं ददाति और शेषत्व विवक्षा में *रजकस्य* वस्त्रं ददाति ऐसा भी प्रयोग होता है।

"क्रियया यमभि प्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" (का० वा०)

(अकर्मक) क्रिया के उद्देश्य भी सम्प्रदान होते हैं। जैसे—पत्ये शेते, *युद्धाय* सं न ह्यते इत्यादि।

* यदि एक ही वाक्य में यज् धातु के कर्म और सम्प्रदान रहें तो कर्म से करण संज्ञा और सम्प्रदान से कर्म संज्ञा हो जाती है। जैसे *पशुना रुद्रं* यजते पशुं रुद्राय ददाति इत्यर्थः।

"रुच्यर्थानां प्रीयमाणः"

रुचिः अर्थो येषां तेरुच्यर्थाः, तेषांधातूनां प्रयोगे प्रीयमाणः (प्रीत्याश्रयः) सम्प्रदानं स्यात्। अर्थात् रुच्यर्थक धातुओं के योग में प्रीयमाण (प्रीति का आश्रय अर्थात् वह व्यक्ति जिसे रुचि या प्रीति होती है, सम्प्रदान संज्ञक होता है।

जैसे—हरये रोचते भक्तिः, साधवे रोचते धर्मः, *बालाय* स्वदतेऽपूपः इत्यादि।

नोट—यहाँ 'रुचि' का अर्थ है *अन्य कर्तृक अभिलाष*, अर्थात् समवाय संबन्ध से जो प्रीति का आश्रय है उससे *अन्य कर्तृक अभिलाष* इसलिये 'आदित्यों' 'रोचते दिक्षु' यहाँ दीप्त्यर्थ होने के कारण और हरिः भक्तिम् अभिलषति' यहाँ प्रीत्याश्रय कर्तृक ही अभिलाष होने के कारण 'आदित्य' तथा 'हरि' की संप्रदान संज्ञा नहीं होती है।

---

* कर्मणः करण संज्ञा सम्प्रदानस्यच कर्म संज्ञा। (का० वा०)

* श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नु (छिपाना), स्था (ठहरना), तथा शप् (उपालम्भ करना) धातुओं के योग में जिसकी प्रशंसा आदि की जाय उसको सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे—गोपी कामात् *कृष्णाय* श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा। किन्तु *राजानं श्लाघते मन्त्री* यहाँ चतुर्थी नहीं हुई।

† धारि (णिजन्त धृ) धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (जो ऋण देता है) सम्प्रदान संज्ञक होता है। जैसे—*भक्ताय* धारयति मोक्षं हरिः, *चैत्राय* शतं धारयति मैत्रः। त्वं *मह्यं* सहस्रं धारयसि इत्यादि।

स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित (जिसको इच्छा की जाय) सम्प्रदान संज्ञक होता है। जैसे—*पुष्पेभ्यः* स्पृहयति, *धनाय* स्पृहयति आदि।

नोटः—ईप्सिततम की विवक्षा में कर्मसंज्ञा ही होती है। जैसे—पुष्पाणि स्पृहयति।

*क्रोध अर्थवाले, द्रोह (अपकार) अर्थ वाले, ईर्ष्या (अक्षमा) अर्थ वाले तथा असूया (गुण में दोषारोप) अर्थ वाले धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति क्रोध, द्रोह आदि हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे—*भृत्याय* क्रुध्यति, *शत्रवे* द्रुह्यति, *प्रतिवेशिने* ईर्ष्यति, *प्रतिद्वन्द्विने* असूयति इत्यादि। किन्तु *भार्याम्* ईर्ष्यति (मा एनाम् अन्य अद्राक्षीत्) यहाँ भार्या के प्रति कोप न होने के कारण उसकी सम्प्रदान संज्ञा नहीं होती है।

---

* "श्लाघ ह्नुङ्स्था शपां ज्ञीप्स्यमानः" (पा० सू०)

† "धारेरुत्तमर्णः" (पा० सू०)

* "क्रुध द्रुहेर्ष्या सूयार्थानां यं प्रति कोपः" [पा० सू०]

* यदि क्रुध और द्रुह धातु उपसर्ग पूर्वक होतो जिसके प्रति कोप किया जाय उसकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे—क्रूरम् अभिक्रुध्यति, शत्रुम् अभिद्रुह्यति आदि।

†राध् और ईक्ष् धातु यदि अदृष्ट विषयक शुभ और अशुभ पर्यालोचन के अर्थ में हो तो जिसके विषय में वह विचार किया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे—गर्गः *कृष्णाय* राध्यति, इक्षतेवा। ज्योतिर्वित् *शिशवे* राध्यति, देव*दत्ताय* इक्षते।

+प्रतिज्ञार्थक 'प्रति' या 'आ' पूर्वक 'श्रु' धातुके योगमें उस*की* सम्प्रदान संज्ञा होती है जो दूसरे को देने के लिए प्रवृत्त करता है। जैसे— *दीनाय* धनं प्रति शृणोति, *छात्राय* साहाय्यम् आशृणोति इत्यादि।

*'अनु' या 'प्रति' पूर्वक 'गृ' धातु के योग में उसके पूर्व व्यापार के कर्तृभूत कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे—अध्वर्युः होत्रे अनुगृणाति, प्रतिगृणाति वा। अर्थात् होता प्रथमं स्तौतितम् अध्वर्युः प्रोत्साहयति।

†वेतन आदि के द्वारा नियतकाल तक किसी को *काम* के लिए रखना 'परिक्रयण' कहलता। उसमें *जिससे* परिक्रयण किया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा विकल्प से होती है। विकल्प में करण में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—शतेन *शताय*वा परिक्रीतः भृत्य।

---

* "क्रुधद्रुहो रुप सृष्टयोः कर्म" [पा० सू०]

† "राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः" [पा० सू०]

+ "प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता" [पा० सू०]

* "अनुप्रतिगृणश्च" (पा० सू०)

† "परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' (का० वा०)

तस्मै कार्याय इदं तदर्थम्=कारणम्। तदर्थस्यभावः तादर्थ्यम्, तस्मिन् चतुर्थी भवति। अर्थात् जो वस्तु जिसके लिए हो उससे (उद्देश्य या कार्य से) चतुर्थी विभक्ति होती। जैसे—*बालकाय* मधुरम्। *कुण्डलाय* कनकम्। *यूपाय*दारू। काव्यं, *यशसे* भवति, *मुक्तये* हरिं भजति इत्यादि।

'क्लृपि सम्पद्यमानेच' (का० वा०)

क्लृप्त्यर्थक (उत्पत्त्यर्थक) धातुओं के योग में उत्पद्यमान से चतुर्थी होती है। जैसे—भक्तिः *ज्ञानाय* कल्पते, ज्ञानं *सुखाय* सम्पद्यते, धर्मः *स्वर्गाय* जायते, अधर्मः *नरकाय* भवति, दुग्धं दध्ने परिणमते इत्यादि।

'उत्पातेन ज्ञापितेच' (का० वा०)

अशुभ सूचक आकस्मिक भूत-विकार को उत्पात कहते है। ऐसे उत्पात से सूचित अर्थों में विद्यमान शब्द से चतुर्थी होती है। जैसे—*वाताय* कपिला विद्युत् *आतपाय* अतिलोहिनी, पीता *वर्षाय* विज्ञेया, *दुर्भिक्षाय* सिता भवेत्।

हित शब्द के योग में चतुर्थी होती है। जैसे—*छात्राय* हितम्

"क्रियार्थोपपदस्यच कर्मणि स्थानिनः" (पा० सू०)

क्रिया अर्थः (प्रयोजनं) यस्याः सा क्रियार्था, सा क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य स क्रियार्थोपपदः तस्य स्थानिनः (अप्रयुज्यमानस्य) तुमुनः कर्मणि चतुर्थी। अर्थात् किसी क्रिया के निमित्त (जो) क्रिया (वह) यदि उपपद हो तो अप्रयुज्यमान (गम्यमान) तुमुन् प्रत्ययान्त के कर्म से चतुर्थी विभक्ति होती है।

जैसे—*फलेभ्यो* याति, अर्थात् फलानि आहर्तुं याति। यहाँ फलाहरण क्रिया के निमित्तयान (गमन) क्रिया है। उसके उपपद रहने से अप्रयुज्यमान (आहर्तुम्) का कर्म (फल) से चतुर्थी हुई है। ऐसे ही *नृसिंहाय* नमस्कुर्मः, अर्थात् नृसिंहम् अनुकूलयितुम्। *मशकाय* मशहरी (मशकं निवारयितुमित्यर्थः) *आतपाय* छत्रम् (आतपं निवारयितुम् इत्यर्थः)। *पिपासायै* पानीयम् (पिपासां निवारयितुमित्यर्थः)। ऐसे ही *स्वयम्भुवे* नमस्कृत्य इत्यादि समझना चाहिए।

"तुमर्थाच्च भाववचनात्" (पा० सू०)

यदि 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में विहित भावार्थक 'घञ्' आदि प्रत्यय हों तो भाव प्रत्ययान्त शब्दों से चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—*यागाय* याति, यष्टुं याति इत्यर्थः। *त्यागाय* गृह्णाति, *भोजनाय* गच्छति इत्यादि।

"नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषड्योगाच्च" (पा० सू०)

नमः, स्वस्ति (मङ्गल सूचक), स्वाहा (देवता के उद्देश्य से त्याग सूचक), स्वधा (पितर के उद्देश्य से त्याग सूचक), अलम् (पर्याप्त्यर्थक) तथा वषट् (इन्द्र के उद्देश्य से त्याग सूचक) अव्ययों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—*कृष्णायनमः*, *प्रजाभ्यः* स्वस्ति; *अग्नये* स्वाहा; *पितृभ्यः* स्वधा; *दैत्येभ्यः* अलम् हरिः; *इन्द्राय* वषट् इत्यादि। किन्तु देवान् नमस्करोति। इसका कारण कारक प्रकरण के आरम्भ में देखना चाहिए।

नोटः—(१) 'अलम्' के अर्थ में वर्तमान 'प्रभुः, समर्थः, 'शक्तः, आदि शब्दों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—कृष्णः कंसाय प्रभुः समर्थः शक्तः इत्यादि।

(२) प्रभु, समर्थ आदि शब्दों के योग में षष्ठी भी होती है। जैसे—प्रभुः बुभूषुः *भुवनत्रयस्य*; प्रभवति *निजस्य कन्याजनस्य* महाराजः इत्यादि।

(३) यदि 'स्वस्ति, आशीर्वाद अर्थ में हो तो भी षष्ठी के स्थान में चतुर्थी ही होती है। जैसे—*प्रजाभ्यः* स्वस्ति भूयात् इत्यादि।

"मन्य कर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु" (पा० सू०)

'नौ—काकान्न-शुक शृगाल वर्ज्येष्विति वाच्यम्' (का० वा०)

नौ, काक, अन्न, शुक तथा शृगाल शब्दों को छोड़कर दिवादिगणीय मन् धातु के अनादर (के) द्योतक कर्म से तिरस्कार अथ में विकल्प से चतुर्थी होती है। यथा—न त्वां *तृणाय* मन्ये, तृणं वा; नत्वां शुने मन्ये,।

श्वानं वा इत्यादि। किन्तु नत्वां नावम्, अन्नं, काकं, शुकं, शृगालं वा मन्ये यहाँ चतुर्थी नहीं होती है।

नोट--'मन्' धातु यदि तनादि गणीय होगा तो चतुर्थी नहीं होगी जैसे--तत्वां तृणं मन्वे।

"गत्यर्थकर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि" (पा० सू०)

शारीरिक व्यापार रहने पर गत्यर्थक धातुओं के-अध्वन्, आदि शब्दों से भिन्न कर्म से द्वितीया और चतुर्थी विभक्तियाँ होती हैं। जैसे—*ग्रामं*, *ग्रामाय* वा गच्छति। किन्तु शारीरिक

व्यापार रूप चेष्टा न रहने पर मनसा हरिं व्रजति। यहाँ द्वितीया और चतुर्थी नहीं होगी। अध्वानं, मार्गं, पन्थानं वा गच्छति। यहाँ कर्म अध्व से भिन्न नहीं है, अतः चतुर्थी नहीं होगी केवल द्वितीया होगी।

नोट—जब मार्ग गन्ता से अधिष्ठित होगा, अर्थात् जानेवाले जब रास्ते से चलते रहेंगे, तबही चतुर्थी नहीं होगी, किन्तु जहां रास्ता भूल जाने के कारण आदमी उत्पथ से सुपथ पर आना चाहता है। वहां चतुर्थी होती ही है। जैसेः— उत्पथेन (गन्तुशक्तः) पंथे गच्छति। अर्थात् उत्पथसे गन्तव्य स्थल पर जाने में असमर्थ व्यक्ति गन्तव्य मार्ग का अनुसरण करता है।

इति चतुर्थी

पञ्चमी विभक्ति (Fifth case affix)

अपादान कारक (Ablative Case)

"ध्रुवमपायेऽपदानम्" (पा० सू०)

अपायः-विश्लेषः- वियोगः, तस्मिन् अपाये ध्रुवम्-अवधि भूतम् कारकम् अपादान संज्ञकं भवति। अर्थात् विश्लेष रहने पर अवधिभूत कारक की अपादान संज्ञा होती है। यहाँ 'ध्रुव' का अर्थ केवल स्थिर ही नहीं किन्तु अवधिभूत करना चाहिए। वह चाहे अचल हो या चल हो या उदासीन, सभी प्रकार के

अवधिभूतध्रुव हैं ❀। अपादान में "अपादाने पञ्चमी" (पा० सू०) से पञ्चमी होती है जैसे —*वृक्षात्* पत्रं पतति, *पर्वतात्* पतति, *धावतः अश्वात्* पतति, *पर्वतात्* पतितः *अश्वात्* पतति, *परस्परात्* मेषौ अपसरतः, *मेषात्* मेषः अपसरति इत्यादि। किन्तु ग्रामादायाति शकटेन, यहाँ *शकट* ध्रुव नहीं है और *वृक्षस्य* पत्रं पतति यहाँ वृक्ष कारक नहीं है, अतः अपादानमें पञ्चमी नहीं होती है। पञ्चमी भी अनुक्त ही अपादान में होती है। इसलिए बिभेति अस्मादिति *भीमः* पुरुषः। यहाँ 'म' प्रत्यय से अपादान उक्त है। अतः पञ्चमी नहीं होती है।

"जुगुप्सा—विराम-प्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" (का० वा०)

जुगुप्सा (कुत्सा-निन्दा), विराम (अप्रवृत्ति) तथा प्रमाद (अनवधानता) इन अर्थों में जो धातु हैं उनके योग में अपादान संज्ञा होती है। जैसे—*पापात्* जुगुप्सते; *अधर्मात्* विरमति; *धर्मात्* प्रमाद्यति, *स्वाधिकारात्* प्रमत्तः इत्यादि।

"भीत्रार्थानां भयहेतुः" (पा० सू०)

भयार्थक और त्राणार्थक धातुओं के योग में भय के हेतु को अपादान कहते हैं। यथा—*चोराद्* बिभेति; *चोरात्* त्रायते, त्रायते *महतो भयात्* इत्यादि।

❀ अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्।
ध्रुवमेवातदावेशात् तदपादानमुच्यते॥
पततो ध्रुव एवासौ यस्मादश्वात् पतत्यसौ।
तस्याप्यश्वस्य पतने कुड्यादि ध्रुवमिष्यते॥

"पराजेरसोढः"

'परा' पूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में असह्य अर्थ की (जिसका सहन न हो सके) उसकी अपादान संज्ञा होती है। जैसे—*अध्ययनात्* पराजयते; *पापात्* पराजयते, अर्थात् ग्लायति। असह्य अर्थ न होने पर *शत्रून्* पराजयति अर्थात् अभिभवति।

"वारणार्थानामीप्सितः"

वाराणार्थक (प्रवृत्ति निरोधार्थक) धातुओं के योग में ईप्सित की अपादान संज्ञा होती है। यथा—*यवेभ्यः* गां वारयति। पापात् निवारयति, अग्नेः बालकं वारयति इत्यादि स्थलों में भी अपादान संज्ञा होती है, क्योंकि पाप, अग्नि आदि प्रवृत्तिके कर्त्ता के ईप्सित ही हैं।

"अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति" (पा० सू०)

व्यवधान रहने पर यदि कोई अपने को किसी से छिपाना चाहे तो जिससे छिपाता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। जैसे—*अध्यापकात्* निलीयते छात्रः, कृष्णः *मातुः* निलीयते, *उपाध्यायात्* अन्तर्धन्ते आदि।

"आख्यातोपयोगे" (पा० सू०)

उपयोग (अर्थात् नियमपूर्वक विद्या का ग्रहण) रूप अर्थ रहने पर आख्याता (अध्यापन करने वाला) अपादानसंज्ञक होता है। *शिक्षकात्* पठति, *अध्यापकात्* अधीते इत्यादि। किन्तु उपयोग न रहने पर *गायकस्य* गानं शृणोति। यहाँ अपादान संज्ञा नहीं होगी।

"जनिकर्तुः प्रकृतिः"

जनिः-जननम्-उत्पत्तिः, तस्याः कर्ता, तस्य प्रकृतिः (हेतुः) अपादानंस्यात्। अर्थात् जायमान (उत्पत्त्याश्रय) के हेतु को अपादान कहते हैं। जैसे—*ब्रह्मणः* प्रजाः प्रजायन्ते, पितुः पुत्रः प्रजायते, *अङ्गात् अङ्गात्* संभवति, *बीजात्* अङ्कुरो जायते, *गोमयात्* वृश्चिकः उत्पद्यते, धर्मात् सुखं भवति इत्यादि। उत्पत्यर्थक धातुओं के योग में सप्तमी भी होती है। जैसे—*मेनकायामुत्पन्ना* आदि।

"भुवः प्रभवः" (पा० सू०)

भवनम्—भूः, भुवःकर्ता—भूकर्ता तस्य भूकर्तुः प्रभवः (प्रभवति—प्रथमं प्रकाशते अस्मात्, अस्मिन् वा इति प्रभवः, प्रथम-प्रकाश-स्थानम्) अपादान संज्ञको भवति। अर्थात् भू (होने) के कर्ता का प्रथम उपलब्धि-स्थान अपादान संज्ञक होता है। जैसे—*हिमवतः* गङ्गाप्रभवति, *वल्मीकाग्नात्* प्रभवति धनुः इत्यादि।

नोट—अभूत के प्रादुर्भाव को जनि (उत्पत्ति) कहते हैं और उत्पन्न के प्रथम उपलम्भ (प्रकाश) को प्रभव। इसलिये 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' और 'भुवः प्रभवः' दो सूत्र किये गये हैं।

"ल्यब्लोपेकर्मण्यधिकरणे च" (का० वा०)

यदि ल्यबन्त शब्द का लोप हो गया हो तो उसके कर्म और अधिकरण से पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—*प्रासादात्* पश्यति (प्रासादम् आसत्य इत्यर्थः), *श्वशुरात्* लज्जते (श्वशुरं वीक्ष्य इत्यर्थः); *आसनात्* प्रेक्षते (आसने उपविश्य इत्यर्थः) आदि।

"प्रश्नाख्यानयोश्च" (वा०)

प्रश्न और आख्यान रहने पर भी पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे--*कस्मात् त्वम्? नद्याः*। यहाँ कस्मात् में प्रश्न में और नद्याः में उत्तर में पञ्चमी विभक्ति है। 'यतश्चाध्वकाल निर्माणं तत्र पञ्चमी'। 'तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ'।

"कालात् सप्तमी च वक्तव्या" (का० वा०)

जिस अवधिवाचक शब्द से अध्वा और काल की इयत्ता मालूम हो उससे पञ्चमी होती है और पञ्चम्यन्त पद से युक्त अध्ववाचक शब्द से प्रथमा और सप्तमी तथा कालवाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे *वनाद्* ग्रामो योजनं, योजने वा। *कार्तिक्याः* आग्रहायणी मासे इत्यादि।

' पञ्चमी विभक्ते" (पा० सू०) [अपेक्षार्थे पञ्चमी]

विभक्तम् (विभागः, भेदः) अस्ति अस्मिन् इति विभक्तः (निर्धारणाश्रयः) तत्र पञ्चमी, अथवा निर्धार्यमाणस्य (निर्धारणाश्रयस्य) विभक्ते (विभागे, भेदे) पञ्चमी; अर्थात् प्रयुक्त शब्दों में जो एक दूसरे के अन्तर्गत न हों ऐसे दो पदार्थों की परस्पर तुलना करने पर जिसकी अपेक्षा अधिकता या न्यूनता दिखायी जाय उससे पञ्चमी होती है। जैसे—*रामात्* श्यामः सुन्दरतरः, *घनात्* विधागरीयसी, *पाटलिपुत्रकेभ्यः* माथुराः आढ्यतराः। जननी जन्मभूमिश्च *स्वर्गादपि* गरीयसी इत्यादि।

"अन्यारादितरर्ते दिक् शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते" (पा०सू०)

अन्य, भिन्न, इतर आदि अन्यार्थक शब्द, आरात्, ऋते, दिक् शब्द (जो कहीं दिशा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो), प्राक् प्रत्यक

आदि अञ्चूत्तर पद तथा आच् और आहि प्रत्ययान्त शब्दों के योग में पञ्चमी होती है। यथा—अन्यः, भिन्नः, इतरः, विलक्षणो वा कृष्णात्; आरात् (दूरे समीपे वा) गृहात् विद्यालयः; ऋते (विना) कृष्णात्; गृहात् पूर्वः, उत्तरो वा; चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः, ग्रीष्मात् पूर्वः वसन्तः; अञ्चूत्तर पद के योग में—प्राक्, प्रत्यक् वा ग्रामात्; आच् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में—दक्षिणा ग्रामात् आहि प्रत्ययान्त पदों के योग में— दक्षिणाहि, उत्तराहि वा भवनात्; इत्यादि।

नोट—(१) *'ऋते' के योग में द्वितीया भी कहीं पर होती है। जैसे—ऋतेऽपि त्वाम् पुरुषाराधनम् ऋते इत्यादि।

† (२) पूर्व, अपर आदि शब्द यदि अवयव वाचक हों तो पञ्चमी की जगह षष्ठी होती है। जैसे—*शरीरस्य* पूर्वम्, हस्तस्य अपरम् इत्यादि।

‡ (३) प्रभृति, आरभ्य, वहिः ऊर्ध्वम् आदि शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—*भवात्* (*जन्मनः*) प्रभृति, आरभ्य वा कृष्णः सेव्यः; *ग्रामाद्* बहिः विद्यालयः; कण्ठात् ऊर्ध्वं परं वा शिरः।

---

* [१] उभसर्वतसोः कार्या ·…· 'ततोऽन्यत्रापि दृश्यते' इससे 'ऋते' के योग में भी द्वितीया। 'ऋते द्वितीया च' चान्द्रं सूत्रम्।

† [२] 'तस्य परमाम्रेडितम्" इति सूत्रनिर्देशात् अवयववाचि-पूर्वादि शब्दयोगे न पञ्चमी।

‡ [३] 'कार्तिक्याः प्रभृति' भाष्य प्रयोग से प्रभृत्यादि के योग में तथा पञ्चम्यन्त पदों का 'बहि' के साथ समास होने के कारण एवं बहिः शब्दों के योग में पञ्चमी होती है। बहिः के योग में षष्ठी भी हो जाती है। जैसे—करस्य करत्रो बहिः।

* वर्जन अर्थ में 'अप' और 'परि', तथा मर्यादा (सीमा) और अभिविधि (अभिव्याप्ति) अर्थों में आङ् [आ] कर्मप्रवचनीय संज्ञक होते हैं एवं इनके योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसेः—*अपहरे*. *परिहरेः* संसारः (हरिको छोड़कर संसार है)। *आमुक्ते संसारः*; *आसकलाद* ब्रह्म इत्यादि।

† प्रतिनिधि तथा प्रतिदान (बदले में देना) अर्थों में 'प्रति' कर्म प्रवचनीय होता है एवं उसके योग में पञ्चमी होती है जैसेः— प्रद्युम्नः *कृष्णात्* प्रति; पुत्रः *जनकात्* प्रति; *तण्डुलेभ्यः* प्रतियच्छति गोधूमान् (चावल से गेहूँ बदता है) आदि।

"अकर्तर्यृणे पञ्चमी" (पा० सू०)

हेतुभूत ऋण वाचक शब्द यदि कर्ता न हो तो उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसेः—*शताद्* बद्धः, *ऋणाद्* बद्धः इत्यादि। यदि 'ऋण' कर्ता होगा तो पञ्चमी नहीं होगी। जैसेः *शतेन* अधमर्णः बन्धितः। यहाँपर—उत्तमर्णेन अधमर्णः बद्धः; शतेन प्रयोजक-कर्त्रा, (उत्तमर्णेन प्रयोज्यक कर्त्रा) अधमर्णः ऐसा अर्थ है, अतः 'शत' से पञ्चमी नहीं होता है।

"विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्" पा० सू०)

हेतु भूत गुणवाकचक शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग न हो तो उससे पञ्चमी विकल्पसे होती है। विकल्प में हो तो तृतीया होती है। जैसे :—*मौनात्* [मौनेन] वा मूर्खः,

---

*"अपपरी वर्जने" "आङ् मर्यादा वचने" "पञ्चम्य पाङ्परिभिः" (पा० सू०)
† "प्रतिः प्रतिनिधि प्रतिदानयोः" प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात्" (पा०सू०)

वैदुष्यात् वैदुष्येण वा मुक्तः इत्यादि। किन्तु हेतुभूत पदार्थ बोधक शब्द गुणवाचक होनेपर भी यदि स्त्रीलिङ्ग हो या अस्त्रीलिङ्ग होने पर यदि गुणवाचक न हो तो पञ्चमी नहीं होती है। वहाँ केवल तृतीया ही होती है। जैसेः—बुद्धया मुक्तः; धनेन कुलम् इत्यादि।

नोटः—इष्ट प्रयोग की सिद्ध के लिए "विभाषागुणेऽस्त्रियाम्" इस सूत्र में 'विभाषा' का योग विभाग होता है। अतः हेतु में स्त्रीलिङ्ग या अगुणवाचक शब्दों से भी विकल्प से पञ्चमी होती है। जैसेः—नास्ति-घटः अनुपलब्धेः, यहाँ स्त्रीलिङ्ग होनेपर भी तथा धूमात् वह्निमान्, यहाँ धूम के अगुण वाचक होने पर भी पञ्चमी होती है।

"पृथग्विना नानाभि स्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

पृथक् विना और नाना शब्दों के योग में द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्तियाँ होती हैं। पृथक् कृष्णं कृष्णेन, कृष्णाद्वा; विना, नाना वा रामं, रामेण, रामाद्वा इत्यादि। 'नाना' का भी अर्थ 'विना' ही है जैसेः – नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (विना पत्नी के लोकयात्रा निष्फल है)।

"करणेच स्तोकाल्प कृच्छ्र कतिपयस्यासत्त्व वचनस्य" (पा०सू०)

यदि स्तोक (अल्प), अल्प, कृच्छ्र (कष्ट) तथा कतिपय (कुछ) शब्द अद्रव्यवाचक हों तो उनके करण से तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती हैं। जैसेः—स्तोकेन, स्तोकाद् वा मुक्त; अल्पेन, अल्पाद् वा मुक्तः (थोड़े आयास से मुक्तः); कृच्छ्रेण, कृच्छ्राद् वा मुक्तः (कष्ट से मुक्त); कतिपयेन, कतिपयाद वा मुक्तः (कुछ प्रयास से मुक्त) इत्यादि।

नोटः—(१) यदि स्तोक आदि शब्द द्रव्य वाचक हों तो पञ्चमी नहीं होती है जैसे—स्तोकेन विषेण हतः; अल्पेन मधुना मत्तः आदि। (२) स्तोक आदि शब्द यदि करण में नहीं तो तृतीया या पञ्चमी कुछ नहीं होती है। जसेः स्तोकं पचति, अल्पं करोति इत्यादि। यहाँ स्तोक, अल्प आदि क्रिया विशेषण हैं।

"दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च" (पा० सू०)

दूरार्थक और अन्तिकार्थक (समीपार्थक) शब्द यदि अद्रव्य वाचक हों तो उनसें द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्तियाँ होती हैं। जैसेः—ग्रामस्य दूरं, दूरेण, दूराद् वा वसति; गृहस्य अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकाद् वा तिष्ठति इत्यादि।

नोटः—यदि दूर, अन्तिक आदि शब्द द्रव्यवाचक होंगे तो पूर्वोक्त विभक्तियाँ नहीं होगी। जैसेः—दूरः पन्थाः, अन्तिकः तडागः इत्यादि।

इति पञ्चमी विभक्तिः

अथ षष्ठी (Sixth case suffix)
The Genitive Case

"षष्ठी शेषे" (पा० सू०) [सम्बन्धे षष्ठी]

उक्त से अन्य को शेष कहते हैं। प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, करण में तृतीया, सम्प्रदान में चतुर्थी, अपादान में पञ्चमी और अधिकरण में सप्तमी उक्त हैं। उनसे अतिरिक्त स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्ध रूप शेष में षष्ठी विभक्ति होती है। अर्थात् स्वभिस्वामाव, अवयवावयविभाव, आधाराधेयभाव, जन्य जनक भाव, कार्यकारणभाव, आदि सम्बन्ध तथा दाम्पत्य-

रूप सम्बन्ध में षष्ठी होती है। इन पूर्वोक्त *सम्बन्धविशेषों* में तथा *सम्बन्ध-सामान्य* में (जहाँ कोई सम्बन्ध विशेष रूप से निर्दिष्ट नहीं हो वहाँ) षष्ठी विभक्ति होती है। जैसेः—*राज्ञः* पुरुषः, *शरीरस्य* अङ्गानि, *कूपस्य* जलम्, पितुः पुत्रः, *घटस्य* दण्डः, वशिष्ठस्य पत्नी इत्यादि क्रमसे स्वस्वामि भावादि सम्बन्ध विशेष के उदाहरण हैं। *रामस्य* विचारः, *तस्य* चित्तम् आदि सम्बन्ध सामान्य के उदाहरण हैं।

नोटः—कर्म करण आदि कारकों में भी यदि सम्बन्ध की विवक्षा की जाय तो षष्ठी होती है। जैसे :—*मातुः* [मातरम्] स्मरति (मातृ-सम्बन्धि स्मरणकरता है); सर्पिषः (सर्पिषा) जानीते (घृतसम्बन्धि प्रवृत्ति), *फलानाम्* (फलैः) तृप्तः (फल सम्बन्धि - तृप्ति का आश्रय); रजकस्य वस्त्रं ददाति; *वृक्षस्य* पत्रं पतति; *तिलस्य* तैलम् इत्यादि में क्रमसे कर्मादि कारकों के स्थान में सम्बन्धत्वेन विवक्षा करने पर षष्ठी हुई है।

"षष्ठी हेतु प्रयोगे" (पा० सू०)

यदि 'हेतु' शब्द का प्रयोग हो और हेतुत्व (कारणत्व) अर्थ मालूम पड़ता हो तो हेतु तथा हेतु भूत पदार्थ बोधक शब्द से षष्ठी होती है। जैसे :—*अध्ययनस्य* हेतोर्वसति।

* यदि 'हेतु' शब्द का प्रयोग हेतुत्वद्योत्य रहनेपर 'सर्वनाम' शब्दों के साथ हो तो षष्ठी के साथ तृतीया भी होती है। जैसेः—*कस्य* हेतोः; *केन* हेतुना वा वसति इत्यादि।

---

* "सर्वनाम्नस्तृतीयाच" (पा० सू०)

† निमित्तार्थक शब्दों के प्रयोग रहनेपर उनमें तथा हेतुवाचक सर्वनाम शब्दों में सातों विभक्तियाँ होती हैं; यदि हेतु वाचक शब्द सर्वनाम से भिन्न हो तो प्रथमा तथा द्वितीया को छोड़कर और पाँचो विभक्तियाँ होती हैं। जैसे :—किं निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते वा वसति। ऐसे ही प्रयोग कारण, हेतु; प्रयोजन आदि शब्दों के साथ होंगे। किन्तु सर्वनाम से भिन्न में—ज्ञानेन निमित्तेन, ज्ञानाय निमित्ताय, ज्ञानात् निमित्तात् ज्ञानस्य निमित्तस्य, ज्ञाने निमित्ते कृष्णः सेव्यः।

"षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन" (पा० सू०)

'अतसुच' प्रत्यय के (दिग्देशकाल रूप) अर्थ में जितने अस्ताति प्रभृति प्रत्यय हैं, तदन्त शब्दों के योग में षष्ठी होती है। जैसे :—ग्रामस्य दक्षिणतः उत्तरतः, पुरः, पुरस्तात् वा; मञ्चस्य उपरि, उपरिष्टात्, अधः, अधरस्तात् वा इत्यादि।

"एनपाद्वितीया" (पा० सू०)

'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया तथा षष्ठी होती है। जैसे :—दक्षिणेन वाटिकाम्, वाटिकायाः, उत्तरेण, ग्रामं, ग्रामस्य वा इत्यादि।

❀ दूरार्थक तथा अन्तिकार्थक शब्दों के योग में षष्ठी और पञ्चमी होती हैं। जैसेः—ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्; वनस्य वनाद् वा अन्तिकं, निकटं, समीपं वा। कृष्णात् कृष्णस्य यो दूरं दुःखाद् दुःखस्य सोऽन्तिकम् इत्यादि।

---

† निमित्तपर्याय प्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' का० वा०

❀ "दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्य तरस्याम्" (पा० सू०)

‡ यदि ज्ञानार्थक से भिन्न 'ज्ञा' धातु हो तो उसके करण से सम्बन्ध रूपसे विवक्षा करनेपर षष्ठी होती है। जैसे:— सर्पिषो जानीते (सर्पिषाप्रवर्तते इत्यर्थः) ; किन्तु ज्ञानार्थ में स्वरेण पुत्रं जानाति द्वितीयाही होती है।

❀ अधीगर्थक (स्मरणार्थक) धातु, दयार्थक दयधातु, तथा समर्थार्थक ईशधातु के कर्म से सम्बन्धत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसे: मातुः अध्येति, पितुः स्मरति; प्रमदाजनस्य दयमानः; जगताम् ईष्टे, ईशन वा इत्यादि।

"कृञः प्रतियत्ने" (पा० सू०)

यदि प्रतियत्न (गुणाधान) अर्थात् नया विशेषगुण पैदा करना अर्थ हो तो कृञ् धातु के कर्म से शेषत्वेन (सम्बन्धत्वेन) विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसे:—एधः दकस्य उपस्कुरुते (इन्धन जलमें (उष्णत्व) गुण पैदा करता है)।

† ज्वर तथा सन्ताप को छोड़कर रुजा [व्याधि] अर्थवाले भाव प्रत्ययान्त शब्द यदि कर्ता हों तो उनके कर्म से शेषत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसे :- चौरस्य रोगस्य रुजा (रोग कर्तृक चौर सम्बन्धी पीड़ा इत्यर्थः) यहाँ 'रोगस्य' इसमें कृद्-योग में षष्ठी है। किन्तु 'ज्वर' और 'सन्ताप' शब्द रहनेपर इससे षष्ठी नहीं होती है। "षष्ठीशेषे" से षष्ठी होती है, जहाँ समास होता है। जैसे :—रोगस्य चौर-ज्वरः, चौर-सन्तापो वा।

---

‡ "ज्ञोऽविदर्थस्य करणे" (पा० सू०]

❀ "अधीगर्थ दयेशां कर्मणि" (पा० सू०)

नोटः—"ज्ञोऽविदर्थस्य करणे" आदि सूत्रों से षष्ठी करनेपर षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता है ।

† यदि 'नाथ' धातु का अर्थ आशा करना हो तो उसके कर्म से शेषत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसे :—धनस्यनाथते (धन होने की आशा करता है), सर्पिषोनाथनम् (घृतसम्बन्धिनी आशा) किन्तु आशा से भिन्न अर्थ में भाणवक-नाथनम्। यहाँ "षष्ठी शेषे" से षष्ठी होने के बाद समास होगया है ।

* हिंसार्थक स्वार्थ णिजन्त जस्, 'नि' या 'प्र' पूर्वक या 'नि-प्र' दोनों पूर्वक हन्, चुरादि नट् और क्रथ् तथा रुधादि पिष धातुओं के कर्म से शेषत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसे :— चौरस्य उज्जासयति; दुष्टानां निहनिष्यति, प्रहणिष्यति, निप्रह-णिष्यति, प्रणिहनिष्यति वा; दुष्टस्य उन्नाटयति, क्राथयति, पिनष्टि वा। हिंसा अर्थ नहीं रहने पर इस सूत्र से षष्ठी नहीं होती है। जैसे :—धानाः पिनष्टि (भुने हुए चावलों को पीसता है)

‡ यदि द्यूत तथा क्रय-विक्रय रूप व्यवहार अर्थ हो तो 'वि-अव' पूर्वक 'हृ' धातु 'पण्' धातु तथा 'दिव' धातु के कर्म से शेषत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। किन्तु 'दिव्' धातु यदि उपसर्ग पूर्वक हो तो विकल्प से षष्ठी होती है। जैसे :—*शतस्य* व्यवहरणम्, पणनं वा; *शतस्य* दीव्यति; *शतस्य शतं* वा प्रतिदीव्यति इत्यादि। किन्तु भिन्न अर्थों में—शलाकां व्यवहरति; ब्राह्मणं पणायति, दीव्यति (स्तौतीत्यर्थः) इत्यादि।

---

† "रुजार्थानांभाववचनानामज्वरेः" [पा० सू०] अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्" वा "आशिषिनाथः"

* "जासि निप्रहणनाट क्राथपिषां हिंसायाम्" (पा० सू०)

‡ "व्यवहृपणोः समर्थयोः" "दिवस्तदर्थस्य" "विभाषोपसर्गे" (पा० सू०)

❀ क्रिया की पुनरावृत्ति अर्थ में 'सुच्' 'कृत्वसुच्' आदि प्रत्यय होते हैं; तदन्त शब्द के योग में अधिकरणार्थक कालवाचक शब्द से सम्बन्धत्वेन विवक्षा में षष्ठी होती है। जैसेः—पञ्चकृत्वः अह्नः भुङ्क्ते (पाँचवार दिन में खाता है) द्विः अह्नोभुङ्क्ते (दोवार दिनमें खाता है इत्यादि।

"कर्तृकर्मणोः कृति" (पा० सू०)

कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता और कर्म से षष्ठी होती है। जैसेः—*कृष्णस्य* कृतिः, छात्रस्य पठनम्, *मम* इच्छा इत्यादि। यहाँ कर्म में षष्ठी है। *जगतः* कर्ताकृष्णः, *पुतकस्य* पाठकः इत्यादि। यहाँ कर्म में षष्ठी है। *विशेष*—कृदन्त शब्दों के योग में यदि दो कर्म हों तो *अप्रधान* कर्म से षष्ठी विकल्प से होती है और प्रधानकर्म से नित्य ही। जैसेः—नेता छागस्य *ग्रामस्य*, *ग्रामं* वा; याचकः धनस्य *धनिकस्य*, *धनिकं* वा इत्यादि।

"उभय प्राप्तौ कर्मणि" (पा० सू०)

यदि कृत् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्ता और कर्म दोनों से षष्ठी की प्राप्ति हो तो केवल कर्म में षष्ठी होती है कर्ता से नहीं। जैसेः—आश्चर्यः *गवां* दोहः अगोपेन। यहाँ 'अगोप से षष्ठी नहीं होती है, क्यों कि वह इस वाक्य में कर्ता है।

अपवाद—किन्तु "उभयप्राप्तौ कर्मणि" यह नियम वहाँ नहीं लगता है जहाँ 'अक' तथा 'अ' रूप कृत् प्रत्ययों से बने हुए स्त्री लिङ्ग शब्द रहते हैं।

❀ "कृत्वोऽर्थ प्रयोगे कालेऽधिकरणम्" पा० सू०)

* अर्थात् वहाँ कर्ता में भी षष्ठी होती है। जैसेः—भेदिका (भेदनम्), बिभित्सा (भेत्तुमिच्छा) वा रुद्रस्य जगतः।

† कुछ आचार्यों के मत में 'अक' तथा 'अ' प्रत्ययों से भिन्न यदि *स्त्रीलिङ्ग* कृत्प्रत्ययान्त शब्द हों तो कर्ता से षष्ठी विकल्प से होती है। और कुछ आचार्यों के मत में 'अक' एवम् 'अ' से भिन्न *स्त्रीलिङ्ग से अतिरिक्त भी* कृत्प्रयान्त शब्द हों तो भी कर्त्ता से षष्ठी विकल्प से होती हैं। जैसे :—स्त्रीलिङ्ग कृत्प्रत्ययान्त के योगमें - विचित्रा जगतः 'कृतिः' हरेः, *हरिणा* वा। स्त्रीलिङ्ग से अतिरिक्त कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में—शब्दानाम् *'अनुशासनम्' आचार्येण आचार्यस्य* वा, सूत्राणां *'प्रणयनम्' पाणिनिना* पाणिनेः वा इत्यादि।

† वर्तमान काल के अर्थ में यदि 'क्त' प्रत्यय हो तथा अधिकरणवाचक 'क्त' प्रत्यय हो तो उन क्त प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी होती है। वर्तमानार्थक 'क्त' प्रत्यय के योग में यथाः—*राज्ञाम्* मतः, बुद्धः पूजितो वा इत्यादि। अधिकरण वाचक क्त प्रत्ययान्त के योग में यथा :—*मुकुन्दस्य* आसित मिदम्, इदं यातं *रमापतेः*। भुक्तमेतद् *अनतस्य* इत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः॥

नोटः—भावार्थक 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के योगमें भी षष्ठी होती है। पूर्वोक्त स्थलों में षष्ठी का निषेध आगे के सूत्र से नहीं होता है जैसे:- *सूर्यस्य*गतम्, *मयूरस्य* नृत्तम्, *गायकस्य*गीतम्, छात्रस्य हसितम् इत्यादि।

"न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थ तृनाम्" (पा० सू०)

ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ तथा तृन् प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्दों के योग में "कर्तृ कर्मणोः कृति" सूत्र से प्राप्त षष्ठी नहीं होती है। जैसेः—

---

*स्त्री प्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः' †'शेषे विभाषा' (वा०) स्त्री प्रत्यय इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति।

† "क्तस्य च वर्तमाने" "अधिकरण वाचिनश्च" (पा० सू०)

(क) 'ल' लकारस्थानीय शतृ, शानच् तथा क्वसु, कानच आदि। यथा—सृष्टिंकुर्वन्, कुर्वाणः वा हरिः; पाठं पठिष्यन्, पठिष्यमाणो वा छात्रः; कार्यं चकृवान्, चक्राणो वा इत्यादि।

(ख) 'उ'= उ तथा उकारान्त इष्णु (च्), आलु (च्) क्नु, ग्स्नु आदि। यथा—धनम्इच्छुः, स्पृहयालुः, निराकरिष्णुः, गृध्नुः, जिष्णुः आदि।

(ग) 'उक'= उकञ्। यथा—लक्ष्मीम् अभिलाषुकः, दैत्यान् घातुकः इत्यादि। किन्तु (कम्+उकञ्) 'कामुकः' के योगमें षष्ठी का निषेध नहीं होता है। जैसे—लक्ष्म्याः कामुकोहरिः।

(घ) 'अव्यय' = तुमुन्, क्त्वा, ल्यप्, णमुल् आदि कृत्प्रत्ययान्त अव्यय। यथा कृष्णं द्रष्टुम्, कृष्णं स्मृत्वा, कामं विजित्य, कृष्णं स्मारम् स्मारम् आदि।

(ङ) निष्ठा=क्तऔरक्तवतु। यथा—छात्रेण पुस्तकम् पठितम्, सगृहं गतः, गतवान् इत्यादि। किन्तु वर्तमानार्थक और अधिकरणार्थक 'क्त' में षष्ठी होती ही है।

(च) 'खलर्थ'=खल् और युच्। यथा—हरिणा प्रपञ्चः ईषत्करः, सुकरः, दुष्करोवा; ईषत्पानः सोमः भवता इत्यादि।

(छ) तृन्=शतृ के 'तृ' तथा तृन्के 'न्' से तृन् प्रत्याहार यहाँ लिया जाता है। इसमें शानन्, चानश्, * शतृ और तृन् प्रत्यय भी आते हैं। यथाः—राजसूयम् यजमानः; कवचं बिभ्राणः; वेदम् अधीयन्; लोकान् कर्ता इत्यादि।

---

* यह 'शतृ' लकार स्थानीय शतृ से भिन्न है। यह जब 'द्विष्' धातु से होता है तब षष्ठी का भी विकल्प से प्रयोग होता है। जैसे—मुरस्य, मुरं वा द्विषन् शत्रुः।

नोटः—कारक षष्ठी का ही निषेधक यह सूत्र है "षष्ठी शेषे" से सम्बन्ध में षष्ठी होती ही है। जैसे—*नरकस्य* जिष्णुः, *लोकस्य* कुर्वन् इत्यादि।

† भविष्यार्थक 'अक' प्रत्ययान्त तथा भविष्यार्थक और आधमर्ण्यार्थक 'इन्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में भी षष्ठी नहीं होती है। जैसेः—*सज्जनान्* पालकोऽवतरति; वयं गृहं गामिनःस्मः; असौ *शतं* दायी।

"कृत्यानांकर्तरि वा" (पा० सू०)

तव्य, ण्यत्, यत् आदि कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता से षष्ठी विकल्प से होती है। जैसे :—*मया, मम* वा हरिः सेव्यः; *मया, मम* वा पुस्तकम् पठितव्यम् इत्यादि। किन्तु कृत्य प्रत्यय से जहाँ कर्ता उक्त होगा वहाँ कर्ता से षष्ठी नहीं होगी। जैसे :—गेयः माणवकः साम्नाम्; असौ ग्रामस्य वास्तव्यः। यहाँ 'यत्' तथा 'तव्यत्' विशेष नियम से कर्ता में हुआ है।

नोट—कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के साथ यदि कर्ता और कर्म दोनों से षष्ठी की प्राप्ति हो तो किसी से षष्ठी नहीं होती है। जैसेः नेतव्याः व्रजं गावः कृष्णेन। यहाँ अनुक्त कर्म 'व्रज' में तथा अनुक्त कर्ता 'कृष्ण' में कृत्यानाम् इस योग से षष्ठी का निषेध हो गया।

---

† "अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः"

"तुल्यार्थैं रतुलोपमाभ्यां षष्ठ्यन्य तरस्याम्" (पा॰ सू॰)

'तुला' और 'उपमा' शब्द को छोड़कर तुल्यार्थक शब्दों के योग में तृतीया तथा विकल्प में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—तुल्यः सदृशः समोवाकृष्णेन, कृष्णस्य वा। किन्तु तुला. उपमा वा कृष्णस्य नास्ति। यहाँ तृतीया नहीं होती है।

नोट—तुलां यदारोहति *दन्तवाससा*, स्फुटोपमं *भूतिसितेन शम्भुना* इत्यादि स्थानों मे सहार्थें तृतीया समझनी चाहिए।

*आयुष्य, मद्र, भद्र कुशल, सुख, हित आदि शब्दों के तथा एतदर्थक अन्य शब्दों के योग में आशीर्वाद के अर्थ में चतुर्थी तथा विकल्प में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—आयुष्यं चिरंजीवितं वा कृष्णाय, कृष्णस्य वा भूयात्। ऐसे ही मद्रं, भद्रं, कुशलं, सुखं, शम्, हितं वा तस्मै, तस्य वा भूयात्।

नोट—पारे, मध्ये, कृते आदि अव्यय शब्दों के योग मे भी षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—गङ्गायाः पारे; ग्रामस्य मध्ये; छात्रस्य कृते इत्यादि।

इति षष्ठी

अथ सप्तमी विभक्तिः (Seventh case ending)

अधिकरण कारक [The Locative Case]

"आधारोऽधि करणम्" (पा॰ सू॰)

कर्ता अथवा कर्म के द्वारा कर्ता या कर्म निष्ठ व्यापार के आधार रूपकारक को अधिकरण कहते हैं। यह आधार तीन प्रकार का होता है—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक।

---

* "चतुर्थी चाशिष्यायुष्य मद्र भद्र कुशल सुखार्थं हितैः" पा॰ सू॰

(क) औपश्लेषिक—संयोग समवाय सामीप्य आदि सम्बन्ध से किसी वस्तु के आधार को औपश्लेषिक आधार कहते हैं। जैसे—कटे आस्ते, पुष्पे गन्धः, नद्याम् घोषः आदि।

(ख) वैषयिक · किसी इच्छा आदि विषय का जो आधार उसे वैषयिक आधार कहते हैं। जैसे—मोक्षे इच्छा वर्तते, पठने इच्छा वर्तते इत्यादि।

(ग) अभिव्यापक—सभी अवयवों में अभिव्याप्त होकर रहनेवाले पदार्थ के आधार को अभिव्यापक आधार कहते हैं। जैसे—तिलेषु तैलम्, दुग्धे घृतम् आदि।

"सप्तम्यधिकरणेच" (पा० सू०)

अनुक्त अधिकरण से तथा दूरार्थक और अन्तिकार्थक शब्दों से सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे:—

(१) कर्तृनिष्ठ क्रिया द्वारा औपश्लेषिकाधार में—बालः मञ्चे तिष्ठति भूतले घटःअस्ति इत्यादि; वैषयिकाधार में—मोक्षे इच्छास्ति। इत्यादि; अभिव्यापकाधार में—सर्वस्मिन् आत्मास्ति, दध्नि सर्पिः इत्यादि।

(२) कर्मनिष्ठ क्रिया द्वारा औपश्लेषिकाधार में—स्थाल्यां तण्डुलान् पचति आदि; वैषयिकाधार में—ज्ञाने इच्छां करोति आदि; अभिव्यापकाधार में—तिलेषु तैलं पश्यति इत्यादि। दूराद्यर्थक शब्दों के योग में—गृहस्य दूरे, अन्तिके वा इत्यादि।

* क्त प्रत्ययान्त शब्दों से 'इन्' प्रत्यय करने पर उसके कर्म से सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे:—व्याकरणे अधीती व्याकरणम् अधीतवान् इत्यर्थः।

---

* 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्'

† साधु तथा असाधु शब्दों के योग में जिसके प्रति साधु या असाधु हो उससे सप्तमी होती है। जैसे :—कृष्णः *मातरि* साधुः ; *मातुले* असाधुः।

'निमित्तात् कर्मयोगे' (वा०)

किसी व्यापार के कर्म के साथ जिसका संयोग (सम्बन्ध) हो या (समवाय सम्बन्ध हो अर्थात् कर्म का जो अवयव हो) ऐसे निमित्त (प्रयोजन) के बोधक शब्द से सप्तमी होती है। यथा :—*चर्मणि* द्वीपिनं हन्ति, *दन्तयो*र्हन्ति कुञ्जरम्, केशेषु चमरीं हन्ति, *सीम्नि* पुष्कलको हतः। (चर्म के लिये बाघ को दाँतों के लिए हाथी को, केशों के लिए चमरी (मृग विशेष) को तथा अण्डकोष (कस्तूरी) के लिए गन्धमृग को मारता है)। यहाँ चर्म आदि और द्वीपी आदि में समवाव सम्बन्ध है।

किन्तु *वेतनेन* धान्यं लुनाति (वेतन के लिए अनाज काटता है) यहाँ वेतन तथा धान्य में—संयोग या समवाय सम्बन्ध नहीं है। इसलिए सप्तमी नहीं होती है।

नोट :—निमित्त से कर्मयोग में सप्तमी के बदले चतुर्थी भी कहीं होती है। जैसे :—'*मुक्ताफलाय* करिणं हरिणं *पलाय*' [मोती के लिए हाथी को तथा मांस के लिए हरिण को (मारता है)]।

"यस्य च भावेन भावलक्षणम्" (पा० सू०) [भावे सप्तमी]

---

† 'साध्वसाधु प्रयोगेच' (वा०)

जिसकी (कर्त्ता या कर्म की) क्रिया से दूसरे को क्रिया का काल परिलक्षित हो उस लक्षक क्रिया के कर्त्ता या कर्म से तथा उसके कृदन्त विशेषण शब्द से सप्तमी होती है। कृदन्त विशेषण शब्द वर्तमान, भूत तथा भविष्यत्—तीनों काल के प्रत्ययों से बने होते हैं। जैसे—*छात्रेषु पठत्सु, पटितवत्सु पठिष्यत्सु* वा प्राध्यापकः आगतः (जब छात्र पढ़ते थे, पढ़ चुके थे या पढ़नेवाले थे तब प्राध्यापक आये)। यहाँ लक्षक क्रिया 'पठत्सु' आदि जो कर्तृवाच्य में है, उससे तथा उसके कर्त्ता 'छात्र' से सप्तमी हुई है। गोपेन *गोषु दुह्यमानासु, दुग्धासु, घोक्ष्यमाणासु* वा ते आगताः (जब गोप से गायें दुही जा रही थीं, दुही जा चुकी थीं, दुही जानेवाली थीं तब वे आये। यहाँ 'दुह्यमानासु' आदि क्रिया जो कर्मवाच्य में है उससे तथा उसके कर्म से सप्तमी हुई है।

"षष्ठी चानादरे" (पा० सू०) [अनादरे षष्ठी वा सप्तमी]

यदि अनादर (उपेक्षा) रूप अर्थ सूचित हो तो जिसके व्यापार से दूसरे का व्यापार लक्षित होता है उससे षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। जैसे :—रुदति (पुत्रादौ) रुदतो वा (पुत्रादेः) प्राव्राजीत्। रोते हुए परिजनों की उपेक्षा करके सन्यासी हो गया।

"स्वामीश्वराधिपति दायाद साक्षि प्रतिभू प्रसूतैश्च" (पा० सू०)

स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू (गवाह या जामिन) तथा प्रसूत शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। जैसे—*गृहस्य, गृहे* वा स्वामी, ईश्वरः, अधिपतिः; धनस्य, धने वा दायादः; *अभियोगस्य, अभियोगे* वा साक्षी, प्रतिभूः; देशस्य, देशे वा प्रसूतः इत्यादि।

"आयुक्त कुशलाभ्यां चा सेवायाम्" (प० सू०)

तत्परता (उत्सुकता) अर्थ रहने पर आयुक्त तथा कुशल शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। जैसे :—आयुक्तः (प्रवर्तितः), कुशलो वा *हरि पूजने, हरिपूजनस्य* वा। तत्परता अर्थ नहीं रहने पर आयुक्तः (ईषद्युक्तः) गौः शकटे। *कर्मणि* कुशलः (निपुणः) यहाँ षष्ठी नहीं हुई है।

"यतश्च निर्धारणम्" (पा० सू०) [निर्धारणे षष्ठी वा सप्तमी]

जिस *समुदाय* से जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञा का निर्देश करके एक देश (एक भाग) पृथक् किया जाय *उस समुदाय* से षष्ठी और सप्तमी होती हैं।

जाति से पृथक्करण—*वर्णानां, वर्णेषु* वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः।

गुण से „ —*छात्राणां. छात्रेषु* वा नम्रः गुरुप्रियः।

क्रिया से „ —*गच्छतां, गच्छत्सु* वा धावन् शीघ्रः।

संज्ञा से „ —*कवीनां, कविषु* वा कालिदासः श्रेष्ठः।

* प्रति, परि तथा अनु शब्द का यदि प्रयोग न हो तो साधु एवं निपुण शब्द के योग में पूजा (आदर) अर्थ रहने पर सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—*मातरि* साधुः निपुणो वा। पूजा अर्थ नहीं रहने पर 'निपुण' शब्द के साथ सप्तमी नहीं होती है। जैसे—निपुणो राज्ञः भृत्यः।

---

* "साधु निपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः" (पा० सू०) 'अप्रत्यादिभिरितिवक्तव्यम्' [वा०]

नोट :—'साधु' शब्द के योग में पूजा अर्थ न रहने पर भी 'साध्व-साधुप्रयोगे च' इस वार्तिक से सप्तमी होती है। प्रति, परि तथा अनु के योग में द्वितीया हो जाती है। जैसे—साधुः निपुणो वा मातरं प्रति, परि, अनु वा।

† प्रसित (तत्पर) तथा उत्सुक शब्द के योग में तृतीया और सप्तमी होती हैं। जैसे—प्रसितः (तत्परः) उत्सुको वा कृष्णेन कृष्णे वा।

‡ 'नक्षत्र से से युक्त काल' ऐसा अर्थ रहने पर नक्षत्र वाचक शब्द से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं।

जैसे—*मूलेन मूले* वा देवीम् आवाहयेत् मूलनक्षत्र से युक्त कालमें देवी का आवाहन करे। *श्रवणेन, श्रवणे* वा देवीं विसर्जयेत्। श्रवण नक्षत्र सेयुक्त कालमें देवी का विसर्जन करे)।

❀ यदि दो कारक शक्तियों के बीच में कालवाचक तथा अध्व वाचक शब्द हों तो उनसे सप्तमी और पञ्चमी विभक्तियां होती हैं। जंसे—अद्य भुक्त्वा अयम्, द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ष्यति (आज खाकर यह दोदिन बीतनेपर तीसरे दिनमें खायगा)। यहाँ कालवाचक 'द्व्यह' शब्द 'भुक्त्वा' तथा 'भोक्ष्यति' इन दो क्रियाओं की दो कर्तृत्व शक्तियों के बीच में है। इहस्थोऽयम् *क्रोशे क्रोशाद्* वा लक्ष्यं विध्येत् (इसी जगह पर बैठा हुआ यह

---

† "प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च" [पा० सू०]

‡ "नक्षत्रे च लुपि" [पा० सू०)

❀ "सप्तमी पञ्चम्यौ कारक मध्ये" (पा० सू०)

(बाण से) कोस के आगे लक्ष्य का वेध करेगा)। यहाँ क्रमशः 'अयम्' तथा 'लक्ष्यम्' इन दो कर्तृत्व तथा कर्मत्व शक्तियों के बीच अध्ववाचक 'क्रोश' शब्द है।

नोट :--†अधिक शब्द के योग में भी सप्तमी तथा पञ्चमी होती हैं।

जैसे :- लोके लोकाद् वा अधिको हरिः।

*अधिकार्थ बोधक 'उप' तथा स्वस्वामि सम्बन्ध बोधक 'अधि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। इन 'उप' और 'अधि' कर्मप्रवचनीयों के योग में सप्तमी होती है। जैसे--उप परार्द्धे कृष्णस्य गुणाः (परार्द्ध से भी अधिक कृष्ण के गुण हैं)। उप सहस्रे उपकाराः गुरुणा छात्रस्य कृताः (गुरु ने छात्रों के हजार से भी अधिक उपकार किये)। 'अधि' के योग में तो स्व (धन) तथा स्वामी, दोनों में पर्याय से सप्तमो होतो है। जैसे--अधि भुवि रामः अभूत्; अधि रामे भूरभूत् (राम भूपति हुए)।

नोट :— (१) 'क्रियायाः निवृत्तौच प्रवृत्तिवत् कारकाणि भवन्ति'। अर्थात् क्रिया के विधान में जैसे कारक होते हैं वैसे ही उसके निषेध में भी। जैसे—चन्द्रं पश्यति; चन्द्रं न पश्यति; अश्वात् पतति; अश्वात् न पतति इत्यादि।

(२) 'विवक्षावशात् कारकाणि भवन्ति,। वक्ता के बोलने की इच्छा से कारक होते हैं। गृहं प्रविशति की तरह गृहे प्रविशति भी।

---

† 'तदस्मिन्नधिकमिति' 'यस्मादधिकमिति'च सूत्रनिर्देशात्।

* "उपोऽधिकेच" "अधिरीश्वरे" "यस्मादधिकं यस्यचेश्वर वचनं तत्र सप्तमी" पा० सू०

ी है वक्ता की विवक्षा पर निर्भर करता है। इसी तरह स्थाल्यां पचति और स्थाल्या पचति; अरये क्रुध्यति और अरौ क्रुध्यति; नृपात् धनं याचते और नृपं धनं याचते; दरिद्रान् भर कौन्तेय ! माप्रयच्छेश्वरे धनम् !

(३) 'प्रकृति विकृत्यो रुक्तौ प्रकृतेरनुसारतः कृदाख्याते। विकृति विवक्षाधीना विकृतौ संख्याव गन्तव्या। जहाँ प्रकृति (कारण) और उसकी विकृति (कार्य) दोनों रहें वहाँ संख्या और पुरुष प्रकृतिके अनुसार ही होते हैं। जैसे—एकं दारु सप्त यूपाः भवति एकं सुवर्णं नव कुण्डलानि भवति; सुवर्णं कुण्डले क्रियताम् इत्यादि

(४) 'विशेषणे समानार्थे विशेष्यस्य विभक्तयः।
जहल्लिङ्गे तु तल्लिङ्गं संख्याच पुरुषस्तथा ॥

अनियत लिङ्गवाले समानार्थक विशेषण शब्दों में विशेष्य की विभक्तियां, वचन तथा पुरुष होते हैं। जैसे—नीलं कमलं जिघ्र; हसन् कृष्णः अवलोकितः; हसन्त्यो वनिता दृष्टाः इत्यादि। किन्तु 'अजहल्लिङ्गे तु न विशेष्य लिङ्गम्। नियत लिङ्गवाले विशेषण शब्दों में विशेष्य का लिङ्ग नहीं होता है। जैसे—घटो द्रव्यम्; विद्याधनं ज्ञेया; शब्दः प्रमाण मित्यादि। कहीं पर विशेष्य के विपरीत भी विशेषण में संख्या होती है। जैसे—वेदाः *प्रमाणम्*; गुणाः *पूजास्थानम्* इत्यादि। कहीं उद्देश्य और विधेय में विधेय के ही लिङ्ग और वचन होते हैं। जैसे वनानि मे गृहं ज्ञेयम् इत्यादि।

इति कारक प्रकरणम्।

अथ समास प्रकरणम्

समास

संस्कृत भाषा की यह परम विशेषता है कि संक्षेप में अपने अभिप्राय को प्रगट करने के लिए परस्परान्वित दो या दो से अधिक पदों को मिलाकर एक महापद बना लेते हैं। इस तरह अनेक पदों का एक महापद होना या बनाना तथा इस प्रकार बना हुआ वह महापद दोनों ही को समास कहते हैं। अतः समसनम् (अर्थात एकपदीभवनम्) समासः (सम् + अस् + भावे घञ्) अथवा समस्यते अनेकं सुबन्तम् एकत्र क्रियते इति समासः (सम् + अस् + कर्मणिघञ्)।

नित्य और अनित्य समास

यह समास नित्य और अनित्य की दृष्टि से दो तरह का है। 'अविग्रहोऽनित्य समासः, अस्व पद विग्रहोवा'। अर्थात् जिस समास में लौकिक विग्रह नहो या जिस समास में लौकिक विग्रह वाक्य में समास के पदों में से कोई एक स्वरूपतः न कहा जाकर अर्थतः कहा जाय वे दोनों नित्य समास हैं। जैसे – कृष्णसर्पः (गेहुमन साँप)। यहाँ 'कृष्णः सर्पः = कृष्ण सर्पः' ऐसा लौकिक विग्रह नहीं होता। विग्रह करने से 'काला साँप' अर्थ हो जायगा नकि गेहुमन जो अभीष्ट है। 'मनुष्या एव = मनुष्यमात्रम्'। यहाँ विग्रह में मात्र शब्द नहीं कहा गया है तदर्थक एव शब्द कहा गया है। इसलिए यह भी नित्यसमास है। इसके अतिरिक्त जिसमें लौकिक विग्रह हो वह अनित्य समास है।

विग्रह

'वृत्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः' । अर्थात् वृत्ति के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले वाक्य को *विग्रह* कहते हैं। विग्रह वाक्य के द्वारा ही वृत्ति में आये हुए पदों को अलग-अलग करके अर्थ प्रगट किया जाता है। यह विग्रह लौकिक और अलौकि के भेद से दो तरह का होता है। 'लोके प्रयोगार्हः लौकिकः' । अर्थात् लोक में प्रयोग के योग्य जो विग्रह है वह लौकिक है। यथा—'राजपुरुषः' इस समास वृत्ति का अर्थावबोधक वाक्य 'राज्ञः पुरुषः' । और लोक में प्रयोग के अयोग्य केवल शास्त्रीय प्रक्रिया प्रदर्शक वाक्य को अलौकिक विग्रह वाक्य कहते हैं। जैसे—'राजन् अस् पुरुषस्' ।

वृत्ति

'परार्थाभिधानं वृत्तिः' । अभिधीयते ऽनेन इत्यभिधानम् करणेल्युट् । विग्रह वाक्यावयव पदार्थेभ्यः परः=ऽन्यः योऽयं विशिष्टैकार्थः, तत्प्रतिपादिका वृत्तिः । अर्थात् विग्रह वाक्य के अवयव जो पद उनके अर्थों से अतिरिक्त जो एक विशिष्ट समुदायार्थ उसके प्रतिपादिक को *वृत्ति* कहते हैं। जैसे—'पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः' । यहाँ विग्रह वाक्य के पीत और अम्बर पदों के अर्थों से अतिरिक्त 'पीत अम्बर वाला पुरुष' यह एक विशिष्ट अर्थ समासरूप वृत्ति ही से ज्ञात होता है। इसलिए कहा गया है—

"पाणिन्यादिभिराचार्यैः शब्दशास्त्र प्रवक्तृभिः ।
भणिता वृत्तयोयाहि विशिष्टैकार्थ–बोधिकाः ॥
समासा एकशेषाश्च तद्धिताश्च कृतस्तथा ।
सनाद्यन्ता धातवश्च ताएव पञ्चधामताः ॥"

इस प्रकार विशिष्ट एक-अर्थ के बोधक पाँचतरह की वृत्तियाँ हैं, (१) समासवृत्ति (२) एकशेष वृत्ति, (३) तद्धितवृत्ति, (४) कृद्वृत्ति और (५) सनाद्यन्त धातु वृत्ति। इनसभी वृत्तियों में पदार्थों से अतिरिक्त एक समुदायार्थ प्रतीत होता है। जैसे—

(१) समासवृत्ति में 'राजपुरुषः' से 'राजसम्बन्धी पुरुष';
(२) एकशेष वृत्ति में 'पितरौ' से माता और पिता।
(३) तद्धित वृत्ति में 'दाशरथि' से दशरथ का अपत्य पुरुष;
(४) कृद्वृत्ति में 'कुम्भकारः' से कुम्भ का बनाने वाला; और
(५) सनाद्यन्तधातु वृत्ति में 'पुत्रीयति' से अपने पुत्र की इच्छा करने वाला इत्यादि।

"समर्थः पदविधिः" (पा० सू०)

पद संबन्धी जो कार्य वह समर्थाश्रित होता है। अर्थात् ये पूर्वोक्त पदसम्बन्धी कार्य सामर्थ्य रहनेपर ही होते हैं। सामर्थ्य दो तरह के होते हैं– व्यपेक्षारूप और एकार्थी भाव रूप। स्वार्थ पर्यवसायिनां पदानामाकाँक्षादिवशाद्यः परस्परान्वयस्तद् व्यपेक्षाभिधं सामर्थ्यम्। विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा तथा सम्बद्धार्थः समर्थः इस व्युत्पत्ति के अनुसार अपने-अपने अर्थों में पर्यवसन्न

पदों का आकाँक्षा योग्यता और सन्निधि के कारण जो परस्परा-न्वय उसे व्यपेक्षा रूप सामर्थ्य कहते हैं। जैसे--राज्ञः पुरुषः आदि लौकिक विग्रह वाक्य में। प्रक्रिया-दशायां प्रत्येकमर्थवत्वेन पृथग्गृहीतानां पदानां समुदायशक्त्या विशिष्टैकार्थ प्रतिपादकता रूपमेकार्थीभावलक्षणं सामर्थ्यम्। 'सङ्गतार्थः समर्थः', 'संसृष्टार्थः समर्थः'।

इन व्युत्पत्तियों से एकीभूत रूप अर्थ होता है। अर्थात् सार्थक पृथक् २ पदों का समुदाय शक्ति से जो एकीभूत विशिष्ट अर्थ उसके प्रतिपादक सामर्थ्य को एकार्थी भाव रूप सामर्थ्य कहते हैं। इसी सामर्थ्य के रहने पर समास आदि पाँचो वृत्तियाँ होती हैं। यह सामर्थ्य 'राजपुरुष': आदि वृत्तियों में ही रहता है। अलौकिक विग्रह वाक्य में उसकी कल्पना ही की जाती है। जहाँ यह सामर्थ्य नहीं है वहाँ 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः' (धनी राजा का पुरुष) इस तात्पर्य से 'ऋद्धस्य राजपुरुषः' ऐसा प्रयोग नहीं होता है क्योंकि राजन् शब्द ऋद्ध के साथ सापेक्ष होने से असमर्थ हो जाता है। 'सापेक्षमसमर्थवत्।'

सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः

'देवदत्तस्य गुरोः कुलम्' इस अर्थ में 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि स्थलों में 'ऋद्धस्य राजपुरुषः' की तरह सापेक्ष होने से असमर्थ होने पर भी समास होता है। 'शिवस्य भगवतो भक्तः इस अर्थ में 'शिव भागवतः' यह महाभाष्यकार के प्रयोग से कहीं पर सापेक्ष रहने पर भी समास होता है। अतः 'केषां

शालीनाम् ओदनः' इस अर्थ में 'किमोदनः शालीनाम्' इत्यादि प्रयोग होता है। भर्तृहरि ने भी कहा है—"सम्बन्धि शब्दः सापेक्षोनित्यं सर्वः समस्यते।" इत्यादि। अर्थात् सम्बन्धिवाचक शब्द जो नित्य सापेक्ष है उसका समास होता है। यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए—यदि समास का प्रधान शब्द सापेक्ष हो तो समास होता ही है। जैसे–'राजपुरुषः सुन्दरः'। यहाँ पुरुष शब्द सापेक्ष होने पर भी प्रधान होने के कारण समास हो ही जाता है। समास का अप्रधान शब्द यदि सापेक्ष होता है तो 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इत्यादि कुछ स्थलों को छोड़कर समास नहीं होता है।

समास के भेद

* समास मुख्यतः पाँच हैं—(१) केवल समास [या 'सुप्-सुपा' समास], (२) अव्ययी भाव, (३) तत्पुरुष [कर्मधारय और द्विगु तत्पुरुष के उपभेद हैं], (४) बहुव्रीहि और (५) द्वन्द्व।

१ केवल समास या सुप्सुपा समास—जहाँ सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है उसको सुप्सुपा समास कहते हैं। जैसे—पूर्वम् उक्तः=पूर्वोक्तः पूर्वभूतः=भूतपूर्वः इत्यादि।

नोट :—'पूर्व अम् उक्त स' इसका समास करने पर प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति का लुक् हो जाता है। तब फिर प्रति पदिक संज्ञा होती है और सुप् विभक्ति आती है। समास में सब जगह ऐसी प्रक्रिया होती है।

---

* केवलश्चाव्ययीभावस्तथा तत्पुरुषोऽपि च।
बहुव्रीहिर्द्वन्द्व इति समासाः पञ्च सम्मताः॥

(२) अव्ययीभाव समास—(Adverbial or Indeclinable Compounds) अव्ययीभाव समास—'उन्मत्तगङ्गम्, लोहितगङ्गम्, इत्यादि में विग्रह न होने के कारण; यथाशक्ति, अनुरूपम् इत्यादि में अस्व पद विग्रह होने के कारण नित्य है और 'दिशयोर्मध्ये अपदिशम्' इत्यादि स्थलों में अनित्य है। "अव्ययं-विभक्ति" इत्यादि सूत्र के 'अव्ययम्' इस अंश से अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और वह अव्ययीभाव कहलाता है। जैसे दिशयोर्मध्यम् अपदिशम्। यहाँ दिशा ओस् और अप दोनों का समास होता है। इस में 'अप' का पूर्व प्रयोग होता है। लौकिक विग्रह वाक्य में कोई भी पद पूर्व में रखा जा सकता है। जैसे—दिशयोर्मध्यम् और मध्यम् दिशयोः। किन्तु समास करने पर उसी पदका पूर्व प्रयोग होता है जो समास विधायक सूत्र के प्रथमान्त पद से विग्रह में गृहीत होता हैं। जैसे—यहाँ "अव्ययं विभक्ति" इत्यादि सूत्र में अव्ययम्' इस प्रथमान्त पद से 'अप' गृहीत होता है। अतः इसका पूर्व प्रयोग होता है। यही पूर्व प्रयोग का साधारणतः नियम है। इसके अतिरिक्त बहुव्रीहि और द्वन्द्व समास में पूर्व प्रयोग के जो नियम हैं वे आगे बतलाये जाँयगे। समास विधायक शास्त्र के इसी ❀ प्रथमा निर्दिष्ट पद को 'उपसर्जन कहते हैं जिसका पूर्व प्रयोग होता है।

इसके अतिरिक्त विभक्ति समीप समृद्धि आदि बोधक अव्यय पद का किसी भो समर्थ सुबन्त के साथ अव्ययोभाव समास

❀ "प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्" "उपसर्जनं पूर्वम्" (पा० सू०)

होता है। अव्ययो भाव समास के बाद शब्द नपुंसक हो जाता है अतः दीर्घान्त शब्द भी ह्रस्वान्त हो जाता हैं और अव्यय हो जाने के कारण विभक्तियों का लुक् हो जाता है। केवल अदन्त शब्द से आगे पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर सभी विभक्तियों के स्थान में 'अम्' आदेश हो जाता है। किन्तु यह अमादेश तृतीया और सप्तमी में विकल्प से होता है। यथा—

लतायाम् इति अधिलतम्; हरौ इति अधि हरि; विष्णो, समीपम् उपविष्णु; नद्याः समीपम् उपनदम् उपनदि, वधूम् प्रति प्रतिवधु; मातरं प्रति प्रतिमातृ; गोः समीपम् उपगु; सुहृदः समीपम् उपसुहृदम् उपसुहृत्; आत्मनि इति अध्यात्मम्; राज्ञः समीपम् उपराजम्; चर्मणः समीपम् उपचर्मम्—उपचर्म इत्यादि। इन उपर्युक्त उदाहरणों को देखने से अव्ययो भाव समास की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रगट होती हैं—

(१) पूर्वपद प्रायः अव्यय रहता है। किन्तु शाकस्यलेशः *शाकप्रति* इत्यादि में पर पदही अव्यय है और 'उन्मत्तगङ्गम्' इत्यादि में एक भी पद अव्यय नहीं है।

(२) इस समास में नपुंसकलिङ्ग होता है। इसलिये दीर्घान्त भी शब्द ह्रस्वान्त हो जाता है।

(३) अकारान्त अव्ययी भाव के परे विभक्तियों के स्थान में पञ्चमी को छोड़कर 'अम्' आदेश हो जाता हैं केवल तृतीया और सप्तमी में विकल्प से अमादेश होता है।

(४) यह समास अव्यय हो जाता है। अतः अकारान्त भिन्न अव्ययीभाव से परे विभक्तियों का लुक् (लोप) हो जाता है।

(५) झयन्त अव्ययो नाव विकल्प से अकारान्त हो जातें हैं।

(६) अन्नन्त अव्ययीभाव अकारान्त हो जाता है। किन्तु अन्नन्त यदि नपुंसक हो तो विकल्प से वहाँ टच् होता है। अर्थात् अकारान्त होता है।

(७) इस समास में 'उन्मत्तगङ्गम्' इत्यादि कुछ शब्दों को छोड़कर प्रायः पूर्व पदकाही अर्थ प्रधान रहता है।

(८) वाक्य में प्रायः अव्ययी भाव का प्रयोग क्रिया विशेषण की तरह होता है।

(३) तत्पुरुष [Determinative Compound]

तत्पुरुष समास के पहले दो भेद करते हैं—

(क) व्यधिकरण [या, असमानाधिकरण] तत्पुरुष।

(ख) समानाधिकरण तत्पुरुष [या, कर्मधारय]।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष के निम्नलिखित भेद और उपभेद किये जाते हैं—

(१) प्रथमा तत्पुरुष [(क) साधारण प्र० त०, (ख) एकदेशि तत्पुरुष और (ग) प्रादितत्पुरुष।

(२) द्वितीया तत्पुरुष।

(३) तृतीया तत्पुरुष [(क) साधारण तृ० त०, (ख) अलुक् तृ० त०]।

(४) चतुर्थी तत्पुरुष [(क) साधारण च० तु०, (ख) अलुक् च० त०]।

(५) पञ्चमी तत्पुरुष [(क) साधारण प० त०, (ख) अलुक् प० त०]।

(६) षष्ठी तत्पुरुष [(क) साधारण ष० त०, (ख) अलुक् ष० त०]।

(७) सप्तमी तत्पुरुष [(क) साधारण स० त०, (ख) अलुक् स० त०]।

(८) उपपद तत्पुरुष।

(९) गति तत्पुरुष।

(१०) मयूर व्यंसकादि तत्पुरुष।

(ख) समानाधिकरण या कर्मधारय के निम्नलिखित भेद और उपभेद हैं—

(१) साधारण (कर्मधारय) [(क) विशेषण पूर्वपदक, विशेष्यपूर्व पदक, (ग) विशेषणोभय पदक, (घ) विशेष्योभय पदक।

(२) उपमान तत्पुरुष।

(३) उपमित तत्पुरुष।

(४) 'मयूर व्यंसकादि' तत्पुरुष [(क) रूपक समास, (ख) साधारण]।

(५) मध्यम पदलोपी तत्पुरुष।

(६) प्रादितत्पुरुष।

(७) 'नञ्' तत्पुरुष।

(८) उपपद तत्पुरुष।

(९) द्विगु समास [(क) तद्धितार्थ द्विगु (ख) उत्तर पद द्विगु (ग) समाहार द्विगु]।

(क) व्यधिकरणतत्पुरुष—

विभिन्न अधिकरण (अभिधेय=वाच्यार्थ) वाले शब्द, जो भिन्न २ व्यक्ति या वस्तु के बोध कराने के लिये प्रयुक्त होते हैं, व्यधिकरण कहलाते हैं और उनसे बने तत्पुरुष को व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं।

(१) प्रथमा तत्पुरुष—

यदि पूर्वपद प्रथमान्त और उत्तरपद अप्रथमान्त रहे तो उस तत्पुरुष को प्रथमा तत्पुरुष कहते हैं।

(क) साधारण 'प्रथमातत्पुरुष'—

※ (प्रथमान्त) कालवाचक शब्द का [षष्ठ्यन्त परिच्छेद्यार्थक] किसी शब्द के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है। जैसे—मासो जातस्य यस्यसः=मासजातः (शिशुः) [जिसे जन्म लिए एक मास बीता है वह (बच्चा) मासस्, जातअस्= मास जात] सप्ताहः अनुपस्थितस्य यस्यसः=सप्ताहानुपस्थितः (छात्रः) [एक हफ्ते से अनुपस्थित लड़का]।

(ख) एकदेशि तत्पुरुष [प्रथमान्त + षष्ठ्यन्त]

† पूर्व, अपर, अधर, उत्तर रूप अवयव वाचक सुबन्त शब्दों का अवयवि वाचक षष्ठी-एकवचनान्त पद के साथ तत्पुरुष समास हो। कायस्य पूर्वम्=पूर्वकायः [शरीर का पूर्व भाग]। अपरं कायस्य=अपरकायः इत्यादि।

※ "कालाः परिमाणिना" (पा० सू०)

† "पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशि नैकाधिकरणे" (पा० सू०)

† समांशवाची (ठीक आधा अर्थ वाले) नित्य नपुंसक सुबन्त 'अर्ध' शब्द का षष्ठी-एकवचनान्त अवयवि वाचक पद के साथ एकदेशि तत्पुरुष समास होता है। जैसे—पटस्य अर्धम्= अर्धपटः। मासस्य अर्धम्=अर्धमासः इत्यादि।

किसी भी अवयव वाचक सुबन्त पद का षष्ठी-एकवचनान्त कालवाचक शब्द के साथ एकदेशि तत्पुरुष होता है। जैसे— कालस्य पूर्वम्=पूर्व कालः। अह्नः पूर्वम्, मध्यम्, परम्, अपरम्, सायं वा (क्रम से)=पूर्वाह्णः, मध्याह्नः, पराह्णः अपराह्णः, सायाह्नो वा। यहाँ 'अहन्' के स्थान में 'अह्न' आदेश हो जाता है। रात्रेः पूर्वम्, मध्यम्, अपरं, पश्चिमं वा=पूर्वरात्रः, मध्यरात्रः, अपररात्रः, पश्चिमरात्रो वा इत्यादि।

(ग) प्रादितत्पुरुष

* 'गत' आदि अर्थों में विद्यमान प्रादि अव्ययों का किसी भी प्रथमान्त या अप्रथमान्त पदके साथ जो समास होता है उसे प्रादितत्पुरुष कहते हैं। जैसे—प्रगतः दक्षिणम्=प्रदक्षिणम्। [प्रगतःआचार्यः=प्राचार्यः यह तो समानाधिकरण का उदारण है। यह आगे बतलाया जायगा] अतिक्रान्तः इन्द्रियाणि=अतीन्द्रियः (पदार्थः) [इन्द्रियों से न जानने योग्य पदार्थ]।

---

† "अर्धं नपुंसकम्" (पा० सू०)

* "कुगतिप्रादयः (पा० सू०) प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया, अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया, अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया, पर्यादयोग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या, निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (वा०)

अवक्रुष्टः कोकिलया=अवकोकिलः (बालः) [कोयल से चिढ़ाया लड़का]। परिग्लानः अध्ययनाय=पर्यध्ययनः (छात्रा) [पढ़ने से उदास विद्यार्थी]। निर्गतः चिन्तायाः=निश्चिन्तः (जनः) इत्यादि।

(२) द्वितीया तत्पुरुष [द्वितीयान्त+प्रथमान्त]

† किसी भी द्वितीयान्त पद का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इतने सुबन्त पदों के साथ तत्पुरुष समास होता है। जैसे—

कृष्णं श्रितः=कृष्णाश्रितः। दुःखम् अतीतः=दुःखातीतः। कूपं पतितः=कूपपतितः इत्यादि।

(३) तृतीया तत्पुरुष [तृतीयान्त+प्रथमान्त]

(क) साधारण तृतीया तत्पुरुष

❀ (क) कर्तृवाचक तथा (ख) करण वाचक तृतीयान्त पद का कृदन्त प्रकृतिक सुबन्त पद के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है। जैसे—(क) कृष्णेन पालितः=कृष्णपालितः। (ख) कुठारेण छिन्नः=कुठारच्छिन्नः इत्यादि।

(ख) अलुक् तृतीया तत्पुरुष

‡ ओजस, सहस्, अम्भस्, तमस् आदि कतिपय शब्दों से परे तृतीया समास में विभक्ति का अलुक् हो जाता है। अलुक् होने पर भी एक पद हो जाने के कारण यह समास ही है। यथा—ओजसाकृतम्; सहसाकृतम्; अम्भसास्नातम्; तमसावृतम् इत्यादि। ऐसे ही पुंसानुजः [पुत्र पर का पुत्र] और जनुषान्धः [जन्म से अन्धा] आदि प्रयोग होते हैं।

---

† द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः (पा० सू०)

❀ "कर्तृकरणेकृता बहुलम्" (पा० सू०)

‡ "ओजः सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः" (पा० सू०) 'पुंसानुजो जनुषान्ध इति च' (पा०)

(४) चतुर्थी तत्पुरुष [चतुर्थ्यन्त + प्रथमान्त]

(क) साधारण चतुर्थी तत्पुरुष

❀ (क) विकृति वाचक चतुर्थ्यन्त शब्द का तदर्थक (अर्थात् उसके प्रकृतिवाचक) सुबन्त के साथ विकल्प से तथा (ख) चतुर्थ्यन्त पदका अर्थ शब्द के साथ नित्य ही एवं (ग) चतुर्थ्यन्त पद का सुबन्त बलि. हित, सुख और रक्षित शब्दों के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है। जैसे—(क) कुण्डलाय कनकम् = कुण्डलकनकम्; यूपायदारु = यूपदारु। (ख) तस्मै इदम् = तदर्थम्; कन्यायै इयं = कन्यार्था; छात्राय अयम्—छात्रार्थः (ग) देव्यैबलिः = देवीबलिः; छात्राय हितम् = छात्रहितम् इत्यादि।

(ख) अलुक् चतुर्थी तत्पुरुष

† यथा—आत्मनेपदम्; परस्मै पदम्; आत्मनेभाषा; परस्मै भाषा।

(५) पञ्चमी तत्पुरुष [पञ्चम्यन्त + प्रथमान्त]

(क) साधारण पञ्चमी तत्पुरुष

‡ किसी भी पञ्चम्यन्त पदका सुबन्त भय, भीत, भीति, और भी शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है। जैसे—पापाद् भयम् = पापभयम्, चौरात् भीतः = चौरभीत इत्यादि।

(ख) अलुक् पञ्चमी तत्पुरुष

❀ "चतुर्थी तदर्थार्थ बलिहितसुख रक्षितैः" (पा० सू०)

† "वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः" "परस्यच" (पा० सू०)

‡ "पञ्चमी भयेन (पा० सू०) भयभीत भीतिभीभिरितिवाच्यम् (वा०)

† यथा—स्तोकान्मुक्तः, अल्पान्मुक्तः, दूरादागतः इत्यादि ।

(६) षष्ठी तत्पुरुष [षष्ठ्यन्त + प्रथमान्त]

(क) साधारण षष्ठी तत्पुरुष

‡ किसी भी षष्ठयन्त पदका किसी भी सुबन्त पद के साथ विकल्प से समास होता है। जैसे—राज्ञः पुरुष = राजपुरुषः; पुस्तकानाम् आलयः = पुस्तकालयः इत्यादि ।

(ख) अलुक् षष्ठी तत्पुरुष

†† यथा—चौरस्यकुलम्; वाचोयुक्तिः, पश्यतोहरः, देवानाम्प्रियः, मातुःष्वसा, मातुस्वसा, पितुःष्वसा, पितुःस्वसा इत्यादि ।

(७) सप्तमी तत्पुरुष [सप्तम्यन्त + प्रथमान्त]

(क) साधारण सप्तमी तत्पुरुष

※ किसी भी सप्तम्यन्त पद का शौण्डादि सुबन्तपदों के साथ तथा सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है। यथा—द्यूते शौण्डः = द्यूतशौण्डः [जूए में कुशल]। कार्येषु कुशलः = कार्यकुशलः। वनेसिद्धः = वनसिद्धः; आतपे शुष्कम् = आतपशुष्कम्; घृतेपक्वम् = घृतपक्वम्; चक्रेबन्धः = चक्रबन्धः इत्यादि ।

(ख) अलुक् सप्तमी तत्पुरुष

---

† पञ्चम्याःस्तोकादिभ्यः (पा० सू०)

‡ "षष्ठी" | 'षष्ठ्या आक्रोशे (पा० सू०)

†† वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्ति दण्ड हरेषु, देवानां प्रिय इति मूर्खे (वा०) विभाषास्वसृपत्योः (पा० सू०)

※ "सप्तमी शौण्डैः" "सिद्ध शुष्क पक्व बन्धैश्च" (पा० सू०)

† यथा—युधिस्थिरः=युधिष्ठिरः ; हृदिस्पृक् = हृदिस्पृक् ; कर्णजपः इत्यादि।

(८) उपपद तत्पुरुष [तृतीयान्त या षष्ठ्यन्त या सप्तम्यन्त * असुबन्त कृदन्त]

जब धातु में अपने से पूर्व किसी सुबन्त पद के रहने पर ही प्रत्यय लगता है तब उस सुबन्त पद का नाम 'उपपद' होता है। ऐसे सुबन्त उपपदों का असुबन्त कृदन्त शब्द के साथ तत्पुरुष समास होता है। यथा—पार्श्वाभ्यां शेते=पार्श्वशयः [पार्श्व-भ्याम्, शय (शी+अच्) पार्श्वशयः=करवट सोनेवाला]। कुम्भं करोति इति कुम्भकारः [कुम्भ अस्*, कार (कृ+अण्) कुम्भकारः=घड़ा बनाने वाला]। गिरौ शेते गिरिशयः [गिरि इ, शय=गिरिशयः=पर्वत पर सोनेवाला]।

(९) गति तत्पुरुष

प्र, परा आदि अव्यय जब क्रिया पद के साथ आते हैं तब वे उपसर्ग तथा गति कहलाते हैं। यह सामान्य प्रकरण में बतलाया गया है। किन्तु यहाँ उरी, उररी आदि अव्यय; च्वि, डाच् प्रत्ययान्त शब्द; आदर और अनादर अर्थों में क्रमशः

---

† "हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्" "हृद्भ्यां च" तत्पुरुषे कृति बहुलम्" (पा० सू०)

* 'कुम्भं करोति' इस लौकिक विग्रह में क्रिया पद तिङन्त है इसलिए द्वितीया का प्रयोग हुआ और अलौकिक विग्रह में 'कार' कृदन्त है अतः षष्ठी का प्रयोग होता है।

सत् और असत्; भूषण अर्थ में 'अलम्' इत्यादि शब्द क्रिया योग में गति संज्ञक होते हैं। इन पदों का जब क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया पदों के साथ "कुगतिप्रादयः" सूत्र से नित्य समास होता है तब वह समास *गतितत्पुरुष* कहलाता है। समास करने के बाद 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' हो जाता है और तुक् (त्) का आगम हो जाता है। यथा—उरी+कृत्वा=उरीकृत्य=स्वीकार करके। अशुक्लं शुक्लं कृत्वा=शुक्ली कृत्य=जो उजला नहीं है उसे उजला करके। पटत् इति कृत्वा पटपटा कृत्य='पटपटा' शब्द करके। सत्कृत्य, असत्कृत्य, अलंकृत्य इत्यादि। इसी तरह साक्षात्कृत्य, जीविकाकृत्य, वशेकृत्य इत्यादि प्रयोग होते हैं।

(१०) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष [मयूरव्यंसकादयश्च (पा० सू०)]

मयूरव्यंसकादि गण में आये हुए शब्द तथा अन्यान्य कतिपय शब्दों की समास कार्यपूर्वक निष्पत्ति इस सूत्र से होती है। इनमें कुछ शब्दो का समास नित्य है और कुछ का अनित्य। इनके विग्रह भी विभिन्न प्रकार से होते हैं। जैसे—नास्ति किञ्चन यस्य सः=अकिञ्चनः (निर्धन)। नास्ति कुतोऽपि भयं यस्यसः=अकुतोभयः (निर्भय)। उदक् च अवाक् च=उच्चावचम् (विविध)। कां दिशं गच्छामीति य आह सः=कान्दिशीकः (डर से भागा हुआ)। अहंश्रेष्ठः अहंश्रेष्ठः इति भावना अहमहमिका। यत् किमपि ऋच्छयते यस्यां सा यदृच्छा। खादत मोदत इत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा क्रिया=खादतमोदता इत्यादि। तदेव=तन्मात्रम्, पुत्रेण तुल्यः पुत्रनिभः में नित्य समास है। यहाँ तक व्यधिकरण तत्पुरुष का विवेचन किया गया है।

(ख) समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय समास [The Appositional compounds]

"तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः" (पा० सू०) समान (तुल्य) अधिकरण (अभिधेय = वाच्यार्थ) वाले शब्द जो एक ही व्यक्ति या वस्तु का बोध कराने के लिये प्रयुक्त होते हैं वे एक दूसरे के समानाधिकरण कहलाते हैं और उनसे बने तत्पुरुष समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय कहलाते हैं। इनमें समान विभक्ति तो रहती है और यथा सम्भव लिङ्ग और वचन में भी समानता रहती है।

(१) साधारण कर्मधारय [प्रथमान्त + प्रथमान्त]

(क) विशेषण पूर्वपदक [विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (पा० सू०)]

विशेषण सुबन्त पद विशेष्य सुबन्त पद के साथ बहुल (अनियत) रूप से समस्त होता है और उस समास का नाम कर्मधारय समास होता है। यथा—पीतं वस्त्रम् = पीतवस्त्रम् (पीला कपड़ा)। नीलम् कमलम् = नीलकमलम् (नीला कमल)। महान् देवः = महादेवः * इत्यादि। किन्तु कृष्णसर्पः' (गेहुमन साँप) यहाँ नित्य ही समास होता है और 'रामो जामदग्न्यः' यहाँ समास होता ही नहीं है।

† समानाधिकरण में 'पूर्व' तथा 'अपर' से अतिरिक्त दिग्वाचक शब्दों का और एक से अतिरिक्त संख्यावाचक विशेषण

---

* "आन्महतः समानाधिकरण जातीययोः" (पा० सू०) महत् शब्द के तकार के स्थान में आकार हो जाता है।

† "दिक् संख्ये संज्ञायाम्" (पा० सू०)

शब्दों का समास तभी होता है जब उसके द्वारा किसी संज्ञा का बोध होता है। जैसे—उत्तर कोशलः (अयोध्या)। सप्तर्षयः (मरीच्यादि सात मुनि) इसलिए 'उत्तरगृहे' और पञ्च आत्राणाम्' इत्यादि प्रयोग अशुद्ध हैं।

‡ किन्तु पूर्वसागरः, अपरपयोधिः; एकनाथः इत्यादि होते ही हैं।

(ख) विशेष्य पूर्वपदक [प्रथमान्त+प्रथमान्त]

* विशेष्यवाचक 'युवन्' शब्द का खलति, पलित, वलिन, जरती शब्दों के साथ तथा कुमार शब्द का श्रमणादि शब्दों के साथ समास होता है। इस समास में विशेष्य का ही पूर्व प्रयोग होता है। यथा—युवा खलतिः=युव खलतिः (खल्वाट युवक)। युवापलितः=युवपलितः (सिर के सफेद केश वाला युवक)। कुमारी श्रमणा=†कुमार श्रमणा (सन्यस्ता कुमारी) इत्यादि।

(ग) विशेषणोभय पदक [प्रथमान्त+प्रथमान्त]

‡ वर्णवाचक प्रथमान्त पदों का परस्पर कर्मधारय समास होता है। जैसे—नीलश्चासौ पीतश्च=नीलपीतः (कुछ नीला कुछ पीला)।

---

‡ पूर्वापर प्रथम चरम जघन्य समान मध्य मध्यम वीराश्च" "पूर्वकालैक सर्व जरत् पुराण नव केवलाः समानाधिकरणेन" (पा० सू०)

* "युवा खलति पलित वलिन जरतीभिः" "कुमार श्रमणादिभिः" (पा० सू०)

† "पुंवत् कर्मधारय जातीय देशीयेषु" (पा० सू०) से कर्मधारय में पुंवद्भाव हो जाता है।

‡ "वर्णोवर्णेन" (पा० सू०)

§ नञ् रहित क्त प्रत्ययान्त शब्दों का नञ् सहित क्त प्रत्ययान्त के साथ कर्मधारय होता है। यथा—कृतं च तद् अकृतं च =कृताकृतम् (कार्यम्)=[किया और वही फिर न किया हुआ अपूर्ण काम]। ऐसे ही पठितापठितम्, श्रुताश्रुतः इत्यादि।

पूर्वकालिक क्रिया बोधक क्त प्रत्यान्त शब्दों का उत्तरकालिक क्रिया बोधक अन्य क्त प्रत्यान्त शब्दों के साथ कर्मधारय होता है। यथा—पूर्वं स्नातः पश्चात् अनुलिप्तः=स्नातानुलिप्तः। ऐसे ही पीतोद्वान्तम्, दृष्टगृहीता, श्रुताभ्यस्तः इत्यादि।

(घ) विशेष्योभयपदक [प्रथमान्त+प्रथमान्त]

जहाँ दोनों विशेष्यों में एक विशेष्य का विशेषण वत् प्रयोग हो वहाँ यह कर्मधारय होता है। यथा—आम्रश्चासौ वृक्षश्च = आम्रवृक्षः; शिंशपापादपः; वायसौ च तौ दम्पती च =वायसदम्पती इत्यादि।

(२) उपमानतत्पुरुष [उपमानानि सामान्य वचनैः (पा॰सू॰)]

[उपमीयते अनेन इति उपमानम् (जिससे उपमा दी जाती है वह *उपमान* कहलाता है)। उपमीयते यः स उपमेयः (जिसको किसी की उपमा दी जाती है वह *उपमेय* या *उपमित* कहलाता है)। उपमान और उपमेय दोनों में समान रूप से रहनेवाला गुण सामान्य वा साधारण धर्म कहलाता है। जैसे—घन इव श्यामः कृष्णः' इसमें घन उपमान, कृष्ण उपमेय और श्यामता सामान्य धर्म है।] उपमानवाचक सुबन्त साधारण धर्मवाचक

---

§ "क्तेन नञ् विशिष्टेनानञ्" (पा॰ सू॰)

सुबन्त के साथ समस्त होते हैं और उस समास का नाम उपमान तत्पुरुष होता है। इसमें उपमान का ही पूर्व प्रयोग होता है। जैसे—घन इव श्यामः = घनश्यामः (मेघ सा काला)। विद्युदिव चञ्चला = विद्युच्चञ्चला (बिजली सी चञ्चल) इत्यादि ।

(३) उपमित तत्पुरुष [उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्या प्रयोगे (पा० सू०)]

उपमित या उपमेय वाचक शब्द व्याघ्रादि उपमान वाचक शब्दों के साथ समस्त होते हैं। यदि सामान्य धर्म का प्रयोग नहीं रहता है और उस समास का नाम उपमित तत्पुरुष होता है। इसमें उपमित का ही पूर्व प्रयोग होता है। जैसे—पुरुषः व्याघ्रः इव = पुरुषः व्याघ्रः (श्रेष्ठ पुरुष)। नरः सिंह इव = नरसिंहः। मुखं कमलमिव = मुखकमलम्। मुखचन्द्रः इत्यादि। सामान्य धर्म के प्रयोग रहने पर पुरुषो व्याघ्रः इव शूरः। यहाँ समास नहीं होता है।

(४) मयूरव्यंसकादि समास [मयूर व्यंसकादयश्च पा० सू०)]

(क) रूपक समास, या रूपक कर्मधारय

जहाँ एक वस्तु या व्यक्ति दूसरी वस्तु या व्यक्ति मान लिया जाता है वहाँ दोनों के बोधक प्रथमान्त शब्दों का समास होता है और वह समास रूपक समास कहलाता है। जैसे—पुरुष एव व्याघ्रः = पुरुष व्याघ्रः (पुरुष रूपी बाघ)। मुखमेव चन्द्रः = मुखचन्द्रः (मुख रूपी चन्द्रमा)। राम एव नारायणः = रामनारायणः। भाष्यम् एव अब्धिः = भाष्याब्धिः इत्यादि।

नोटः—'रूपक समास' और 'उपमित समास' से बने शब्दों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता, अन्तर होता है केवल दोनों के लौकिक विग्रह और अर्थ में। रूपक समास में उत्तर पदार्थ प्रधान रहता है और उपमित समास में पूर्वपदार्थ। इसलिए यदि वाक्य में समस्त पद से अन्वित दूसरे पद का अर्थ उस सामासिक महापद के उत्तर पदार्थ से सम्बन्ध रखता हो तो 'रूपक समास' और पूर्व पदार्थ से रखता हो तो 'उपमित समास' और उभय पदार्थ से रखता हो तो दोनों समास समझने चाहिए। जैसे—'मुखचन्द्रः उदितः रूपक समास। मुखचन्द्रस्य चुम्बनम्' उपमित समास। 'मुखचन्द्रंपश्य' रूपक वा उपमित समास।

(ख) साधारण [अनित्य और नित्य समास]

मयूरो व्यंसकः=मयूर व्यंसकः आदि अनित्य समास हैं। कुछ शब्द ऐसे बनते हैं मयूरव्यंसकादि से जिन में उत्तर पद समास में ही प्रयुक्त होता है लौकिक विग्रह में नहीं अतः ये अस्व पद विग्रह नित्यसमास कहलाते हैं। जैसे—अन्यः ग्रामः=ग्रामान्तरम्। अन्यः राजा=राजान्तरम्। सर्वेप्राणिनः=प्राणिमात्रमित्यादि।

(५) मध्यम पदलोपी तत्पुरुष ['शाक पार्थिवादीनां सिद्धये उत्तर पदलोपस्योपसंख्यानम्' . वा०]

जब समस्त पूर्व पदके साथ असमस्त पद का कर्मधारय समास होता है तब 'शाकपार्थिवादि' गण वाले शब्द के मध्यवर्ती पद का लोप हो जाता है और समास मध्यमपदलोपी कहलाता है। जैसे—[शाकम् प्रियंयस्यसः=शाकप्रियः (बहुव्रीहि)] शाकप्रियः पार्थिवः=शाकपार्थिवः (वह राजा जिसे तरकारी

प्रिय है)। [देवस्यपूजकः] देवपूजकः ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः। चतुरधिकाः दश = चतुर्दश इत्यादि।

(६ प्रादितत्पुरुष ["कुगति प्रादयः" 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया]

प्रादि अव्ययों का समास प्रथमान्त पदों के साथ गताद्यर्थ में या उससे भिन्न अर्थ में होता है और उस समास का नाम प्रादि कर्मधारय होता है। यथा—प्रगतः आचार्यः = प्राचार्यः (प्रधानाचार्य)। प्रकृष्टोभाव = प्रभावः, अनुगतो भावः = अनुभावः। प्रगतः पितामहः = प्रपितामहः। शोभनः पुरुष = सुपुरुषः। दुष्टोजनः = दुर्जनः इत्यादि।

(७) नञ्तत्पुरुष ['नञ्' (पा० सू०) नञ् + प्रथमान्त]

'नञ्' अव्यय का सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास होता है। 'नञ् में नकार का लोप हो जाता है। यदि उत्तरपद अजादि रहता है तो नुट् (न्) का आगम होकर 'अन्' बन जाता है ※। जैसे न हिंसा = अहिंसा। न अश्वः = अनश्वः। न राजा = अराजा †। न सखा = असखा न पन्थाः = अपथम्—अपन्था ‡ किन्तु नस्त्री पुमान् = नपुंसकम्। न क्षत्रम = नक्षत्रम् इत्यादि में न लोप नहीं होता है।

※ "नलोपोनञः" "तस्मान्नुडचि" (पा० सू०)

† "नञस्तत्पुरुषात्" नञ् से परे समासान्त नहीं होता है।

‡ किन्तु नञ् से परे भी पथिन् में विकल्पसे समासान्त होता है। "पथोविभाषा" (पा० सू०)

(८) उपपदतत्पुरुष [प्रथमान्त + असुबन्त कृदन्त]

उत्तानः शेते = उत्तानशयः। उत्तानाशेते = उत्तानशया। पन्नं-गच्छति इति पन्नगः [पन्न सु ग (गम्+ड)]। ध्वाङ्क्ष इव-रौति = ध्वाङ्क्षरावी [ध्वाङ्क्ष सु-राविन् (रु+णिनि)] इत्यादि।

(९) द्विगुसमास ["तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेच" संख्या पूर्वो द्विगुः]

(क) तद्धितार्थ के विषय में, (ख) उत्तर पदके परे और (ग) समाहार वाच्य रहने पर जो संख्या वाचक शब्द के साथ समास होता है उसे द्विगु समास कहते हैं। अतः इसके तीन भेद होते हैं।

(क) तद्धितार्थ द्विगु [होनेवाले तद्धितप्रत्ययार्थ के विषय में] जहाँ भविष्य में तद्धित प्रत्यय करना रहता है उस प्रत्यय के अर्थ में संख्या वाचक विशेषण पदका किसी भी विशेष्य पदके साथ समास कर दिया जाता है और उस समास का नाम होता है 'तद्धितार्थ द्विगु'। यथा—द्वयोः मात्रोः अपत्यं पुमान् = द्वैमातुरः (गणेश) [द्विओस्-मातृ ओस् = द्विमातृ + अण्]।

षण्णां मातृणामपत्यं पुमान् = षाण्मातुरः (कार्तिकेय)।

(ख) उत्तरपद द्विगु [उत्तर पद के परे होनेवाला द्विगु] तीन पदों के समास (बहुव्रीहि वा तत्पुरुष) में उसके उत्तर पद के पूर्व दोनों पदों में प्रथम संख्या वाचक विशेषण हो तो उसका मध्यवर्ती विशेष्य पद के साथ समास हो जाता है जिसका

नाम 'उत्तर पद द्विगु' होता है। यथा—पञ्चगावः धनं यस्यसः= पञ्चगवधनः [पञ्चन् अस्-गो अस्-धन स् (द्विगुगर्भ बहुव्रीहि)] 'पञ्चगव' में तत्पुरुष होने के कारण "गोरतद्धितलुकि" (पा० सू०) से टच् (अ) होगया है। अतः गो+अ=गव हो गया है। द्वे अह्नी जातस्य यस्यसः=द्व्यह्न जातः [द्वि औ—अहन् औ-जात-अस् (द्विगुगर्भ तत्पुरुष)]। 'द्व्यह्न' में तत्पुरुष होने ही से "अह्नोऽह्न एतेभ्यः" (पा० सू०) से 'अहन्' के स्थान में 'अह्न' आदेश हो गया है।

(ग) समाहार द्विगु [समूहार्थ वाच्य रहने पर होनेवाला द्विगु] समास से समूह अर्थ प्रगट करने के लिए संख्या वाचक विशेषण पदका किसी भी विशेष्य पद के साथ समास होता है और उसको समाहार द्विगु' कहते हैं।

* समाहार द्विगु में साधारणतः नपुंसक और एकवचन रहता है। जैसे—पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चगवम् दशानां नावाम् समाहारः=दशनावम् †। किन्तु

‡ (क) अकारान्त उत्तर पद से बना समाहार द्विगु साधारणतः स्त्रीलिंग होता है। यथा—पञ्चानां मूलानां समाहारः= पञ्चमूली। त्रयाणां लोकानां समाहारः=त्रिलोकी। सप्तशती, अष्टाध्यायी इत्यादि।

---

* "स नपुंसकम्" "द्विगु रेकवचनम्" (पा० सू०)

† "नावो द्विगोः" (पा० सू०) नौ शब्दान्त द्विगुसे टच् होता है।

‡ 'अकारान्तोत्तर पदो द्विगुः स्त्रिया मिष्टः' (वा०)

(ख) ❀ पात्र, भुवन, युग आदि कतिपय शब्द उत्तर पद में रहने पर समाहार द्विगु नपुंसक ही रहता है। यथा—पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम, चतुर्युगम, सप्तदिनम्, त्रिपथम्।

(ग) † 'आप्' प्रत्यान्त उत्तर पद से बना समाहार द्विगु विकल्प से स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक दोनों होता है। यथा—पञ्चखट्वी—पञ्चखट्वम्। पञ्चाजी—पञ्चाजम्। तत्पुरुष समास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य विषय † 'राजन्—अहन्—सखि' शब्दान्त तत्पुरुष के अन्त में समासान्त टच् (अ) प्रत्यय लगता है। यथा—देवानां राजा = देवराजः। महाँश्चासौ राजा = महाराजः। वसन्तस्य अहः = वसन्ताहः। इन्द्रस्य सखा = इन्द्रसखः। राजानमतिक्रान्तः = अतिराजः। सखायमतिक्रान्तः = अतिसखः। किन्तु †† शोभनोराजा सुराजा। शोभनः सखा = सुसखा। अतिशयितः राजा = अतिराजा। अति शयितः सखा = अतिसखा। कुत्सितःपुरुषः = कुपुरुषः। कुत्सितोराजा किंराजा। ऐसेही किंसखा, किंगौः "किमःक्षेपे" (पा० सू०) से समासान्त का निषेध हो जाता है। किन्तु कश्चासौ राजा = किंराजः। कुत्सित अश्वः = कदश्वः। कदन्नम्। अजादि उत्तर पद हो तो 'कु' का 'कत्' आदेश होता है। "कोः कत् तत्पुरुषेऽचि"।

❀ "पात्राद्यन्तस्य न' [वा०] † 'आबन्तो वा" [वा०]

† "राजाहः सखिभ्यष्टच्" [पा० सू०]

†† "नपूजनात्" [पा० सू०] "स्वतिभ्यामेव" [वा०]

* अहन्, सर्व, अवयव वाचक, संख्यात, पुण्य, संख्यावाचक तथा अव्यय इतने शब्दों से परे 'रात्रि' शब्दान्त तत्पुरुष के अन्तमें 'अच्' होता है। यथा—अहश्च रात्रिश्च=अहोरात्रः † (यहाँ द्वन्द्व समास में ही अच् हुआ है)। सर्वा रात्रिः=सर्वरात्रः। पुण्यारात्रिः=पुण्यरात्रः। एकरात्रः। द्वयोः रात्र्योः समाहारः= द्विरात्रम् †† । अतिक्रान्तः रात्रिमति रात्रः इत्यादि।

'ऋच्—पुर्-अप्-धुर्—पथिन्' शब्दान्त समासमात्र के अन्त में 'अ' प्रत्यय लगता है। "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" (पा० सू०) यथा—ऋचः अर्धम्=अर्धर्चः—अर्धर्चम्। हरेः पूः=हरिपुरम्। सतां पन्थाः सत्पथः इत्यादि।

तत्पुरुष समास सम्बन्धी पूर्वोक्त विचारों पर दृष्टिपात करने से निम्नलिखित विशेषताएँ प्रगट होती हैं।

(१) यह समास प्रायः दो पदों का होता है।

(२) इस समास का लिङ्ग साधारणतः उत्तर पदके अनुसार होता है। "परवल्लिङ्गं द्वन्द्व तत्पुरुषयोः" (पा० सू०)

(३) इस समास में प्रायः उत्तर पद का अर्थ प्रधान रहता है। 'उत्तर पदार्थ प्रधानस्तत्पुरुषः'।

(४) वाक्य में तत्पुरुष का प्रयोग प्रायः उत्तर पद के स्वरुपानुसार होता है।

इतितत्पुरुष समास प्रकरणम्

---

* "अहः सर्वैकदेश संख्यात पुण्याच्च रात्रेः (पा० सू०)

† "रात्राह्नाहाः पुंसि" (पा० सू०) रात्र अह्न और अह शब्दान्त तत्पुरुष पुंलिङ्ग होते हैं।

†† 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' (पा०)

[४] बहुव्रीहि समास Attributive Compounds

"शेषो बहुव्रीहिः" (पा० सू०)

उक्त से अन्य शेष कहलाता है। "द्वितीयाश्रितातीत" "तृतीया तत्कृतार्थेन" इत्यादि सूत्रों से द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी षष्ठी और सप्तमी विभक्तियों में तत्तत् नाम लेकर तत्पुरुष समास विहित है। इन उक्त समासों से भिन्न हुआ प्रथमान्त पदों के साथ समास जो कहीं भी 'प्रथमा' यह नाम लेकर विहित नहीं है। अतः अनेक प्रथमान्त पदों का अन्य पदार्थ (समस्यमान पदातिरिक्त पदके अर्थ) में विद्यमान रहने पर जो समास होता है उसे *बहुव्रीहि समास* कहते हैं। किन्तु इससे अतिरिक्त स्थलों में भी बहुव्रीहि होता है। बहुव्रीहि समास के मुख्यतः तीन भेद हो सकते हैं—

(क) अन्यपदार्थक [जहाँ अन्य पदार्थ प्रधान रहता है]

(ख) पूर्वपदार्थक [जहाँ पूर्वपद का अर्थ प्रधान रहता है]

(ग) अन्यतर पदार्थक जाँ दोनों पदों में किसी एक का अर्थ प्रधान रहता है]

(क) अन्यपदार्थक बहुव्रीहि के निम्नलिखित भेद हो सकते हैं—

(१) समानाधि करण बहुव्रीहि [(क) साधारण। (ख) मध्यमपद लोपो]

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि [(क) साधारण। (ख) दिगन्तराल-लक्षण। (ग) कर्मव्यतिहार-लक्षण।

(ख) पूर्व पदार्थक बहुव्रीहि के निम्नलिखि भेद हैं—

(१) 'सह' पूर्वपदक बहुव्रीहि। (२) संख्योत्तर पदक बहुव्रीहि।

(क) अन्यपदार्थक बहुव्रीहि "अनेकमन्यपदार्थे" (पा० सू०) समस्यमान पदों से बहिर्भूत किसी अप्रथमान्त पद के अर्थ में विद्यमान अनेक प्रथमान्त पदों का समास होता है और उस समास का नाम बहुव्रीहि है। इसमें

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि (क) साधारण।

(क) प्राप्तं धनं यम् सः = प्राप्तधनः पुरुषः [प्राप्त स् धनस् = प्राप्तधन]।

(ख) कृतं कार्यं येन सः = कृतकार्यः पुरुषः [कृतस्–कार्यस् = कृतकार्य]।

(ग) दत्तं धनं यस्मै सः = दत्तधनः जनः [दत्तस्–धनस् = दत्तधन]।

(घ) पतितं पत्रं यस्मात् सः = पतितपत्रस्तरुः [पतितस्-पत्रस् = पतितपत्र]।

(ङ) पीतम् अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः हरिः [पीतस्-अम्बरस् = पीताम्बर]।

(च) वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः = वीरपुरुषकः ग्रामः [वीर अस्–पुरुषअस् = वीरपुरुष]।

(ख) मध्यम पदलोपी [जहाँ मध्य के पद का लोप हो जाता है]

(१) ※ प्रादि (उपसर्ग) पूर्वक धातुज विशेषण प्रथमान्त पदों का किसी भी प्रथमान्त पदों के साथ बहुव्रीहि समास होता है और धातुज शब्दो का विकल्प से लोप होता है। यथा प्रपतितं पर्णं यस्मात् स प्रपर्णः या, प्रपतितपर्णः वृक्षः। उन्नतं मस्तकं यस्याः सा = उन्मस्तका या, उन्नतमस्तका स्त्री।

(२) † 'नञ्' पूर्वक विद्यमानार्थक प्रथमान्त विशेषण शब्दों के साथ किसी भी प्रथमान्त पद्का बहुव्रीहि होता है और विद्यमानार्थक शब्दों का विकल्प से लोप होता है। यथा—अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः = अपुत्रः वा अविद्यमानपुत्रः।

※ समानाधिकरण बहुव्रीहि में स्त्रीलिंग शब्द के पूर्ववर्ती अनियत स्त्रीलिंग विशेषण शब्द का पुंवत् रूप हो जाता है। यथा-सुन्दरीभार्या यस्यसः = सुन्दर भार्यः। युवतिः पत्नी यस्यसः = युवपत्नीकः। महती शोभायस्यसः = महाशोभः इत्यादि।

किन्तु 'ऊङ' प्रत्ययान्त, तद्धित सम्बन्धी तथा 'वु' सम्बन्धी ककारोपध, पूरणवाचक, स्वाङ्गवाचक ईकारान्त; तथा जातिवाचक स्त्रीलिंग शब्द का और † प्रियादि शब्द के पूर्ववर्ती स्त्रीलिङ्ग शब्द

※ 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तर पदलोपः' (वा०)

† 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तर पदलोपः' (वा०)

※ "स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु" (पा० सू०)

† प्रियादि शब्द—प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, भक्तिः सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, समा, चपला, दुहिता, वामा, अबला, तनया।

का पुंवद्भाव नहीं होता है। यथा—वामोरूभार्यः। रसिकाभार्यः पाचिकाभार्यः किन्तु पाका (बाला) भार्या यस्यसः=पाकभार्याः, यहाँ 'तद्धित' तथा 'वु' सम्बन्धी ककार नहीं होने के कारण पुंवद्-भाव होही जाता है। पञ्चमीभार्यः। सुकेशी भार्यः। शूद्राभार्यः। तथा सुन्दरी प्रियः सुशीलाकान्तः इत्यादि।

बहुव्रीहि समास में नञ् दुः और सु के बाद प्रजा तथा मेधा शब्दों में समासान्त असिच् (अस्) होता है। जैसे—अविद्य-माना प्रजायस्य सः=अप्रजाः। ऐसे ही दुष्प्रजाः, सुप्रजाः। अमेधाः दुर्मेधाः सुमेधाः।

बहुव्रीहि के उत्तर पद भूत धर्म शब्द में 'अनिच्' प्रत्यय होने से धर्मन्' हो जाता है। यथा—सुधर्मा; सुधर्माणौ प्रियधर्मा इत्यादि।

बहुव्रोहि के उत्तर पद भूत धनुष् शब्द में 'अनङ्' होने से शार्ङ्गधन्वा पुष्पधन्वा आदि; 'जाया' शब्द में निङ्' होने से युवतिर्जाया यस्य स 'युवजानिः' राधाजानिः, सीताजानिः इत्यादि; स्वाङ्गवाचक अक्षि और सक्थि; शब्दों में षच् (अ) होने से 'कमलम् इव अक्षि यस्य सः=कमलाक्षः', स्त्रीविशेष्य में कमलाक्षी दीर्घे सक्थिनी यस्य सः=दीर्घसक्थः इत्यादि होते हैं।

बहुव्रीहि के उत्तरपद में समासान्त कप् (क) विकल्प से होता है, किन्तु यदि उत्तरपद में ऋकारान्त तथा नदी संज्ञक (दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त) शब्द हो या उरस् सर्पिस् आदि शब्द हो तो 'क' नित्य ही होता है। यथा—बहुमालाकः बहु-

मालकः—बहुमालः। किन्तु अमातृको बालः, बहु नदी को देशः, नववधूको युवा, व्यूढम् उरः यस्य सः=व्यूढोरस्कः इत्यादि में नित्यही 'क' होता है।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि

(क) साधारण [प्रथमान्त + अप्रथमान्त]

❀ बहुव्रीहि में सप्तम्यन्त और विशेषण का पूर्व प्रयोग होता है। यहाँ सप्तम्यन्तपद का पूर्व प्रयोग विधान सूचित करता है कि 'व्यधिकरणानामपि बहुव्रीहिः' अर्थात् व्यधिकरण पदों का भी बहुव्रीहि होता है। यथा—दण्डः पाणौ यस्य सः=दण्डपाणिः कण्ठेकालोयस्यसः=कण्ठेकालः। चन्द्रःशेखरेयस्यसः=चन्द्रशेखरः। मृगस्येव नयने यस्याः सा=मृगनयना [हरिण की सी आँखोंवाली † ।

(ख) दिगन्तराललक्षण [दिङ्नामान्यन्तराले पा० सू०]

[षष्ठ्यन्त + षष्ठ्यन्त]

यदि दो दिशाओं का अन्तराल (मध्यवर्ती कोण) बतलाना रहे तो उन दोनों दिशावाचाक संज्ञा शब्दों में बहुव्रीहि होता

❀ "सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ" (पा० सू०)

† इन उपर्युक्त उदाहरणों मे दूसरे प्रकार से भी समास बतलाये जाते हैं। 'सप्तम्युपमान पूर्व पदस्योत्तर पदलोपश्च' सप्तम्यन्त तथा उपमान पूर्वपदवाले समस्त पदों का दूसरे पदों के साथ समास होता है और पूर्व समस्त पदों के उत्तर पद का लोप हो जाता है। जैसे—कण्ठेस्थः कालोयस्यसः कण्ठेकालः। मृगनयने इवनयने यस्याः=सा मृगनयना इत्यादि।

है। जैसे—दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशः अन्तरालंविदिक्= दक्षिणपूर्वा (आग्नेय कोण)। पूर्वोत्तरा। उत्तरपूर्वा इत्यादि।

(ग) कर्मव्यतिहार (क्रिया विनिमय) लक्षण। [तत्रतेनेद-मिति सरूपे पा० सू]

शरीर के किसी अंग को पकड़कर परस्पर युद्ध हुआ—ऐसे अर्थ को प्रगट करने के लिए उस अङ्गवाचक समानरूप वाले दो सप्तम्यन्त पदों का, अथवा लाठी घूसे आदि की मार से परस्पर युद्ध हुआ - ऐसा अर्थ प्रगट करने के लिये उस सामग्री के बोधक समान रूपवाले तृतीयान्त दो पदों का समास होता है और उसे कर्मव्यतिहार लक्षण बहुव्रीहि कहते हैं।

नोट—इस समास के अन्त में (तद्धित) 'इच् (इ)' प्रत्यय लगता है। इस समास के पूर्व पद का अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है। यह अव्ययी भाव भी कहलाता है। समस्त पद अव्यय हो जाता है। जैसे—केशेषु केशेषु (शत्रुम्) गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्=केशाकेशि (झोंटा झोंटी लड़ाई)। कर्णाकर्णि। बाहूबाहवि। दण्डैः दण्डैश्च (शत्रुम्) प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्=दण्डादण्डि (लाठा लाठी लड़ाई)। मुष्टीमुष्टि इत्यादि।

[ख] पूर्वपदार्थक बहुव्रीहि

(१) 'सह' पूर्वपदक बहुव्रीहि [तेनसहेति तुल्ययोगे पा० सू०]

तृतीयान्त पद के साथ 'सह' अव्यय का बहुव्रीहि समास होता है। यहाँ 'तुल्ययोग' [अर्थात् एक क्रिया ही में अन्वित होना] आवश्यक नहीं है। यथा—पुत्रेण सह=सपुत्रः सहपुत्रो वा आगतः पिता। सशिष्यः-सहशिष्यः। सकर्मकः। सलोमकः। सशिखः।

नोट—आशीर्वाद वाक्य न हो तो इस समास में 'सह' शब्द का विकल्प से 'स' होता है। किन्तु आशीर्वाद में "स्वस्ति राज्ञे सह पुत्राय सहामात्याय"। परन्तु गो-वत्स हल शब्दों के साथ 'स' आदेश आशीर्वाद अर्थ में भी होता है। जैसे—"सगवे सवत्साय-सहलाय राज्ञे स्वस्ति"।

(२) संख्योत्तरपद [संख्याऽव्ययासन्नादूराधिक संख्याः संख्येये पा० सू०]

संख्येय पदार्थ बोधक संख्यावाचक पद के साथ अव्यय पद आसन्न-अदूर अधिक तथा संख्यावाचक शब्द का बहुव्रीहि समास होता है।

नोट—इस समास के अन्त मे समासान्त 'डच (अ)' प्रत्यय लगता है और 'टि' का लोप हो जाता है। किन्तु विंशति' शब्द में 'ति' का ही लोप हो जाता है। यथा—दशानां समीपे ये सन्ति = उपदशाः (नौ या ग्यारह)। विंशतेः आसन्नाः = आसन्नविंशाः (बीस के करीब)। त्रिंशतः अदूराः = अदूरत्रिंशाः (तीस के निकट)। चत्वारिंशतः अधिकाः = अधिकचत्वारिंशाः = (चालीस से ऊपर) द्विःआवृत्तं शतम् = द्विशतम् (दोसौ)।

[ग] अन्यतर पदार्थक बहुव्रीहि

दो संख्याओं में से किसी एक संख्या का बोध कराने के लिए दो संख्या वाचक पदों का बहुव्रीहि होता है। यथा—एको वा द्वौवा = एकद्वौ (एक या दो)। द्वौ वा त्रयोवा = द्वित्राः। त्रयो वा चत्वारो वा = त्रिचतुराः। यहाँ अच् हुआ है। चत्वारि वा पञ्च वा = चतुः पञ्चानि इत्यादि।

पूर्वोक्त सभी विवेचनों से साधारण बहुव्रीहि समास की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रगट होती हैं—

(१) यह दो या दो से अधिक पदों का समास होता है।

(२) इसका लौकिक विग्रह पूर्ण वाक्यात्मक होता है:

(३) इस में विशेषण शब्द पूर्व और विशेष्य शब्द पीछे आता है।

(४) इस समास से बने शब्द विशेषण होते है और उनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होता है।

(५) अन्य पदका अर्थ इस में प्रधान होता हैं।

इति बहुव्रीहि समास प्रकरणम्

५ द्वन्द्व समास [The Copulative Gompounds]

"चार्थेद्वन्द्वः" (पा० सू०)

अनेक (दो या दोसे अधिक) सुबन्त जब 'च' के अर्थ में विद्यमान रहते हैं तब उनमें द्वन्द्व समास विकल्प से होता है। 'च' के चार अर्थ होते हैं 'समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः।'

(१) परस्पर निरपेक्षस्य अनेकस्य एकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। अर्थात् जहाँ उद्देश्यपद एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर विधेयपद से अन्वित होते वहाँ 'चार्थ' समुच्चय होता है और वहाँ एक ही 'च' का प्रयोग किया जाता है। यथा 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व। किन्तु समुच्चय में समास नहीं होता है।

(२) अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेऽन्वाचयः। अर्थात् जहाँ 'च' द्वारा अन्वित एक पदार्थ प्रधान और दूसरा गौण रहता है वहाँ चार्थ

'अन्वाचय' रहता है और वहाँ भी एक ही च का प्रयोग किया जाता है। जैसे —'भिक्षामट गाञ्च आनय'। अन्वाचय में भी समास नहीं होता है।

(३) मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। अर्थात् जहाँ उद्देश्य पद परस्पर सम्बद्ध होकर विधेय पद से अन्वित होते वहाँ 'च' का अर्थ *इतरेतरयोग* होता है। यथा—रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ तौ भजस्व। इस में समास होता है।

(४) समूहः समाहारः। अर्थात् जहाँ समूह अर्थ प्रकट होता है वहाँ चार्थ *समाहार* है। जैसे—हस्तौ च पादौ च इत्येतेषां समाहारः हस्तपादम्। इस में भी द्वन्द्व समास होता है।

इन पूर्वोक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि द्वन्द्व समास के दो भेद हैं– (क) इतरेतर द्वन्द्व और (ख) समाहार द्वन्द्व।

(क) इतरेतरयोग द्वन्द्व में यदि दो पदों का समास होगा तो समस्त पद से द्विवचन और दो से अधिक पदों का समास होने पर बहुवचन होता है। उत्तर पद का जो लिङ्ग रहता है वही समस्त पद का लिङ्ग होता है। यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च इत्येतयोरितरेतर योग द्वन्द्वः=रामलक्ष्मणौ। रामलक्ष्मणौ च भरतशत्रुघ्नौ च इत्येतेषामितरेतर योगः=रामलक्ष्मणभरत-शत्रुघ्नाः। पुत्रश्च कन्या च इति पुत्रकन्ये। धनञ्च जनश्च यौवनञ्च इति धन जन यौवनानि इत्यादि।

(ख) समाहार में समास करने पर समस्त पद से एकवचन और नपुंसक ही होता है। यथा—संज्ञा च परिभाषाच इत्यनयोः समाहारः संज्ञापरिभाषम्। दधि च दुग्धञ्च घृतञ्च इत्येतेषां समाहारः दधिदुग्ध घृतानि।

कुछ स्थलों को छोड़कर साधारणतः सभी जगहों में इतरेतर-योग समाहार द्वन्द्व होते हैं।

निम्नलिखित शब्दों का इतरेतर योग द्वन्द्व ही होता है—दधि च पयश्च = दधिपयसी। मधु च सर्पिश्च = मधुसर्पिषी। वाक् च मनश्च = वाङ्मनसे। ऋक् च साम च = ऋकसामे इत्यादि।

निम्नलिखित शब्दों का समाहार द्वन्द्व ही होता है।

(१) * प्राणी के अङ्गवाचक शब्दों का प्राण्यङ्गवाचक शब्दों के साथ; जैसे—पाणी च पादौ च = पाणिपादम्।

(२) तूर्याङ्ग (वादक = वाजा बजानेवाला) वाचक शब्दों का; जैसे—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिक पाणविकम्।

(३) सेनाङ्गवाचक शब्दों का; जैसे—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च = रथिकाश्वारोहम्।

(४) द्रव्यजातीय शब्दों का; यथा—आम्रपनसम्। अपूपपायसम्।

(५) क्षुद्र जन्तुओं के (नेवले से छोटे जितने हैं उनके); यथा—यूकालिक्षम्।

(६) शाश्वतिक विरोधवाले प्राणियों के; यथा—अहिश्च नकुलश्च = अहिनकुलम्। गोव्याघ्रम्।

(७) अबहिष्कृत शूद्रों का; यथा—तक्षायस्कारम्।

† समाहार द्वन्द्व में उत्तर पद यदि चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त तथा हकारान्त हो तो टच् (अ) होता है। जैसे—वाक् च त्वक् च = वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम् समीद्दृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्

---

* "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य सेनाङ्गानाम्" (पा० सू०)

† "द्वन्द्वाच्चुदपहान्तात् समाहारे" (पा० सू०)

विद्यासम्बन्ध वा जन्मसम्बन्ध के बोधक ऋकारान्त शब्दों के द्वन्द्व में उत्तर पद से पूर्व का पद [आनङ् होने से] आकारान्त [हो जाता है। यथा—विद्या सम्बन्ध में होता च पोता च = होतापोतारौ। अध्येतारश्च अध्यापयितारश्च = अध्येताध्यापयितारः।]

जन्मसम्बन्ध में—पितापुत्रौ। मातापुत्रौ और मातरपितरौ भी।

द्वन्द्वसमास में पद के पूर्व प्रयोग के सम्बन्ध में साधारणतः निम्नलिखित व्यवस्था है :—

(क) 'घि' संज्ञक (सखिभिन्न ह्रस्व इकारान्त उकारान्त) शब्द पूर्व में। यथा—हरिहरौ। गुरुसखायौ।

(ख) अजादि ह्रस्व अकारान्त शब्द पूर्व में। यथा—ईशकृष्णौ। इन्द्राग्नी।

(ग) न्यूनतर 'स्वर' वर्णवाला शब्द पूर्व में। यथा—शिवकेशवौ।

(घ) लघु 'स्वर' वाला शब्द पूर्व में। यथा—कुशकाशम्।

(ङ) अभ्यर्हित (पूज्य) शब्द पूर्व में। यथा—मुनिमृगौ। राधाकृष्णौ।

(च) अग्रज भ्रातृ-बोधक शब्द पूर्व में। यथा—रामलक्ष्मणौ।

(छ) वर्ण बोधक शब्द क्रमानुसार। यथा—ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य शूद्राः।

(ज) समानाक्षर ऋतुवाचक तथा नक्षत्रवाचक शब्द क्रमानुसार। यथा—हेमन्त-शिशिर-वसन्ताः॥ कृत्तिकारोहिण्यौ।

नोट :—धर्मादि शब्दों में पूर्व प्रयोग का नियम नहीं है । अतः धर्मार्थौ—अर्थ धर्मौ । आद्यन्तौ—अन्तादी इत्यादि ।

पूर्वोक्त विचारों से इतरेतर योग द्वन्द्व समास की निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं—

(१) यह समास अनेक (दो या दो से अधिक) पदों का होता है ।

(२) इसके विग्रह में प्रत्येक पद के साथ 'च' का प्रयोग होता है ।

(३) इसका लिङ्ग उत्तर पद के अनुसार होता है ।

(४) दो एक वचनान्त शब्दों के समास में समस्त पद से द्विवचन अन्यथा बहुवचन होता है ।

(५) सभी पदों के अर्थ प्रधान रहते हैं ।

प्रथम तथा द्वितीय विशेषताओं के अतिरिक्त

(१) समाहार द्वन्द्व में लिङ्ग सर्वदा नपुंसक और वचन एकवचन ही होता है ।

(२) इसमें समूह का अर्थ प्रधान रूप मे प्रगट होता है ।

पूर्वोक्त समास के भेदों के अतिरिक्त कुछ लोग समस्यमान पदों के स्वरूप के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से समास का छः भेद बतलाते हैं ।

(१) सुबन्त के सुबन्त के साथ ; यथा—राजपुरुषः आदि ।

(२) सुबन्त के तिङन्त के साथ ; यथा—पर्यभूषत् आदि ।

(३) सुबन्त के प्रातिपदिक के साथ ; यथा—कुम्भकारः आदि ।

(४) सुबन्त के धातु के साथ—या—कटप्रूः, अजस्रम् आदि।
(५) तिङन्त के तिङन्तके साथ;—यथा—पिबत खादता आदि।
(६) * तिङन्तके सुबन्तके साथ;—यथा-कृन्तविचक्षण आदि।

इति द्वन्द्व समास प्रकरणम्

एकशेषवृत्ति [पाँचवृत्तियों में दूसरी वृत्ति]

कतिपय शब्दों का साथ उच्चारण करने पर द्वन्द्वसमास के बदले उनकी एकशेष वृत्ति होती है जिसके अनुसार उन में से एकही शब्द का प्रयोग में उच्चारण होता है और शब्द लुप्त हो जाते हैं; किन्तु प्रयोग में द्विवचन और बहुवचन की व्यवस्था लुप्त और शेष सब शब्दों के अनुसार होती है। एकशेष के कुछ नियमः—

† जिन शब्दों के रूप सब विभक्तियों में परस्पर समान होते हैं उन शब्दों का साथ उच्चारण करने पर एक शेष होता है। जैसे—रामश्च रामश्च इति रामौ। रामश्च रामश्च रामश्च इति रामाः।

* एक ही शब्द के स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनो रूप साथ-साथ उच्चरित हों तो पुलिंग शेष रह जाता है। यथा—हंसश्च हंसीच इति हंसौ। पुत्रश्च पुत्रीश्च इति पुत्रौ।

---

* सुपां सुपातिङानाम्ना धातुनाथ, तिङातिङा। सुबन्तेनेपि चज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः॥

† "सरूपाणामेक शेष एक विभक्तौ" (पा० सू०)

* "पुमान् स्त्रिया" † "भ्रातृ पुत्रौ स्वसृ दुहितृभ्याम्" (पा० सू०)

† स्वसृ और दुहितृ शब्दों के साथ उच्चरित क्रमशः भ्रातृ और पुत्र शब्द शेष रह जाते हैं। यथा -- भ्राताच स्वसाच भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिताच पुत्रौ।

‡ मातृ शब्द के साथ उच्चरित पितृशब्द और श्वश्रूशब्द के साथ उच्चरित श्वशुर शब्द विकल्प से शेष रह जाते हैं। यथा—माताच पिताच पितरौ–मातापितरौ। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ – श्वश्रूश्वशुरौ।

†† यदि कोई विशेषण शब्द भिन्न भिन्न विशेष्य के अनुसार नपुंसक और अन्य लिंग में भी साथ साथ प्रयुक्त हो तो उन में नपुंसक विशेषणशब्द शेष रहता है और उसमें यथा सम्भव द्विवचन या बहुवचन के अतिरिक्त विकल्पसे एकवचन का भी प्रयोग होता है। यथा—शुक्लःपटः शुक्लाशाटी शुक्लं वस्त्रं तदिदं शुक्लम्। तानि इमानि शुक्लानि।

❀ त्यदादि से भिन्न शब्दों के साथ साथ उच्चारित त्यदादि शब्द शेष रहता है। यथा—सच देवदत्तश्च तौ। माधवश्च भवाँश्च भवन्तौ। रामश्चत्वञ्च यूवाम्। कृष्णश्च अहञ्च आवाम्।

नोट– एक शेष करनेपर अनेक सुबन्त नहीं रहते अतः द्वन्द्व समास नहीं होता है। एक शेष समास नहीं है। यह एक स्वतन्त्र वृत्ति है। इसमें वचन की व्यवस्था लुप्त और शेष सब पदों के अनुसार होती है; किन्तु लिङ्ग शेष शब्द के अनुसार ही होता है।

इति एकशेष प्रकरणम्

---

‡ "पितामात्रा" "श्वशुरः श्वश्र्वा" (पा० सू०)

†† "नपुंसक मनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् [पा० सू०]

[८] अथ तद्धित प्रकरणम्

(३) तद्धितवृत्ति—

वृत्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए पूर्व में बतलाया गया है कि तद्धित भी एक वृत्ति है, क्योंकि इसमें भी अवयवार्थ से अतिरिक्त एक विशिष्ट समुदायार्थ प्रतीत होता है। यह तद्धित प्रत्यय प्रातिपदिक से होता है और तद्धितान्त शब्द पुनः प्रातिपदिक होकर सुबन्त होता है। ये तद्धित प्रत्यय अनेक तरह के हैं जो अनेक अर्थों में होते हैं। इन सबों का विवेचन तो यहाँ असम्भव है, केवल अति प्रसिद्ध प्रत्ययों में से कुछ का विवेचन यहाँ किया जायगा।

तद्धित प्रत्ययों में ञ्, ण्, क् आदि अनुबन्ध लगाये जाते हैं जिनसे प्रत्यय क्रमशः ञित् णित् कित् आदि कहलाते हैं। इन प्रत्ययों के परे प्रकृति के आदि अच् की वृद्धि हो जाती है। और और अनुबन्धों के इसी तरह और और प्रयोजन हैं।

[क] "तस्यापत्यम्" "अतइञ्" (पा० सू०)

साधारणतः 'तस्य अपत्यम्' (उसकी सन्तान) इस अर्थ में प्रातिपदिक से अण् (अ) प्रत्यय होता है। किन्तु प्रातिपदिक यदि ह्रस्व अकारान्त होतो इञ् (इ) प्रत्यय होता है। यथा—यदोरपत्यं पुमान् यादवः, स्त्री यादवी। रघोरपत्यं राघवः इत्यादि। किन्तु दशरथस्य अपत्यं दाशरथिः। व्यासस्य अपत्यं वैयासकिः। वरुडस्य अपत्यं वारुडकिः इत्यादि। परन्तु वसुदेवस्य अपत्यं वासुदेवः। दितेः अपत्यं दैत्यः। अदितेः अपत्यम् आदित्यः

इत्यादि। स्त्री प्रत्ययान्त शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् (ढ=एय) प्रत्यय होता है। जैसे—विनतायाः अपत्यं वैनतेयः। पार्वत्याः अपत्यं पार्वतेयः इत्यादि।

(ख) "तेन रक्तंरागात्" (पा सू०)

रंगवाचक शब्दों से 'तेनरक्तम्" (उससे रंगा हुआ) इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। माञ्जिष्टम् इत्यादि। किन्तु लाक्षाया रक्त पटः लाक्षिकः रौचनिकः। यहाँ ठक् (इक) प्रत्यय होता है। पीत से (कन्) पीतकम्। हरिद्रासे (अञ्) हारिद्रम्।

(ग) "नक्षत्रेण युक्तः कालः" (पा० सू)

नक्षत्र वाचक शब्दों से 'युक्तः कालः (नक्षत्र से युक्तकाल) इस अर्थ में अण् होता है। यथा—पुष्येणयुक्तम् पौषंदिनम्। पौषी रात्रिः। अश्विन्या युक्ता पूर्णिमा आश्विनी। कार्तिकी।

(घ) "सास्मिन् पौर्णमासीति" (पा० सू०)

'सा पौर्णमासी अस्मिन् अस्ति' (वह पूर्णिमा इस मास में है) इस अर्थ में अण् होता है। जैसे—पौषी पौर्णमासी अस्मिन् इति पौषोमासः। किन्तु आग्रहायणी से आग्रहायणिको मासः।

(ङ) "सास्यदेवता" (पा० सू०)

'सा देवता अस्य' (वह देवता इसका) इस अर्थ में अण् होता है। यथा—इन्द्रः देवता अस्य ऐन्द्रःमन्त्रः, ऐन्द्रं हविः इत्यादि।

(च) "तस्य समूहः" (पा० सू०)

समूह अर्थ में अण् होता है। यथा—काकानां समूहः काकम्, बाकम् इत्यादि। युवतीनां समूहः यौवनम्। किन्तु हस्तिनां समूहः हास्तिकम्। धेनूनां समूहः धैनुकम्। जनानां समूहः जनता। ग्रामता। बन्धुता।

(छ) "तदधीतेतद्वेद" (पा० सू०)

'उसे पढ़ता है' और 'उसे जानता है, इन अर्थों में अण् होता है। यथा—व्याकरणमधीते, वेदवा—वैयाकरणः। किन्तु न्यायम् नैयायिकः। वृत्तिं—वार्त्तिकः। लोकायतं—लौकायतिकः इत्यादि।

(ज) "तस्य निवासः" (पा० सू०)

'उसका निवास स्थान, इस अर्थ में अण् होता है। जैसे—शिबीनां निवासोदेशः शैवः। अङ्गानां निवासोजनपदः अङ्गाः वङ्गा कलिङ्गाः इत्यादि।

(झ) "शेषे" (पा० सू०)

अपत्यादि पूर्व अर्थों से भिन्न अर्थों में भी प्रातिपदिकों से अण् होता है। यथा—चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रवणेनगृह्यते श्रावणः शब्दः। अश्वैः उह्यते आश्वो रथः।

(ञ) "तत्र जातः" (ट) "तत्र भवः" (ठ) "ततश्च आगतः" (पा० सू०)

इन उपर्युक्त अर्थों में भी अण् प्रत्यय होता है। जैसे—मिथिलायां जातः मैथिलः (मिथिला में उत्पन्न)। पञ्चालेषु भवः पाञ्चालः। विदर्भादागतः वैदर्भः (विदर्भ वरार से आया हुआ)।

(ड) "तस्येदम्" (पा० सू०)

शत्रोः इदम्=शात्रवम्। शत्रोः अयं=शात्रवः। शत्रोः इयं शात्रवी। इन में अण् प्रत्यय हुआ है। किन्तु मम अयं=मामकः मामकीनः—मदीयः। आवयोः अस्माकं वा अयम्=आस्माकः आस्माकीनः-अस्मदीयः। तव अयं=तावकः-तावकीनः-त्वदीयः। युवयोः युष्माकंवा अयम्=यौष्माकः-यौष्माकीणः—युष्मदीयः। ऐसे ही स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक में।

(ढ) "तस्य विकारः" (पा० सू०)

'उससे बना हुआ' इस अर्थ में भी अण् होता है। यथा—गोधूमस्य विकारः=गौधूमः अपूपः। मृत्तिकायाः विकारः=मार्त्तिकः किन्तु गोर्विकारः=गव्यम्। पयस्यम्। यहाँ यत् होता है।

(ण) "तस्येश्वरः" (पा० सू०)

'उसका स्वामी' इस अर्थ में अण् होता है। यथा—सर्वभूमेः ईश्वरः सार्वभौमः (चक्रवर्तीराजा)। पृथिव्या ईश्वर पार्थिवः (राजा)।

(त) "तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः" (पा० सू०)

जिसके तुल्य क्रिया हो उसके बोधक शब्द से वति प्रत्यय होता है। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते। क्रिया की तुल्यता ही में वति प्रत्यय होता है। इसलिए पित्रा तुल्यः स्थूलः, यहाँ 'पितृवत्' नहीं होगा। "तत्रतस्येव" 'उसस्थान की तरह और उसकी तरह इन अर्थों में भी 'वत्' होता है। गृहे इव इति गृहवत् वने मुनयोवसन्ति। पितुरिव इति पितृवत् पुत्रस्य साहसम्। विधिमर्हति 'विधिवत्' पूज्यते। इस अर्थ में भो वत् होता है।

यद्, तद्, एतद्, इदम् किम् इन सर्वनामों से 'परिमाण' अर्थ में 'वत्' होता है। यथा—यत् परिमाण मस्य=यावान्। तावान्। एतावान्। कियान्। इयान् इत्यादि। स्त्रीलिङ्ग में यावती इत्यादि।

(थ) "तस्यभावस्त्वतलौ" "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" पा० सू०)

'उसका भाव (धर्म, स्वभाव, अवस्था आदि) इस अर्थ में प्रातिपदिक से 'त्व' तथा 'तल्' प्रत्यय होते हैं। पृथ्वादि शब्दों से 'त्व' तल् 'अण्' के साथ 'इमनिच्' भी विकल्प से होता है। जैसे—मनुष्यस्य भावः मनुष्यत्वम् मनुष्यता। गोर्भावः गोत्वम्, गोता इत्यादि।

नोट—'त्वान्त' शब्द नपुंसक और 'तलन्त' स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

(द) "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" (पा० सू०)

पृथोर्भावः पृथुत्वम्, पृथुता, पार्थवम् और प्रथिमा (विशालता) 'इमनिच्' प्रत्यय करने से निम्नलिखित रूप होते हैं। मृदु-म्रदिमा महत्-महिमा। तनु-तनिमा। लघु-लघिमा। बहु-भूमा। गुरुगरिमा। ह्रस्व-ह्रसिमा। दीर्घ-द्राघिमा। प्रिय प्रेमा। अणु अणिमा इत्यादि।

नोट—'इमनिच्' प्रत्ययान्त शब्द संस्कृत में पुलिङ्ग है।

(ध) * शुक्ल आदि गुण वाचक शब्दों से तथा दृढ भृश कृश, वक्र, मधुर इन शब्दों से 'त्व-तल्-इमनिच् के साथ ष्यञ् (य) भी होता है। जैसे—शुक्लस्य भावः=शुक्लत्वम्, शुक्लता, शुक्लिमा और शौक्ल्यम्। दृढस्यभावः दृढत्वम् दृढता, द्रढिमा और दार्ढ्यम्।

---

* "वर्ण दृढादिभ्यः ष्यञ्च" (पा० सू०)

(न) * विशेषणीभूत शब्द से तथा ब्राह्मणादि शब्दों से कर्म और भाव अर्थों में ष्यञ् (य) भी होता है। यथा—सुन्दरस्य कर्म भावो वा=सौन्दर्यम्। कवेः कर्म काव्यम्। ब्राह्मणस्य कर्म भावो वा=ब्राह्मण्यम् इत्यादि। किन्तु सख्युः भावः कर्म वा=सख्यम्। दूत्यम्। शुचेः शौचम्। मुनेः-मौनम् इत्यादि।

(प) "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" (पा० सू०)

'यह उसको होगया' इस अर्थ में तारकादिगण पठित शब्दों से इतच् (इत) प्रत्यय होता है। यथा—तारकाः संजाताः अस्य= तारकितं गगनम्। पण्डा (सदसद्विवेकिनी बुद्धिः) संजाता अस्य=पण्डितः। पुष्पितः, दीक्षितः गर्वितः, हर्षितः, मूर्च्छितः, निद्रितः मुद्रित इत्यादि।

(फ) "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" (पा० सू०)

'तत् अस्य अस्ति' (वह इसको है), या 'तद् अस्मिन् अस्ति' (वह इसमें है) इस अर्थ में प्रतिपदिक से मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है। मतिः अस्ति अस्य=मतिमान् गावः सन्ति अस्य=गोमान्। पितृमान्। अग्निमान् इत्यादि।

† 'यवादि' शब्दों को छोड़कर मकारान्त-मकारोपध, अवर्णान्त-अवर्णोपध तथा झयन्त शब्दों से परे 'मतुप्' का 'म' 'व' होजाता है। यथा मकारान्त किंवान्। मकारोपध-लक्ष्मीवान्। अवर्णान्त - धनवान; विद्यावान्। अवर्णोपध—यशस्वान्;

---

* "गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च" [पा० सू०]

† "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" "झयः" (पा० सू०)

भास्वान्। झयन्त—विद्युत्वान्; सुहृद्वान्। किन्तु यवादि से परे—यवमान्; भूमिमान्। ककुद्मान्; गरुत्मान् इत्यादि। उदक से (समुद्र अर्थ में) उदन्वान्। राजन् से (सौराज्य अर्थ में) राजन्वती पृथिवी।

† (ब) अदन्त प्रातिपदिक से तथा वृह्यादि शब्दों से मतुप् प्रत्यय के अर्थ में इनि (इन्) ठन् (इक) प्रत्यय भी होते हैं। यथा—धनी, धनिकः। दण्डी; दण्डिकः। वृह्यादि से माली; शिखी, शाली। नाविकः।

(भ) ❀ असन्त शब्द, माया, मेधा, स्रज् इन शब्दों से मत्वर्थ में विनि (विन्) प्रत्यय होता है। यथा—यशस्वी। तपस्वी। मायावी। (मायी और मायिकः भी होता है)। स्रग्वी।

(म) † दो सजातीय व्यक्तियों या वस्तुओं में जब एक का दूसरे से उत्कर्ष या अपकर्ष बतलाया जाता है तो उससे 'तरप्' (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं। इन प्रत्ययों में ‡ 'ईयसुन्' केवल गुणवाचक (विशेषण) शब्दों से ही होता है और 'तरप्' सबों से। यथा—अयमनयोः अतिशयेन पटुः= पटुतरः, पटीयान्। लघुः—लघुतरः, लघीयान्। अयमनयोः अतिशयेन विद्वान्=विद्वत्तरः। धनवत्तरः इत्यादि। यहाँ ईयसुन् नहीं होगा।

---

† "अत इनिठनौ" "वृह्यादिभ्यश्च" (पा० सू०)

❀ "अस्माया मेधा स्रजो विनिः" (पा० सू०)

† "द्विवचन विभज्योपपदे तरबीयसुनौ" ‡ "अजादीगुणवचनादेव।"

†† (य) जब दो से अधिक सजातीय व्यक्तियों या वस्तुओं में एक का अत्यन्त उत्कर्ष या अपकर्ष बतलाया जाता है तो उससे 'तमप्' (तम) और 'इष्ठन्' (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं। 'इष्ठन्' प्रत्यय भी ईयसुन् की तरह विशेषण शब्द से ही होता है। यथा—अयमेषामेषुवा पटुः=पटुतमः; पटिष्ठः। लघुतमः; लघिष्ठः। विद्वत्तमः। धनवत्तमः इत्यादि। इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय करने पर कुछ शब्दों के रूप विशेष प्रकार के हो जाते हैं। यथा—

Posetive	Comparative	Superlative
प्रशस्य (प्रशंसनीय)	श्रेयान् ज्यायान्	श्रेष्ठः ज्येष्ठः
वृद्ध (बूढ़ा)	ज्यायान्	ज्येष्ठः
कृश (दुर्बल)	क्रशीयान्	क्रशिष्ठः
दृढ (पक्का)	द्रढीयान्	द्रढिष्ठः
परिवृढ (प्रधान)	परिव्रढीयान	परिव्रढिष्ठः
पृथु (विशाल)	प्रथीयान्	प्रथिष्ठः
भृश (प्रचुर)	भ्रशीयान्	भ्रशिष्ठः
मृदु (कोमल)	म्रदीयान्	म्रदिष्ठः
अन्तिक (समीप)	नेदीयान्	नेदिष्ठः
बाढ (ठीक)	साधीयान्	साधिष्ठः
स्थूल (मोटा)	स्थवीयान्	स्थविष्ठः
दूर	दवीयान्	दविष्ठः
युवन् (युवा)	यवीयान् कनीयान्	यविष्ठः कनिष्ठः

†† "अतिशायने तमबिष्ठनौ" (पा० सू०)

ह्रस्व (छोटा)	ह्रसीयान्	ह्रसिष्ठः
क्षिप्र (शीघ्र)	क्षेपीयान्	क्षेपिष्ठः
क्षुद्र (छोटा नीच)	क्षोदीयान्	क्षोदिष्ठः
प्रिय	प्रेयान्	प्रेष्ठः
स्थिर	स्थेयान्	स्थेष्ठः
स्फिर (प्रचुर)	स्फेयान्	स्फेष्ठः
उरु (विशाल)	वरीयान्	वरिष्ठः
बहुल (प्रचुर)	बंहीयान्	बंहिष्ठः
बहु ,,	भूयान्	भूयिष्ठः
गुरु (भारी)	गरीयान्	गरिष्ठः
वृद्ध	वर्षीयान्	वर्षिष्ठः
तृप्र (सन्तुष्ट)	त्रपीयान्	त्रपिष्ठः
दीर्घ (लम्बा)	द्राघीयान्	द्राघिष्ठः
वृन्दारक (मुख्य मनोहर)	वृन्दीयान्	वृन्दिष्ठः

'विन्' और 'मतुप्' प्रत्यायान्त शब्दों में ईयसुन् और इष्ठन् के परे विन् और मतुप का लोप हो जाता है। यथा—स्रग्विन्-स्रजीयान्; स्रजिष्ठः। बलवत्-बलीयान्; बलिष्ठः इत्यादि।

(र) ❀ अभूत तद्भाव में अर्थात् जो जैसा नहीं है उसके वैसा हो जाने पर इस विकृतिवाचक शब्द से कृ' या 'भू' या 'अस्' धातु के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है।

❀ "कृभ्वस्ति योगे संपद्यकर्तरिच्विः" (पा० सू०) 'अभूततद्भाव इति वाच्यम्' (वा०)

❀ 'च्वि' से पूर्व अवर्ण का ईकार; ह्रस्व इ, उ का दीर्घ और ऋ का 'री' हो जाता है। अशुक्लः शुक्लः संपद्यते तं करोति शुक्ली करोति। अग्रामः ग्रामः संपद्यते तं करोति ग्रामी करोति। अगङ्गा गङ्गा संपद्यते तथा स्यात् गङ्गीस्यात्।

नोट—अव्यय को 'च्वि' परे ईत्व नहीं होता है। यथा—दोषाभूतमहः।
दिवाभूता रात्रिः।

(ल) † च्वि प्रत्यय के अर्थ में 'साति' (सात्) प्रत्यय भी विकल्प से होता है। यथा—अग्नि साद्भवति। जलसात् संपद्यते।

(व) †† द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज, तथा द्विगुण, त्रिगुण आदि गुणान्त संख्या वाचक शब्दों से 'कृञ्' के योग में क्षेत्र कर्षणरूप अर्थ में 'डाच्' प्रत्यय होता है। यथा—द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति = द्वितीया करोति। तृतीया करोति। शम्बा करोति। बीजा करोति। द्विगुणा करोति। त्रिगुणा करोति इत्यादि।

(श) ❀ क्रिया की गणना के अर्थ में संख्या वाचक शब्दों से 'कृत्वसुच्' (कृत्वस्) प्रत्यय होता है। यथा—पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते दशकृत्वः भुङ्क्ते। पाँच बार, दशबार खाता है।

❀ "अस्य च्वौ" "च्वौ च" "रीङृतः" (पा० सू०)

† "विभाषा सातिकार्त्स्न्ये" (पा० सू०)

†† "कृञोद्वितीय तृतीय शम्ब बीजात् कृषौ" "संख्यायाश्च गुणान्तायाः" (पा० सू०)

❀ "संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्"

(ष) † किन्तु क्रिया की गणना अर्थ में द्वि, त्रि और चतुर शब्दों से 'सुच्' (स्) ही होता है और एक शब्द के स्थान में सुच् के साथ 'सकृन्' आदेश भी हो जाता है। यथा—द्विः त्रिः चतुर्भुंङ्क्ते। सकृत् कार्यं करोति।

(स) ❀ क्रिया का या द्रव्य का भेद दिखाने के लिए संख्या वाचक शब्दों से 'धा' प्रत्यय होता है। यथा—अमुं धान्य-राशिं द्विधा कुरु=अनाज के उस ढेर को दो भागों मे बाँटो। स इमं श्लोकं पञ्चधा व्याचष्टे। ऐसे ही एकधा, त्रिधा, चतुर्धा, षोढा, सप्तधा इत्यादि।

(ह) †† द्वि और त्रि शब्द से पूर्वोक्त अर्थमें 'धा' की जगह धमुञ् और 'एधाच्' भी होते हैं। यथा—द्वैधम द्वेधा त्रैधम्-त्रेधा।

अथ द्विरुक्त प्रकरणम्

प्रयोजनवश वाक्य में किसी किसी पदको दुहराकर बोला जाता है जिसे द्विरुक्त कहते हैं।

"नित्य वीप्सयोः" (पा० सू०)

(क) 'नित्यता' अर्थात् किसी क्रिया के बराबर होने या बहुत होने में और (ख) वीप्सा, अर्थात् किसी पदार्थ की व्याप-कता दिखाने में पदों को द्वित्व हो जाता है। यथा—(क) भुक्त्वा भुक्त्वा न तृप्तः। छात्रः ग्रामं गच्छति गच्छति। (ख) ग्रामे ग्रामे लोकानामियं दशा। वृक्षं वृक्षं सिञ्चति।

---

† "द्वि त्रि चतुर्भ्यः सुच्" "एकस्य सकृच्च" (पा० सू०)

❀ "संख्याया विधार्थे धा" †† "द्वित्र्योश्च धमुञ्" "एधाच्च" (पा० सू०)

* असूया, संमति, कोप, कुत्सन (निन्दा) तथा भर्त्सना प्रगट करने के लिए वाक्य के आदि में सम्बोधन पद की द्विरुक्ति होती है। यथा असूया सुन्दर ! सुन्दर ! वृथा ते सौन्दर्यम्। संमति–देव ! देव ! वन्द्योऽसि। कोप–दुर्विनीत ! दुर्विनीत ! इदानीं ज्ञास्यसि कुत्सन– धानुष्क ! धानुष्क ! वृथा ते धनुः। भर्त्सना— चोर ! चोर ! घातयिष्यामित्वाम्।

† भय और आदर प्रकट करने के लिए तो पदों की द्विरुक्ति नहीं त्रिरुक्ति भी हो जाती है। यथा—सर्पः सर्पः सर्पः, पश्य पश्य पश्य। गुरुर्गुरुर्गुरुः, आनय आनय आनय आसनम्।

क्रिया का विनिमय दिखाने के लिए इतर, अन्य और पर इन सर्वनाम शब्दों में द्वित्व होता है और समासवद्भाव आदि कार्य होने पर निम्नलिखित रूप होते हैं। इतर—इतरेतरः, इतरेतरे, इतरेतरस्मै इत्यादि सर्वनाम शब्दवत्। पर–परस्परः, परस्परौ; परस्परे इत्यादि सर्वनाम शब्दवत्। इनके तीनों लिङ्गों में रूप होंगे।

इति तद्धित प्रकरणम्

---

* "वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूया संमति कोप कुत्सनभर्त्सनेषु" (पा० सू०)
† 'संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा पूयोगो न्याय सिद्धः (वा०)

[६] अथ तिङन्त प्रकरणम् [Conjugation of verbs]

(क) धातु

उन क्रियावाचक भू, गम्, कृ आदि को धातु कहते हैं जिन में 'तिङ्' और 'कृत्' प्रत्यय के योग से भवति, गच्छति, करोति आदि 'तिङन्त' और गन्ता, कर्ता, कारकः आदि कृदन्त पद बनते हैं। ये धातु दो तरह के हैं—(१) मूलधातु (Primitive roots) (२) सनाद्यन्त धातु (Derivative roots) । मूल धातु की संख्या लगभग दो हजार है।

(ख) गण ❀

ये धातु १० गणों में विभक्त हैं। जिन-जिन धातुओं में एक तरह की प्रक्रिया होती है वे एक गण में रखे गये हैं। प्रत्येक गण के आरम्भ के धातु से गण का नाम रखा गया है। इसलिए 'भू' धातु से आरम्भ होनेवाला गण (१) भ्वादि; 'अद्' से (२) अदादि; 'हु' से (३) जुहोत्यादि; 'दिव्' से (४) दिवादि; 'सु' से (५) स्वादि; 'तुद्' से (६) तुदादि; 'रुध्' से (७) रुधादि; 'तन्' से (८) तनादि; 'क्री' से (९) क्र्यादि और 'चुर्' से (१०) चुरादि कहलाता है।

❀ भ्वाद्यदादि जुहोत्यादि दिवादि स्वादयस्तथा।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादि क्र्यादिरेवच॥
चुरादिश्चेति धातूनां गणा दश समीरिताः॥

(ग) सकर्मक और अकर्मक

❀ सकर्मक धातु उसे कहते हैं जिसके फल और व्यापार पृथक् पृथक् रहते हैं। यथा—रामः वनं गच्छति। यहाँ 'जाना' रूप व्यापार राम में है और उसका फल 'वन-संयोग' यह वन में है। जहाँ फल और व्यापार दोनों एक ही में रहे उस को अकर्मक † कहते हैं। जैसे—बालकः हसति। यहाँ हँसना व्यापार और उसका फल एक ही बालक में है। साधारणतः ‡ लजाना, रहना, ठहरना, जागना, बढ़ना, क्षय होना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, रुचना, प्रकाशित होना—इतने अर्थवाले धातु अकर्मक होते हैं।

(घ) परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी

जिन धातुओं से तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस् और मस् ये †† परस्मैपद की नौ विभक्तियाँ आती हैं, उन्हें 'परस्मैपदी' धातु कहते हैं और जिनसे त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहिङ्, और महिङ्, ये नौ आत्मने पदकी विभक्तियाँ आती हैं वे 'आत्मनेपदी' धातु कहलाते हैं तथा जिन से उपर्युक्त १८ विभक्तियाँ आती हैं, वे 'उभयपदी' धातु कहलाते हैं।

❀ फल व्यधिकरण व्यापार वाचकत्वम् सकर्मकत्वम्।

† फलसमानाधिकरण व्यापार वाचकत्वम् अकर्मकत्वम्।

‡ लज्जा सत्ता-स्थिति-जागरणं, वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम्।
शयन, क्रीड़ा, रुचि दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मक माहुः॥

†† परस्मैपद और आत्मने पदके लिए सामान्य प्रकरण देखिए।

(ङ) तिङ् और तिङन्त

'तिप्' से लेकर महिङ् पर्यन्त इन उपर्युक्त १८ विभक्तियों को 'तिङ्' कहते हैं और तिङ् जिसके अन्त में हो उसे 'तिङन्त'। यह 'तिङ्' लकार के स्थान में होता है।

(च) काल (TENSES)

तिङन्तपद के प्रयोग में काल का विचार आवश्यक है। 'भूत', 'वर्तमान' और 'भविष्यत्' के भेद से काल तीन प्रकार का होता है। जो काल बीत चुका है उसे भूत काल कहते हैं और उस काल के बोधक क्रिया को भूतकालिक क्रिया। जो काल अभी है उसे वर्तमान काल कहते हैं तथा उसके प्रतिपादक क्रिया को वर्तमान कालिक क्रिया। जो समय आगे आने वाला है उसे भविष्यत् काल कहते हैं एवं उसके बोधक क्रिया को भविष्यत् कालिक क्रिया। भूत काल के भूत, अनद्यतनभूत और परोक्षभूत, ये तीन भेद होते हैं। भविष्यत् के अनद्यतन भविष्यत् और साधारण भविष्यत्, ये दो भेद हैं। इस तरह काल के ६ भेद होते हैं।

(छ) लकार ❀

इन्हीं उपर्युक्त कालों तथा आज्ञा, विधि आदि कतिपय अर्थों (Moods) के आधार पर दश लकार होते है। यथा-१ लट्, २ लिट् ३ लुट्, ४ लृट्, ५ लेट्, लोट्, ७ लङ्, ८ लिङ्

❀ लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति॥

(विधि लिङ् और आशीर्लिङ्), ६ लुङ्, तथा लृङ्। इनमें वर्तमान (Present) में लट्; परोक्ष भूत (Perfect) में लिट्; अनद्यतन भविष्यत् (Periphrastic future) में लुट्; भविष्यत् (Future) में लृट्; लिङर्थ (Subjective Mood) में लेट्; आज्ञा आदि (Impere:ive Mood) में लोट्; अनद्यतन भूत (Imperfect) लङ्; विध्यादि अर्थ (Potential) में विधिलिङ्; आशीर्वाद (Benedictive) में आशीर्लिङ्; भूत (Aorist) में लुङ् तथा संकेत (Conditional) में लृङ् लकार होता है इनमें 'लेट्' लकार का प्रयोग केवल वेद ही में होता है।

* ये लकार सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में तथा अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में होते हैं।

(ज) कर्तृवाच, कर्मवाच्य और भाववाच्य

जहाँ 'कर्ता' प्रधान रूप से वाच्य रहता है वहाँ सकर्मक या अकर्मक धातु से कर्ता में लकार (तिङ्) होता है और तिङन्त क्रिया पद कर्ता के अनुसार बदलता है। इसी को कर्तृवाच्य (Active voice) कहते हैं। जहाँ 'कर्म' प्रधान रूप से वाच्य रहता है वहाँ सकर्मक धातु से कर्म में लकार होता है और क्रियापद कर्म के अनुसार बदलता है। इसको कर्मवाच्य (Passive

---

* "लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः" (पा० सू०)

नोट—कृदन्त क्रियापदों के साथ भी वाच्य प्रयोगों का यही नियम है, यह स्मरण रखना चाहिए।

voice) कहते हैं और जहाँ 'भाव'. (क्रिया) प्रधान रहता है वहाँ अकर्मक धातु से भाव में लकार (तिङ्) होता है और क्रियापद नित्य एक वचनान्त ही रहता है। इसको *भाववाच्य* (Impersonal Constıuction) कहते हैं। जैसे—कर्तृवाच्य छात्रः विद्यालयं गच्छति। कर्मवाच्य—छात्रेण विद्यालयः गम्यते। भाववाच्य-छात्रेण हस्यते। यहाँ कर्ता और कर्म में आनेवाली विभक्तियों के लिए कारक प्रकरण स्मरण रखना चाहिए।

(ख) पुरुष

प्रथम पुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तम पुरुष, ये तीन पुरुष होते हैं। कर्तृवाच्य में युष्मद् और अस्मद् शब्दों के प्रथमान्त रूपों से अतिरिक्त शब्दों के साथ *प्रथम* पुरुष होता है। जैसे—छात्रः पठति। पुस्तकम् अस्ति इत्यादि। ऐसे ही कर्मवाच्य में युष्मद् और अस्मद् से अतिरिक्त कर्म रहने पर प्रथम पुरुष होता है। यथा—छात्रेण पुस्तकं पठ्यते। प्रथम पुरुष में तिप्, तस्, झि तथा त, आताम्, झ, ये विभक्तियाँ आती हैं। युष्मद् शब्दका प्रथमान्त रूप यदि कर्तृवाच्य में कर्ता या कर्मवाच्य में कर्म हो तो उसके साथ *मध्यम* पुरुष होता है। जैसे—त्वं पठसि, मया त्वं पाठ्यसे। मध्यम पुरुष में—सिप्, थस्, थ तथा थास्, आथाम्, ध्वम् ये विभक्तियां आती हैं। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द के प्रथमान्त रूप यदि कर्तृवाच्य में कर्ता या कर्मवाच्य में कर्म हों तो उनके साथ उत्तमपुरुष होता है। जैसे—अहं पठामि। त्वया अहं पाठ्ये। उत्तम पुरुष में मिप्, वस्, मस् तथा इट्, वहिङ्, महिङ् ये विभक्तियाँ आती हैं।

(ञ) वचन

इन पूर्वोक्त प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुषों में एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन, ये तीन वचन होते हैं। कर्तृवाच्य में कर्ता में एक वचन, द्विवचन एवं बहुवचन रहने पर क्रमशः पुरुषों में एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन होते हैं। कर्मवाच्य में कर्म के वचन के अनुसार क्रिया में वचन होता है। जैसे—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स पठति	तौ पठतः	ते पठन्ति
मध्यमपुरुष	त्वं पठसि	युवां पठथः	यूयं पठथ
उत्तमपुरुष	अहं पठामि	आवां पठावः	वयं पठामः
प्र० पु०	तेन स पाठ्यते	तेन तौ पाठ्येते	तेन ते पाठ्यन्ते
म० पु०	तेन त्वं पाठ्यसे	तेन युवां पाठ्येथे	तेन यूयं पाठ्यध्वे
उ० पु०	तेन अहं पाठ्ये	तेन आवां पाठ्यावहे	तेन वयं पाठ्यामहे

(ट) 'सेट्,' 'अनिट्' और 'वेट्' धातु

जिस धातु के लुट् लकार में 'इट्' होता है वह 'सेट्' जिसके 'लुट् में इट् नहीं होता वह 'अनिट्' और जिसमें विकल्प से इट् होता है वह 'वेट्' कहलाता है।

(ठ) विकरण

[प्रकृति प्रत्यययो मध्ये य' पतितः स विकरणः]

लट् लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन चारों लकारों में धातुके बाद और तिङ् के पूर्व गण भेद बतलाने वाले प्रत्ययों को विकरण कहते हैं ये निम्न लिखित प्रकारके हैं—

गण विकरण		गण विकरण	
१	भ्वादि—शप् (अ)	६	तुदादि—श (अ)
२	अदादि शप्लुक्=०	७	रुधादि—श्नम् (न)
३	जुहोत्यादि—शप् श्लु=०	८	तनादि—उ
४	दिवादि—श्यन् (य)	९	क्र्यादि—श्ना (ना)
५	स्वादि—श्नु (नु)	१०	चुरादि [णिच् (इ)+]शप् (अ)

इन १० गणों में भ्वादि, दिवादि, तुदादि तथा चुरादि इन चारों गणों के 'विकरण' अकारान्त हैं, अतः विकरण के साथ इनके रूपों में बहुत साम्य है। इसके अतिरिक्त गणों में साम्य नहीं है। यह आगे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

(ङ) तिङ् विभक्ति का स्वरूप

लट् लकार

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	ए०	द्वि०	ब०	ए०	द्वि०	ब०
प्र० पु०	ति	तः	* अन्ति	ते	†आते	‡अन्ते
म० पु०	सि	थः	थ	से	†आथे	ध्वे
उ० पु०	††मि	वः	मः	§ए	वहे	महे

---

* अदादि गणके 'जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, शास्, चकास्, दीधी, वेवी',-इन सात धातुओं के उत्तर तथा जुहोत्यादि गण के सकल धातुओं के उत्तर 'अन्ति' के स्थान मे 'अति' का प्रयोग होता है।

† अकार के परे यह 'आकार' इकार हो जाता है।

‡ अकार भिन्न वर्ण से परे 'अन्ते' की जगह 'अते' का प्रयोग होता है।

†† मि, वः, मः, वहे, तथा महे के पूर्व ह्रस्व अकार दीर्घ 'आ' हो जाता है।

§ इस 'ए' के पूर्व 'अकार' रहे तो उसे पररूप होता है।

लृट् लकार

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	ए०	द्वि	ब०	ए०	द्वि०	ब०
प्र० पु०	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लोट् लकार

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	ए०	द्वि०	ब०	ए०	द्वि०	ब०
प्र० पु०	तु [तात्*]	ताम्	अन्तु	ताम्	†आताम्	अन्ताम्
म० पु०	हि [तात्*]	तम्	त	स्व	†आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

††लङ् लकार

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र० पु०	त्	ताम्	अन्	त	†आताम्	अन्त
म० पु०	(:) स्	तम्	त	थाः	†आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	अम्	व	म	इ	वहि	महि

---

* 'तात्' के साथ वैकल्पिक प्रयोग आशीर्वाद अर्थ में होता है।

† 'अकार' से परे यह 'आकार' इकार हो जाता है।

†† लङ् लकार अनद्यतन भूत में होता है। बीती हुई रात के उत्तरार्द्ध से लेकर आनेवाली रात के पूर्वार्द्ध तक के समय को अद्यतन' कहते हैं, उससे भिन्नको अनद्यतन। ऐसे भूत में लङ् होता है। अतः अद्य प्रातः ग्राम मगच्छत्, यह अशुद्ध है।

विधिलिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र० पु०*	यात्	याताम्	युः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	याः	यातम्	यात	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	याम्	याव	याम	ईय	ईवहि	ईमहि

भ्वादि गणीय धातुओं के रूप

'भू' धातु=होना [परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्] लट्लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लोट्

प्र० पु०	भवतु [भवतात्]	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव [भवतात्]	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

ऐसे ही भ्वादिगणीय धातुके परस्मैपद में उपर्युक्त लकारों में साधारणतः रूप होते हैं। विशेष रूप क्रमशः आगे बतलाये जायँगे। लट्, लृट्, लङ् तथा विधि लिङ् में क्रमशः एक एक रूप दिये जाते हैं। भू धातु के अनुसार ही उसके आगे के रूप बनाने चाहिए।

पठ् (पढ़ना) पठति। पठिष्यति। पठतु। अपठत्। पठेत्।

वद् (बोलना) वदति। वदिष्यति। वदतु। अवदत्। वदेत्।

गद् (बोलना) गदति। गदिष्यति। गदतु। अगदत्। गदेत्।

नद् (अव्यक्त शब्द करना) नदति। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत्।

चल् (चलना) चलति। चलिष्यति। चलतु। अचलत्। चलेत्।

पत् (गिरना) पतति। पतिष्यति। पततु। अपतत्। पतेत्।

चर् (चरना) चरति। चरिष्यति। चरतु। अचरत्। चरेत्।

वस् (निवास करना) वसति। वत्स्यति। वसतु। अवसत्। वसेत्।

गर्ज् (गरजना) गर्जति। गर्जिष्यति। गर्जतु। अगर्जत्। गर्जेत्

निन्द् (निन्दा० करना) निन्दति निन्दिष्यति। निन्दतु। अनिन्दत्। निन्देत्।

कुछ धातुओं के मूल रूप लट्, लोट्, लङ् विधिलिङ् में बदल जाते हैं जैसे—

पा=पिब (पीना) पिबति। लृट् में पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

घ्रा=जिघ्र (सूँघना) जिघ्रति। घ्रास्यति। शेषपूर्ववत्

ध्मा= (बजाना, फूँकना) धमति। ध्मास्यति।

स्था=तिष्ठ (ठहरना) तिष्ठति। स्थास्यति।

म्ना=मन् (अभ्यास करना) मनति। म्नास्यति।

दाण्=यच्छ् (देना) यच्छति। दास्यति।

दृश्=पश्य् (देखना) पश्यति। द्रक्ष्यति।

ऋ=ऋच्छ (जाना) ऋच्छति। अरिष्यति। लङ् आर्च्छत्।

सृ=धौ (दौड़ना) धावति। सरिष्यति। लङ् अधावत्।

शद्=शीय (विशीर्ण होना) शीयते। यह आत्मनेपदी है।

सद्=सीद (बैठना आदि) सीदति। सत्स्यति।

गम्=गच्छ् (जाना) गच्छति। गमिष्यति।

दंश् (दाँतसे काटना)दशति। दङ्क्ष्यति। लङ्-अदशत्।

सञ्ज् संग करना) सजति। सङ्क्ष्यति। लङ्-असजत्।

जि (जीतना) जयति। जेष्यति। जयतु। अजयत्। जयेत्।

लभ् (प्राप्त करना) [आत्मनेपदी, सकर्मक अनिट्]

लट्

प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

इसी प्रकार भ्वादिगणीय आत्मनेपदी धातुओं के रूप बनाने चाहिए।

एध् (बढ़ना) एधते। एधिष्यते। एधताम्। ऐधत। एधेत।

द्युत्। (चमकना) द्योतते। द्योतिष्यते। द्योतताम्। अद्योतत। द्योतेत।

रुच् (चमकना, प्रिय लगना) रोचते। रोचिष्यते। रोचताम् अरोचत।

मुद् (प्रसन्न होना) मोदते। मोदिष्यते। मोदताम्। अमोदत।

वृत् (रहना) वर्तते। वर्तिष्यते।

वर्तताम् । अवर्तत । वर्तेत ।

वृध् (बढ़ना) वर्धते । वर्धिष्यते । वर्धताम् । अवर्धत । वर्धेत ।

शृध् (कुत्सित शब्द) शर्धते । शर्धिष्यते † । शर्धताम् । अशर्धत । स्यन्दू (स्यन्दू = पिघलना) स्यन्दते । स्यन्दिष्यते । स्यन्त्स्यते † । स्यन्दताम् ।

उभयपदी धातुओं के रूप पूर्वोक्त प्रकार से परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों में बनाने चाहिए । यथा—(णीञ्) नी (ले जाना) नयति—नयते । नेष्यति—नेष्यते आदि । (हृञ्) हृ (हरना, चुराना) हरति-हरते । हरिष्यति हरिष्यते आदि । (धृञ्) धृ (धारण करना) धरति–धरते । धरिष्यति धरिष्यते । धाव् (दौड़ना, साफ करना) धावति–धावते । धाविष्यति–धाविष्यते । यज् (देव पूजा, यज्ञ करना आदि) यजति–यजते । यक्ष्यति–यक्ष्यते । वह् (बहना, ढोना) वहति–वहते । वक्ष्यति–वक्ष्यते । (वेञ्) वे (कपड़ा बुनना) वयति–वयते । वास्यति–वास्यते इत्यादि । ऐसे ही व्येञ् (ढकना), ह्वेञ् (स्पर्धा करना, शब्द करना) आदि के रूप होते हैं ।

गुप्, तिज् आदि सात धातुओं से 'सन्' होता है । इनके रूप इच्छा सन्नन्त के समान ही होते हैं किन्तु अर्थ निम्नलिखित हैं । यथा—'गुप्' से निन्दा अर्थ में जुगुप्सते । जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सताम् । अजुगुप्सत । जुगुप्सेत ।

'तिज्' से क्षमा अर्थ में तितिक्षते । 'कित्' (चिकित्सा करना) चिकित्सति—ते 'मान्' (विचार करना) मीमांसते । 'बध्'

---

† इसके लृट् में परस्मैपद भी विकल्प से होता है । तब इट् नहीं होता । यथा—वर्त्स्यति । वृध्–वर्त्स्यति । शर्त्स्यति स्यन्त्स्यति ।

(चित्त विकार अर्थ में) बीभत्सते । 'दान्' (ऋजुता) दीदांसति—ते । 'शान्' (तेज करना) शीशांसति-ते ।

(२) अदादिगण

"अद्" (खाना) [परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्]

	लट्			लृट्		
प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

	लोट्			लङ्		
प्र० पु०	अत्तु [अत्तात्]	अत्ताम्	अदन्तु	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म० पु०	अद्धि [„]	अत्तम्	अत्त	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम	आदम्	आद्व	आद्म

	विधिलिङ्		
प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अस्=होना (रहना) [परस्मैपदी, अकर्मक]

	लट्			लोट्		
प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति	अस्तु [स्तात्]	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	असि	स्थः	स्थ	एधि [„]	स्तम्	स्त
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः	असानि	असाव	असाम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम	आसन्	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	आसीः	आस्तम	आस्त	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म	स्याम्	स्याव	स्याम

लृट् लकार में भविष्यति आदि 'भू' के समान रूप होते हैं।

अन् = जीना [परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्]

	लट्			लोट्		
प्र० पु०	अनिति	अनितः	अनन्ति	अनितु	अनिताम्	अनन्तु
म० पु०	अनिषि	अनिथः	अनिथ	अनिहि	अनितम्	अनित
उ० पु०	अनिमि	अनिवः	अनिमः	अनानि	अनाव	अनाम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र० पु०	आनीत्-आनत्	आनिताम्	आनन्	अन्यात्	अन्याताम्	अन्युः
म० पु०	आनीः-आनः	आनितम्	आनित	अन्याः	अन्यातम्	अन्यात
उ० पु०	आनम्	आनिव	आनिम	अन्याम्	अन्याव	अन्याम

लृट् में अनिष्यति आदि। प्र उपसर्ग से परे प्राणिति आदि।

इसी तरह रुद् (रोना) धातु के रोदिति; रोदितु; रोदिष्यति; अरोदीत्-अरोदत्; रुद्यात् आदि रूप होते हैं। स्वप् (सोना) धातुके स्वपिति; स्वपितु; स्वप्स्यति; अस्वपीत्—अस्वपत्; स्वप्यात् आदि।

श्वस् (साँस लेना-जीना) धातुके श्वसिति; श्वसितु; श्वसिष्यति; अश्वसीत् अश्वसत्, श्वस्यात् आदि। जक्ष् (खाना) धातु के लट् में जक्षिति, जक्षितः, जक्षति, जक्षिषि, जक्षिथः, जक्षिथ

जक्षिमि, जक्षिवः, जक्षिमः। लोट् में जक्षितु आदि; लृट् में जक्षिष्यति आदि; लङ् में अजक्षीत् - अजक्षत्, अजक्षिताम्, अजक्षुः, अजक्षीः अजक्षः, अजक्षितम्, अजक्षित, अजक्षम्, अजक्षिव, अजक्षिम। विधिलिङ्में जक्ष्यात् आदि।

जागृ=जागना [परस्मैपदी, अक०से ट्]

	लट्			लोट्		
प्र० पु०	जागर्ति	जागृतः	जाग्रति	जागर्तु-जागृतात्	जागृताम्	जाग्रतु
म० पु०	जागर्षि	जागृथः	जागृथ	जागृहि	„	जागृतम्	जागृत
उ० पु०	जागर्मि	जागृवः	जागृमः	जागराणि	जागराव	जागराम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र० पु०	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयुः
म० पु०	अजागः	अजागृतम्	अजागृत	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उ० पु०	अजागरम्	अजागृव	अजागृम	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट् में जागरिष्यति आदि।

दरिद्रा = निर्धनहोना [परस्मैपदी, अक०, सेट्]

	लट्			लोट्		
प्र० पु०	दरिद्राति	दरिद्रितः	दरिद्रति	दरिद्रातु	दरिद्रिताम्	दरिद्रतु
म० पु०	दरिद्रासि	दरिद्रिथः	दरिद्रिथ	दरिद्रिहि	दरिद्रितम्	दरिद्रित
उ० पु०	दरिद्रामि	दरिद्रिवः	दरिद्रिमः	दरिद्राणि	दरिद्राव	दरिद्राम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र०	अदरिद्रात्	अदरिद्रिताम्	अदरिद्रुः	दरिद्रियात्	दरिद्रियाताम्	दरिद्रियुः

	लङ्			विधिलिङ्		
म०	अदरिद्राः	अदरिद्रितम्	अदरिद्रित	दरिद्रियाः	दरिद्रियातम्	दरिद्रियात
उ०	अदरिद्राम्	अदरिद्रिव	अदरिद्रिम	दरिद्रियाम्	दरिद्रियाव	दरिद्रियाम

लृट्में दरिद्रिष्यति आदि।

चकास् (चमकना) धातुके लट्में चकास्ति, चकास्तः, चकासति आदि; लोट्में चकास्तु, चकास्ताम्, चकासतु चकाधि-द्धि आदि; लङ्में अचकात्-द्, अचकास्ताम्, अचकासुः, अचकाः— कात्-द्, अचकास्तम् इत्यादि; विधिलिङ्में चकास्यात् आदि; लृट्में चकासिष्यति आदि रूप होते हैं।

या 'जाना' धातु के याति; यातु; यास्यति; लङ में अयात, अयाताम्, अयुः— अयान आदि; विधिलिङ् में यायात्, यायाताम्, यायुः आदि रूप होते हैं।

इसी तरह पा=रक्षा करना, भा=चमकना मा=मापना, ला=लेना, वा=वायु का बहना, स्ना=नहाना, रा=देना आदि धातुओं के रूप होते हैं।

विद्=जानना (प० प० सक० सेट्)

	लट् (१)			लोट् (१)		
प्र०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
म०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उ०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः	वेदानि	वेदाव	वेदाम

		(२)			(२)	
प्र०	वेद	विदतुः	विदुः	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
म०	वेत्थ	विदथुः	विद	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
उ०	वेद	विद्व	विद्म	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

		लङ्			विधि लिङ्	
प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
म०	अवेत्	अवित्तम्	अवित्त	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृट् में वेदिष्यति आदि

हन्=मार डालना [प० पदी, सक०, अनिट्]

		लट्			लोट्	
प्र०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति	हन्तु-हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म०	हंसि	हथः	हथ	जहि ,,	हतम्	हत
उ०	हन्मि	हन्वः	हन्मः	हनानि	हनाव	हनाम

		लङ्			विधिलिङ्	
प्र०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म०	अहन्	अहतम्	अहत	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ०	अहनम्	अहन्व	अहन्म	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट् में हनिष्यति आदि ।

शो (शीङ्)=सोना [आत्मनेपदी, अक० सेट्]

	लट्			लोट्		
प्र०	शेते	शयाते	शेरते	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म०	शेषे	शयाथे	शेध्वे	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ०	शये	शेवहे	शेमहे	शयै	शयावहै	शयामहै

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

लृट् में शयिष्यते, शयिष्येते आदि।

अधि+इ (इङ्)=पढ़ना [आ० पदी, सक०, अनिट्]

	लट			लोट्		
प्र०	अधीते	अधीयाते	अधीयते	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृट् में अध्येष्यते, अध्येष्येते आदि।

इ (इण्) = जाना [प० पदी, सक०, अनिट्]

लट्—एति, इतः, यन्ति, एषि, इथः, इथ, एमि, इवः, इमः।

लोट्—एतु, इताम्, यन्तु, इहि, इतम्, इत, अयानि, अयाव, अयाम्।

लङ्—ऐत्, ऐताम्, आयन्, ऐः, ऐतम्, ऐत, आयम्, ऐव, ऐम।

विधिलिङ्—इयात्, इयाताम्, इयुः, इयाः, इयातम्, इयात, इयाम इयाव, इयाम।

लृट्—एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति, एष्यसि, एष्यथः एष्यथ आदि।

(३) जुहोत्यादिगण

	लट्			लोट्		
प्र०	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
म०	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उ०	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र०	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
म०	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
उ०	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

लृट में होष्यति, होष्यतः, होष्यन्ति आदि।

दा (डुदाञ्)=देना [उभयपदी, सक०, अनिट्]

	परस्मैपद		लट्		आत्मनेपद	
प्र०	ददाति	दत्तः	ददति	दत्ते	ददाते	ददते
म०	ददासि	दत्थः	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ०	ददामि	दद्वः	दद्मः	ददे	दद्वहे	दद्महे

	परस्मैपद		लोट्		आत्मनेपद	
प्र० पु०	ददातु	दत्ताम्	ददतु	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	देहि	दत्तम्	दत्त	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम	ददै	ददावहै	ददामहै

	परस्मैपद		लङ्		आत्मनेपद	
प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

	परस्मैपद		विधिलिङ्		आत्मनेपद	
प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

लृट् में दास्यति, दास्यते आदि।

धा (डुधाञ्)=धारण करना; पुष्ट करना [उ० प० सक० अनिट] 'दा' के समान।

भी (ञि भी)=डरना [परस्मैपदी, अक०, अनिट्]

	लट्			लोट्		
प्र० पु०	बिभेति	बिभितः बिभीतः	बिभ्यति	बिभेतु	बिभिताम् बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	बिभेषि	बिभिथः बिभीथः	बिभिथ बिभीथ	बिभिहि बिभीहि	बिभितम् बिभीतम्	बिभित बिभीत
उ० पु०	बिभेमि	बिभिवः बिभीवः	बिभिमः बिभीमः	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

	लङ्			विधिलिङ्	
प्र० पु०	अबिभेत्	अबिभिताम् अबिभीताम्	अबिभयुः	बिभियात्, बिभियुः आदि और	बिभियाताम्
म० पु०	अबिभेः	अबिभितम् अबिभीतम्	अबिभित अबिभीत	बिभीयात्, बिभीयुः आदि ।	बिभीयाताम्,
उ० पु०	अबिभयम्	अबिभिव अबिभीव	अबिभिम अबिभीम		

लृट् में भेष्यति, भेष्यतः, भेष्यन्ति आदि ।

भृ (डु भृञ्)=धारण और पोषण करना [उ० प०, सक०, अनिट्]

	परस्मैपद	लट्		आत्मनेपद		
प्र० पु०	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म० पु०	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ० पु०	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

	परस्मैपद	लोट्		आत्मनेपद		
प्र० पु०	बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
म० पु०	बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उ० पु०	बिभराणि	बिभराव	बिभराम	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

	परस्मैपद	लङ्		आत्मनेपद	
प्र० पु०	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	अबिभृत	अबिभ्राताम् अबिभ्रत
म० पु०	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम् अबिभृध्वम्
उ० पु०	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	अबिभ्रि	अबिभृवहि अबिभृमहि

	परस्मैपद	विधिलिङ्		आत्मनेपद	
प्र० पु०	बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम् बिभ्रीरन्
म० पु०	बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	बिभ्रीथाः	बिभ्रीयाथाम् बिभ्रीध्वम्
उ० पु०	बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	बिभ्रीय	बिभ्रीवहि बिभ्रीमहि

लृट् में भरिष्यति; भरिष्यते आदि ।

ह्री = लज्जित होना [परस्मैपदी, अक०, अनिट्]

	लट्			लोट्	
प्र० पु०	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति	जिह्रेतु	जिह्रीताम् जिह्रियतु

म० पु०	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ	जिह्रीहि	जिह्रीतम् जिह्रीत
उ० पु०	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः	जिह्रयाणि	जिह्रयाव जिह्रयाम

	लङ्			विधिलिङ्	
प्र० पु०	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयुः	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम् जिह्रीयुः
म० पु०	अजिह्रेः	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत	जिह्रीयाः	जिह्रीयातम् जिह्रीयात
उ० पु०	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम	जिह्रीयाम्	जिह्रीयाव जिह्रीयाम

लृट् में ह्रेष्यति, ह्रेष्यतः आदि ।

(४) दिवादिगण

दिव् (दिवु)=खेलना, जय चाहना, क्रयविक्रय करना, दावपर रखना स्तुति करना, प्रसन्न होना, अभिमान दिखाना सोना, इच्छा करना, गमन करना, शोभना [प० अक० सेट्]

	लट्			लोट्	
प्र०	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	दीव्यतु	दीव्यताम् दीव्यन्तु
म०	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	दीव्य	दीव्यतम् दीव्यत
उ०	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	दीव्यानि	दीव्याव दीव्याम

	लङ्			विधिलिङ्		
प्र०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
म०	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उ०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

लृट् में देविष्यति, देविष्यतः आदि ।

इसी प्रकार सिव (षिवु)=सीना सीव्यति आदि; ष्ठीव् (ष्ठीवु)=थूकना ष्ठीव्यति आदि; नृत् (नृती) नाचना नृत्यति आदि; लृट् में नर्तिष्यति-नर्त्स्यति आदि; पुष्प्=विकसित होना पुष्प्यति आदि; सिध् (षिधु) सिद्ध होना सिध्यति आदि; लृट् में सेत्स्यति आदि; क्रुध=क्रोध करना क्रुध्यति; लृट् में क्रोत्स्यति आदि ।

युध्=लड़ना (आ०) युध्यते; लृट् में योत्स्यते आदि ।

बुध्=जानना (आ०) बुध्यते; लृट् में भोत्स्यते आदि ।

मन्=मानना, समझना मन्यते; लृट् में मंस्यते आदि ।

जन् (जनी) [जा]=उत्पन्न होना जायते; लृट् में जनिष्यते

सू (षूङ्)=जन्म देना सूयते; लृट् में सविष्यते-सोष्यते आदि ।

अस् (असु)=फेंकना, पर०, अस्यति, लृट् में असिष्यति ।

त्रस् (त्रसी)=डरना, पर०, त्रस्यति-त्रसति; लृट् त्रसिष्यति ।

यस् (यसु)=प्रयास करना, पर०, यस्यति; यसति लृट् यसिष्यति।

नश् (णश्)=खो जाना, मर जाना, पर० नश्यति; लृट् नशिष्यति नंक्ष्यति।

शम् (शमु) [शाम्]=शान्त होना, *शाम्यति*; लृट्-शमिष्यति।

तम् (तमु) [ताम्]=उत्कण्ठित होना, ताम्यति; लृट्—तमिष्यति।

दम (दमु) [दाम्]=दबाना, रोकना, दाम्यति; लृट्-दमिष्यति

श्रम् (श्रमु) [श्राम्]=परिश्रम करना, थकना, श्राम्यति; लृट् श्रमिष्यति।

भ्रम् (भ्रमु) [भ्राम्]=घूमना, भ्राम्यति-भ्रमति; लृट्—भ्रमिष्यति।

क्षम (क्षमू) [क्षाम्]=सह लेना, क्षाम्यति, लृट—क्षमिष्यति-क्षंस्यति।

क्लम् (क्लमु) [क्लाम्]=थक जाना, क्लाम्यति-क्लामति; लृट् क्लमिष्यति।

मद् (मदी) [माद्]=प्रसन्न होना, माद्यति; लृट-मदिष्यति।

क्लिश्=दुखी होना, आत्म०, क्लिश्यते; लृट्—क्लेशिष्यते।

श्लिष्=आलिङ्गन करना, पर०, श्लिष्यति; लृट्—श्लेक्ष्यति।

स्निह् (ष्णिह्)=प्यार करना, पर०, स्निह्यति; लृट्—स्नेहिष्यति स्नेक्ष्यति।

(५) स्वादिगण

सु (षुञ्) =स्नपन करना, सुरा का उत्पादन करना आदि [उभ०, सक०, अनिट्]

	परस्मैपद	लट्		आत्मनेपद		
प्र०	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
म०	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
उ०	सुनोमि	सुनुवः	सुनुमः	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे
		सुन्वः	सुन्मः		सुन्वहे	सुन्महे

	परस्मैपद	लोट्		आत्मनेपद		
प्र०	सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
म०	सुनु	सुनुतम्	सुनुत	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
उ०	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

	परस्मैपद	लङ्		आत्मनेपद		
प्र०	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
म०	असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
उ०	असुनवम्	असुनुव,	असुनुम	असुन्वि	असुनुवहि,	असुनुमहि
		असुन्व	असुन्म		असुन्वहि	असुन्महि

	परस्मैपद	विधिलिङ्		आत्मनेपद		
प्र०	सुनुयात	सुनुयाताम्	सुनुयुः	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्

म० सुनुयाः सुनुयातम् सुनुयात सुन्वीथाः सुन्वीयाथाम् सुन्वीध्वम्
उ० सुनुयाम् सुनुयाव सुनुयाम सुन्वीय सुन्वीवहि सुन्वीमहि

लृट्—सोष्यति=सोष्यते ।

इसी प्रकार 'चि' (चिञ्)=इकट्ठा करना, उभ० चिनोति-चिनुते धु (धुञ्)=कँपाना, उभ०, धुनोति-धुनुते । धू (धूञ्)=हिलाना, उ० प०, धूनोति-धूनुते; लृट् धविष्यति-धोष्यति; धविष्यते धोष्यते ।

* साध्=बनाना, करना प० प०, साध्नोति; लृट् सात्स्यति । ऐसे ही शध् ।

* आप् (आप्लृ) प्राप्त करना, प० प०, आप्नोति; लृट्—आप्स्यति ।

* शक् (शक्लृ)=सकना, समर्थ होना शक्नोति; लृट्—शक्ष्यति । अश् (अश्)=व्याप्त करना, आत्म०, अश्नुते; लृट्-अशिष्यते-अक्ष्यते ।

(६) तुदादिगण

तुद्=पीड़ा देना [उभ० प०, सक० अनिट्]

इसके लट् में तुदति—तुदते; लोट् में तुदतु-तुदताम् ; लङ्में अतुदत्-अतुदत; विधिलिङ् में तुदेत् तुदेत; लृट में तोत्स्यति-तोत्स्यते आदि रूप होते हैं। भ्यादि-गणीय धातु के रूप के समान ही तुदादि

---

* वस् और मस् में एक ही प्रकार के साध्नुवः, साध्नुमः आदि रूप होते हैं। लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में साध्नुहि आदि ।

गणीय धातुओं के रूप होते हैं। भ्रस्ज् [भृज्ज्]=भूनना, उभ० प० भृज्जति भृज्जते; लृट्-भ्रक्ष्यति-भ्रक्ष्यते, भर्क्ष्यति - भर्क्ष्यते।
मिल् = मिलना [उभ० प०] मिलति - मिलते; लृट-मेलिष्यति-मेलिष्यते।

स्फुर् = फुरना, फड़कना, पर०, स्फुरति; लृट् — स्फुरिष्यति।

सृज् = उत्पन्न करना, प० प०, सृजति; लृट्-स्रक्ष्यति।

लिख् = लिखना, पर०, लिखति; लृट्-लेखिष्यति।

इष् = [इच्छ्] इच्छा करना पर० इच्छति; लृट् एषिष्यति।

क्षिप् = फेंकना, उभ०, क्षिपति-क्षिपते; लृट् क्षेप्स्यति-क्षेप्स्यते।

लिप् [लिम्प्] = लीपना, उभ० लिम्पति - लिम्पते; लृट् लेप्स्यति-लेप्स्यते।

कृष् = हल से जोतना, उभ०, कृषति-कृषते; लृट् - क्रक्ष्यति-क्रक्ष्यते, कर्क्ष्यति-कर्क्ष्यते।

मुच् (मुच्लृ) [मुञ्च्] = छोड़ना, उभ० मुञ्चति - मुञ्चते; लृट् मोक्ष्यति—मोक्ष्यते।

सिच् (षिच) [सिञ्च्] = सींचना, उभ०, सिञ्चति सिञ्चते लृट्—सेक्ष्यति–सेक्ष्यते।

कृत् (कृती) [कृन्त्] = काटना, पर०, कृन्तति; लृट् कर्तिष्यति-कर्त्स्यति।

(७) रुधादिगण

रुध् (रुधिर्) = रोकना, घेरना [उभ० प० सक०, अनिट्]

	परस्मैपद	लट्		आत्मनेपद		
प्र०	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म०	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उ०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

	पर०	लोट्			आत्मनेपद	
प्र०	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म०	रुन्धि	म्रुन्ध	रुन्ध	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उ०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

	पर०	लङ्			आत्मनेपद	
प्र०	अरुणत्-द्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म०	अरुणत्-द् अरुणः	अरुन्धम्	अरुन्ध	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
उ०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

	पर०	विधिलिङ्			आत्मनेपद	
प्र०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लृट्—रोत्स्यति—रोत्स्यते ।

भिद् (भिदिर्)=फाड़ना [उ० प०, सक०, अनिट्]

	पर०	लट्			आत्मनेपद	
प्र०	भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति	भिन्ते	भिन्दाते	भिन्दते

म०	भिनत्सि	भिन्थः	भिन्थ	भिन्त्से	भिन्दाथे भिन्ध्वे
उ०	भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः	भिन्दे	भिन्द्वहे भिन्द्महे

लोट्—भिनत्तु—भिन्ताम्। विधिलिङ्—भिन्द्यात्-भिन्दीत।

	पर०		लङ्		आत्मनेपद
प्र०	अभिनत्-द्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्	अभिन्त	अभिन्दाताम् अभिन्दत
म०	अभिनत्-द्	अभिन्तम्	अभिन्त	अभिन्थाः	अभिन्दाथाम् अभिन्ध्वम्
उ०	अभिनदम् अभिनः	अभिन्द्व	अभिन्द्म	अभिन्दि	अभिन्द्वहि अभिन्द्महि

लृट्-भेत्स्यति-भेत्स्यते।

ऐसे ही छिद् (छिदिर्)=काटना, फाड़ना, तोड़ना, छेदना, उभ०।

युज् (युजिर्)=जोड़ना, मिलाना, उभ० युनक्ति-युङ्क्ते; लृट् योक्ष्यति-योक्ष्यते।

भुज्=रक्षा करना [पर०]; खाना, भोगना [आत्म०] भुनक्ति-भुङ्क्ते।

(८) तनादिगण

तन् (तनु)=फैलाना [उभ० पदी, सक०, सेट्]

	पर०		लट्		आत्मनेपद	
प्र०	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म०	तनोषि	तनुथः	तनुथ	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ०	तनोमि	तनुवः तन्वः	तनुमः तन्मः	तन्वे	तनुवहे तन्वहे	तनुमहे तन्महे

पर०	लोट्		आत्मनेपद	
प्र० तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	तनुताम्	तन्वाताम् तन्वताम्
म० तनु	तनुतम्	तनुत	तनुष्व	तन्वाथाम् तनुध्वम्
उ० तनवानि	तनवाव	तनवाम	तनवै	तनवावहै तनवामहै

पर०	लङ्		आत्मनेपद	
प्र० अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	अतनुत	अतन्वाताम् अतन्वत
म० अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	अतनुथाः	अतन्वाथाम् अतनुध्वम्
उ० अतनवम्	अतनुव अतन्व	अतनुम अतन्म	अतन्वि	अतनुवहि अतनुमहि
			अतन्वहि	अतन्महि

विधिलिङ् तनुयात् = तन्वीत । लृट्-तनिष्यति-तनिष्यते ।

कृ (डुकृञ्) = करना [उभ०, सक०, अनिट्]

पर०	लट्		आत्मनेपद		
प्र० करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० करोषि	कुरुथः	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० करोमि	कुर्वः	कुर्मः	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

पर०	लोट्		आत्मनेपद		
प्र० करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्

म०	कुरु	कुरुतम	कुरुत	कुरुष्व	कुर्वाथाम्
					कुरुध्वम्
उ०	करवाणि	करवाव	करवाम	करवै	करवावहै
					करवामहै

	पर०	लङ्		आत्मनेपद	
प्र०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अकुरुत	अकुर्वाताम्
					अकुर्वत
म०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्
					अकुरुध्वम्
उ०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	अकुर्वि	अकुर्वहि
					अकुर्महि

	पर०	विधिलिङ्		आत्मनेपद	
प्र०	कुर्यात्	कुर्याताम	कुर्युः	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्
					कुर्वीरन्
म०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्
					कुर्वीध्वम
उ०	कुर्याम	कुर्याव	कुर्याम्	कुर्वीय	कुर्वीवहि
					कुर्वीमहि

लृट् - करिष्यति— करिष्यते ।

मन् (मनु)=मानना, समझना [आत्म० सक० सेट्]
मनुते, मनिष्यते ।

(९) क्र्यादिगण

क्री (डुक्रीञ्)=खरीदना [उभ० प०, सक०, अनिट्]

	पर०	लट्		आत्म०		
प्र०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

	पर०	लोट्		आत्म०		
प्र०	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ०	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

	पर०	लङ्		आत्म०		
प्र०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म०	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

	पर०	विधिलिङ्		आत्म०		
प्र०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म०	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्

उ० क्रीणीयाम् क्रीणीयाव क्रीणीयाम क्रीणीय क्रीणीवहि क्रीणीमहि

लृट्—क्रेष्यति—क्रेष्यते ।

पू (पूञ्) [पु] = पवित्र करना, उभ० पुनाति-पुनीते; लृट्-पविष्यति-पविष्यते । इसीप्रकार लू (लूञ्) [लु] = काटना, धू (धूञ्) [धु] = हिलाना आदि धातुओं के रूप होते हैं ।

मन्थ् [मथ्] = महना, पर० मथ्नाति; लृट् मन्थिष्यति ।

बन्ध् [बध्] = 'बाँधना, पर० बध्नाति; लृट्—भन्त्स्यति ।

ज्ञा [जा = जानना, पर०, जानाति; लृट्—ज्ञास्यति ।

स्तॄ (स्तॄञ्) [स्तृ] = आच्छादित करना, उभ०, स्तृणाति-स्तृणीते; लृट्-स्तरिष्यति-स्तरीष्यति-स्तरिष्यते स्तरीष्यते ।

(१०) चुरादिगण

इस गण के सभी धातुओं से स्वार्थ में णिच् (इ) होता है। ये णिजन्त धातु अनेकाच् होने के कारण सभी सेट् और सभी साधारणतः उभयपदी होते हैं। इनके रूप भ्वादिगणीय इकारान्त 'श्रि' धातुके समान होते हैं ।

चुर् + णिच् = चोरि = चुराना [उभ० प०, सक०, सेट्]

लट्—चोरयति-चोरयते; लोट् -चोरयतु-चोरयताम्;

लङ्-अचोरयत्-अचोरयत; वि० लि०-चोरयेत्-चोरयेत;

लृट्—चोरयिष्यति-चोरयिष्यते ।

ज्ञा + णिच् = ज्ञापि = आज्ञा देना, ज्ञापयति-ज्ञापयते; लृट्-ज्ञापयिष्यति-ज्ञापयिष्यते ।

वच् + णिच् [वाचि] = बाँचना, पढ़ना, वाचयति-वाचयते ।
छद् + णिच् [छादि] = ढाँकना, छादयति-छादयते ।
स्वद् + णिच् [स्वादि] = चखना, स्वादयति-स्वादयते ।
दल् + णिच् [दालि] = फाड़ना, दालयति-दालयते ।
लल् + णिच् [लालि] = चाहना, लालयति लालयते ।
क्षल् + णिच् [क्षालि] = धोना, क्षालयति-क्षालयते ।
वृज् + णिच् [वर्जि] = छोड़ना, वर्जयति-ते; वर्जयिष्यति-ते ।
तुल् + णिच् [तोलि] = तोलना तोलयति ते; तोलयिष्यति-ते ।
दुल् + णिच् [दोल] = झुलाना, दोलयति-ते; दोलयिष्यति-ते ।
मृज् + णिच् [मार्जि] = शुद्ध करना, मार्जयति-ते; मार्जयिष्यति-ते
पाल् + णिच् [पालि] = रक्षा करना, पालयति-ते; पालयिष्यति-ते
पूज् + णिच् [पूजि] = पूजा करना, पूजयति ते; पूजयिष्यति-ते
कृत् + णिच् [कीर्ति] = वर्णन करना, कीर्तयति-ते; कीर्तयिष्यति-ते
चिन्त् + णिच् [चिन्ति] = सोचना, विचारना, चिन्तयति-ते ।
अर्ज = प्राप्त करना, अर्जयति-ते । अर्च् = पूजना, अर्चयति-ते ।
तर्ज् = झिड़कना धमकाना, तर्जयति-ते । मन्त्र् = परामर्श करना, 'गुप्तविचार' करना मन्त्रयति-ते । शब्द् = बोलना, शब्दयति-ते ।

प्रत्ययान्त धातु

(१) ण्यन्त-प्रकरण

दूसरे से क्रिया करवाने को प्रेरणा कहते हैं । उस प्रेरणा के अर्थ में सब धातुओं से णिच् (इ) प्रत्यय लगता है । अर्थात् प्रेषणादि रूप प्रयोजक व्यापार में धातु से णिच् होता है । यथा गुरुः पठितुं प्रेरयति = पाठयति । (गुरु पढ़ाता है) । णिजन्त धातुओं के रूप चुरादिगणीय स्वार्थिक णिजन्त धातुओं के समान होते हैं । सभी ण्यन्तधातु उभ० सक०, सेट् होंगे । यथा—

मूलधातु	ण्यन्त धातु	अर्थ	लट्
भू	भावि	होने की प्रेरणा करना	भावयति-ते
अद्	आदि	खिलाना	आदयति-ते
हु	हावि	होम कराना	हावयति-ते
दिव्	देवि	खेलाना इत्यादि	देवयति-ते
सु	सावि	नहलाना इत्यादि	सावयति-ते
तुद्	तोदि	पीड़ा दिलाना	तोदयति ते
रुध्	रोधि	घिराना	रोधयति-ते
तन्	तानि	फैलवाना	तानयति-ते
क्री	क्रापि	खरीदवाना	क्रापयति-ते
चुर = चोरि	चोरि	चुरवाना	चोरयति-ते

लृट्	लोट्	लङ्	वि० लि०
भावयिष्यति-ते	भावयतु भावयताम्	अभावयत्-त	भावयेत्-त
आदयिष्यति-ते	आदयतु आदयताम्	आदयत्-त	आदयेत्-त
हावयिष्यति-ते	हावयतु हावयताम्	अहावयत्-त	हावयेत्-त
देवयिष्यति-ते	देवयतु देवयताम्	अदेवयत्-त	देवयेत्-त
सावयिष्यति-ते	सावयतु सावयताम्	असावयत्-त	सावयेत्-त
तोदयिष्यति-ते	तोदयतु तोदयताम्	अतोदयत्-त	तोदयेत्-त
रोधयिष्यति-ते	रोधयतु रोधयताम्	अरोधयत्-त	रोधयेत्-त
तानयिष्यति-ते	तानयतु तानयताम्	अतानयत्-त	तानयेत्-त
क्रापयिष्यति-ते	क्रापयतु क्रापयताम्	अक्रापयत्-त	क्रापयेत्-त
चोरयिष्यति-ते	चोरयतु चोरयताम्	अचोरयत्-त	चोरयेत्-त

(२) सन्नन्त प्रकरण

कोई क्रिया करने की 'इच्छा' अर्थ में उस क्रिया बोधक धातु में विकल्प से सन् (स) प्रत्यय लगता है। 'सन्' प्रत्यय लगने पर मूल धातु में 'द्वित्व' तथा अभ्यास कार्य होते हैं। सन्नन्त धातु मूल धातु के अनुसार परस्मैपदी या आत्मनेपदी या उभयपदी होते हैं। इनके रूपों में भ्वादिगणीय धातुओं के सदृश 'शप् (अ)' विकरण होता है। जैसे पठितुमिच्छति = पिपठिषति।

मूलधातु	सन्नन्त धातु	अर्थ	लट्
भू	बुभूष	होने की इच्छा करना	बुभूषति
अद्	जिघत्स	खाने की इ०	जिघत्सति
हु	जुहूष	होम करने की इ०	जुहूषति
दिव्	दिदेविष	खेलने की इ०	दिदेविषति
सु	सुसूष	नहाने की इ०	सुसूषति
तुद्	तुतुत्सु	पीड़ा देने की इ०	तुतुत्सति
रुध	रुरुत्स	घेरने की इ०	रुरुत्सति
तन्	तितनिष	फैलाने की इ०	तितनिषति
क्री	चिक्रीष	खरीदने की इ०	चिक्रीषति
चुर्	चुचोरयिष	चुराने की इ०	चुचोरयिषति

लृट्	लोट्	लङ्	वि० लि०
बुभूषिष्यति	बुभूषतु	अबुभूषत्	बुभूषेत्
जिघत्सिष्यति	जिघत्सतु	अजिघत्सत्	जिघत्सेत्
जुहूषिष्यति	जुहूषतु	अजुहूषत्	जुहूषेत्

दिदेविषिष्यति	दिदेविषतु	अदिदेविषत्	दिदेविषेत्
सुसूषिष्यति	सुसूषतु	असुसूषत्	सुसूषेत्
तुतुत्सिष्यति	तुतुत्सतु	अतुतुत्सत्	तुतुत्सेत्
रुरुत्सिष्यति	रुरुत्सतु	अरुरुत्सत्	रुरुत्सेत्
तितनिषिष्यति	तितनिषतु	अतितनिषत्	तितनिषेत्
चिक्रीषिष्यति	चिक्रीषतु	अचिक्रीषत्	चिक्रीषेत्
चुचोरयिषिष्यति	चुचोरयिषतु	अचुचोरयिषत्	चुचोरयिषेत्

(३) यङ्न्त प्रकरण

किसी क्रियाको बार-बार या बहुत करने को क्रिया समभिहार कहते हैं। इस अर्थ में *हलादि एकाच्* धातुओं में विकल्पसे 'यङ्' 'य' प्रत्यय लगता है। गत्यर्थक धातुओं में *वक्रगमन* के अर्थ ही में और लुपादि ❀ धातुओं में निन्दित क्रिया के अर्थ में 'यङ्' होता है, 'क्रियासमभिहार' में नहीं। यङ् प्रत्यय के भी लगने पर मूल धातु में 'द्वित्व' एवं अभ्यास कार्य होते हैं। यङ्न्त धातु केवल *आत्मनेपदी* होते हैं और उन में भ्वादि वत् 'शप्' विकरण होता है। यथा—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति बोभूयते।

मूल धातु	यङ्न्त धातु	अर्थ	लट्
भू	बोभूय	बारबार या बहुत होना	बोभूयते
रुद्	रोरुद्य	,, ,, रोना	रोरुद्यते
हु	जोहूय	,, ,, होम क०	जोहूयते

❀ लुपादि = लुप, सद्, चर्, जप्, जभ्, दह्, दश्, गृ।

व्रज्	वाव्रज्य	वक्र गमन करना	वाव्रज्यते
गम्	जङ्गम्य	,,	जङ्गम्यते
चर्	चञ्चूर्य	गर्हितं चरति	चञ्चूर्यते
जप्	जञ्जप्य	गर्हितं जपति	जञ्जप्यते
लृट्	लोट्	लङ्	वि० लि०
बोभूयिष्यते	बोभूयताम्	अबोभूयत	बोभूयेत
रोरुदिष्यते	रोरुद्यताम्	अरोरुद्यत	रोरुद्येत
जोहूयिष्यते	जोहूयताम्	अजोहूयत	जोहूयेत
वाव्रजिष्यते	वाव्रज्यताम्	अवाव्रज्यत	वाव्रज्येत
जङ्गमिष्यते	जङ्गम्यताम्	अजङ्गम्यत	जङ्गम्येत
चञ्चूरिष्यते	चञ्चूर्यताम्	अचञ्चूर्यत	चञ्चूर्येत
जञ्जपिष्यते	जञ्जप्यताम्	अजञ्जप्यत	जञ्जप्येत

(४) नामधातु प्रकरण

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय शब्दों को *नाम* कहते हैं। उन में प्रत्यय जोड़कर जो धातु बनते हैं उन्हें *नाम धातु* कहते हैं। इनके रूप भ्वादिगणीय धातु के समान होते हैं। इनमें भी 'शप' होता है।

नामधातु बनाने के ७ प्रत्यय हैं—१ क्यच्, २ काम्यच्, ३ क्यङ्, ४ क्यष्, ५ क्विप् ६ णिच् और ७ णिङ्।

(१) क्यच् (य) [परस्मैपद]

(१) "*अपने लिए* कुछ पाने की इच्छा करने" के अर्थ में *कर्म* पद के आगे तथा (२) आचार अर्थ में (अर्थात् किसी को दूसरे के समान मानने समझने या देखने के अर्थ में)

उपमानवाचक कर्म पद के आगे और कहीं पर कहीं के समान काम करने के अर्थ में उपमानवाचक अधिकरण पद के आगे इन्हीं पूर्वोक्त दो अर्थों में 'क्यच्' प्रत्यय होता है। यथा—

(१) सआत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति = वह अपने लिए एक पुत्र चाहता है।

स आत्मनः पुत्रम् एषिष्यति = पुत्रीयिष्यति = वह अपने लिए एक पुत्र चाहेगा।

(२) शिष्यं पुत्रमिव आचरति = शिष्यं पुत्रीयति = वह शिष्य को पुत्र सा समझता है।

कुट्यां प्रासादे इव आचरति = कुट्यां प्रासादीयति = कुटी में महल की तरह रहता है।

(२) काम्यच् (काम्य) [परस्मैपद]

अपने लिए कुछ पानेकी इच्छा करने के अर्थ में कर्म पद के आगे 'काम्यच्' प्रत्यय लगता है। इसके आनेपर कर्म पदकी विभक्ति का लोप हो जाता है। 'काम्यच्' में 'च्' चला जाता है। इसके पूर्व विसर्ग हो तो उसका 'स्' और 'नकार' हो तो उसका लोप हो जाता है। यथा—

स आत्मनः पुत्रमिच्छति = सपुत्र काम्यति = वह अपने लिए पुत्र चाहता है।

ऐसेही पुत्र काम्यिष्यति, पुत्रकाम्यतु, अपुत्रकाम्यत् इत्यादि।

(३ क्यङ् (य) [आत्मने पद]

(१) उपमान वाचक कर्तृ पद के आगे आचार अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। उसके पूर्व सकारान्त शब्दों में 'ओजस्' और 'अप्सरस्' शब्द के सकारका नित्य और अन्यान्य शब्दों के सकार का विकल्प से लोप हो जाता है। यदि भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द रहता है तो पुंवद्भाव भी हो जाता है।

(२) इसके अतिरिक्त *अभूत तद्भाव* अर्थमें भी 'क्यङ्' होता है। क्यङ् प्रत्ययान्त धातु आत्मने पदी होते हैं। यथा—

(१) कृष्ण इवाचरति = कृष्णायते। शिष्यः पुत्र इवाचरति = शिष्यः पुत्रायते। ओजः [ओजस्वी] इवाचरति = ओजायते। विद्वानिवाचरति = विद्वायते—विद्वस्यते इत्यादि।

(२) अभूत तद्भाव अर्थ में भृश, शीघ्र, चपल, मन्द, पण्डित. उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस्, उन्मनस् आदि शब्दों में 'क्यङ्' लगता है। पूर्व शब्द के अन्तिम हल् का लोप हो जाता है।

यथा—अभृशो भृशो भवति = भृशायते। असुमनाः सुमनाः भवति = सुमनायते इत्यादि।

(४) क्यष् (य) [उभयपद]

लोहितादि तथा तद्धित 'डाच्' प्रत्ययान्त शब्दों में होने के अर्थ में 'क्यप् (य)' प्रत्यय लगता है। 'क्यष्' प्रत्ययान्त धातु उभयपदी होता है। यथा—लोहितायति—लोहितायते। पटपटायति-पटपटायते आदि।

(५) क्विप् (०) [परस्मैपद]

आचार अर्थ में, क्यङ के समानही, उपमानवाचक कर्तृ-बोधक सभी प्रातिपदिकों मे 'क्विप्' प्रत्यय लगता है। यथा—कृष्ण इवाचरति = कृष्णाति। कविरिव = कवयति इत्यादि।

(६) णिच् (इ) [उभयपद]

(१) करने और (२) कहने के अर्थां में कर्म बोधक प्रातिपदिकों मे तथा (३) अतिक्रमण के अर्थ में करण बोधक प्रातिपदिकों में 'णिच्' प्रत्यय लगता है और इसमें 'इष्ठन्' प्रत्यय के समानही प्राति पदिकों में वर्णविकार हुआ करते हैं।

यथा—पटुं करोति=पटयति=पटु बना देता है। हितम् आचष्टे=हितयति=हित कहता है। अश्वेन नदीमतिक्रामति= नदीम् अश्वयति=नदी को अश्व से पार करता है। ऐसे ही हस्तिना=हस्तयति। चरणाभ्यां=चरणयति।

७ णिङ् (३) [आत्मनेपद]

'पुच्छ' शब्द से उत्क्षेपणादि अर्थ में 'भाण्ड' शब्द से इकट्ठा करने के अर्थ में और 'चीवर' शब्द से अर्जन तथा परिधान अर्थों में णिङ् होता है। यथा—उत्पुच्छयते। विपुच्छयते। परिपुच्छयते। संभाण्डयते। भिक्षुःसंचीवरयते।

इति तिङन्त प्रकरणम्

१० आत्मनेपद प्रक्रिया

आत्मनेपद तथा परस्मैपद के सम्बन्ध में साधारणतः सामान्य प्रकरण में बतलाया गया है।

क्रिया का फल यदि कर्तृगामी हो (अर्थात् काम करनेवाला ही यदि उस कर्मके फलको प्राप्त करे) तो* 'स्वरितेत्' 'ञित्' तथा णिजन्त धातुओं से *आत्मनेपद* होता है और क्रिया का फल यदि परगामी हो तो पूर्वोक्त धातुओं से *परस्मैपद* होता है। यथा— सपचते (वह अपने लिए पकाता है) तथा सपचति (वह दूसरों के लिए पकाता है)। किन्तु कुछ धातुओं से नियमतः आत्मनेपद ही तथा कुछ से परस्मैपद ही होता है। जैसे—† 'अनुदात्तेत्' (एध आदि) तथा ङित् (शीङ आदि) धातुओं से आत्मनेपद ही होता है। ‡ भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में नियमतः आत्मने-

---

* "स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले" णिचश्च (पा० सू०)

† "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" ‡ "भावकर्मणोः" (पा० सू०)

पद ही होता है। यथा—दृश्यते बालेन। पठ्यते छात्रेण: ग्रन्थः। कुछ उपसर्गों के साथ तथा कुछ अर्थों में कतिपय धातुओं से आत्मनेपद ही होता है।

* नि' उपसर्ग से परे 'विश्' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—निविशते। किन्तु प्रविशति आदि में परस्मैपद ही होता है।

† परि, वि तथा अव उपसर्गों के बाद 'क्री' धातु से आत्मनेपद ही होता है। यथा—पुस्तकम् परिक्रीणीते वा अवक्रीणीते (पुस्तक खरीदता है)। अन्नं विक्रीणीते (अन्न बेचता है)।

‡ वि और परा उपसर्गों से परे 'जि' धातु से आत्मनेपद होता है। जैसे—विजयतां देवः। शत्रु पराजयस्व।

†† 'आ' उपसर्ग के उत्तरवर्ती 'दा' धातु से आत्मनेपद ही होता है यदि कर्ता का अपना मुँह बाने का अर्थ न प्रगट होता हो। यथा—छात्रा विद्यामाददते (छात्र विद्या ग्रहण करते हैं)। किन्तु मुँह बाने के अर्थ में बालः मुखं व्याददाति। परन्तु जहाँ पर कोई दूसरे का मुख विदारण करता है वहाँ आत्मनेपद होता ही है। जैसे—पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखं व्याददते।

§ अनु, सम्, परि, आ—इन उपसर्गों से परे 'क्रीड' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—अनुक्रीडते, परिक्रीडते।

विशेष—× कूजन अर्थ में सम् पूर्वक 'क्रीड' परस्मैपदी ही रहता है। यथा—संक्रीडति चक्रम्।

---

* "नेर्विशः" † "परिव्यवेभ्यः क्रियः" ‡ "विपराभ्यां जेः"

†† "आङो दोऽनास्य विहरणे" (पा० सू०) 'पराङ्ग कर्मकान्न निषेधः (वा०)

§ "क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च" (पा० सू०) × समोऽकूजने (वा०)

* सम्, अव, प्र, वि-इन उपसर्गों से परे 'स्था' से आत्मनेपद होता है। यथा—संतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, वितिष्ठते।

† प्रतिज्ञा के अर्थों में 'आ' उपसर्ग से परे 'स्था' आत्मनेपदी होता है। यथा—वैयाकरणाः शब्दं नित्यमातिष्ठन्ते (वैयाकरण शब्द को नित्य मानते हैं)।

†† प्रकाशन (अर्थात् अपने अभिप्राय को अभिव्यक्ति) तथा स्थेय=विवादास्पद विषय के निर्णायक इन अर्थों में 'स्था' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—गोपी कृष्णाय तिष्ठते= गोपी अपना आशय प्रगट करती है। स्थेयाख्य में-संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः=जो संशय में पड़कर कर्ण आदि को निर्णायक रूप में मानता है।

‡ यदि उठने का अर्थ न रहे तो 'उद्' के आगे 'स्था' धातु से परे आत्मनेपद होता है। यथा—ज्ञानाय उत्तिष्ठते=ज्ञान के लिए प्रयत्न करता है। किन्तु उठने के अर्थ में आसनात् उत्तिष्ठति।

+ 'उप' उपसर्ग से परे 'स्था' धातु से अधोलिखित अर्थों में आत्मनेपद होता है। (क) वैदिक मन्त्र के द्वारा देवता की स्तुति करने के अर्थ में; यथा—आग्नेय्या. आग्नीध्रमुपतिष्ठते= अग्नि देवताके मन्त्र से अग्निध्र की स्तुति करता है। किन्तु पत्नी

---

* "समवप्रविभ्यः स्थः" (पा० सू०) † 'आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम्' (वा०) †† प्रकाशन स्थेयाख्ययोश्च" ‡ "उदोऽनूर्ध्वं कर्मणि" + "उपान्मन्त्रकरणे" (पा० सू०) 'उपाद्देवपूजासङ्गतिकरण मित्रकरण पथिष्विति वाच्यम्, (वा०)

पतिमुपतिष्ठति यौवनेन। (ख) देवता की उपासना के अर्थ में; यथा—सूर्यमुपतिष्ठते=सूर्य को उपासना करता है। (ग) संगतिकरण (संगम) के अर्थ में; यथा—प्रयागे गंगायमुनामुपतिष्ठते (घ) मित्र बनाने के अर्थ में; यथा—छात्रः छात्रमुपतिष्ठते=छात्र छात्र को मित्र बनाता है। (ङ) मार्ग आगे की ओर बढ़ता है—इस अर्थ में; यथा—पन्थाः नगरमुपतिष्ठते=यह रास्ता नगर को जाता है।

* लिप्सा अर्थ रहने पर उप+स्था से आत्मनेपद विकल्प से होता है। याचकः प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठतिवा।

† अकर्मक 'उप' पूर्वक 'स्था' से आत्मनेपद होता है। यथा भोजनकाले उपतिष्ठते=भोजन के समय में उपस्थित होता है।

‡ 'उद्' और 'वि' से परे अकर्मक वा स्वांगकर्मक 'तप्' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—ग्रीष्मे सूर्यः उत्तपते; वितपते वा। सः अग्नौ पाणिम् उत्तपते, वितपते वा। किन्तु सकर्मक तथा पराङ्कर्मक होने पर सुवर्णकारः सुवर्णम् उत्तपति, वितपतिवा। माता बालस्य पाणिमुत्तपति, वितपति वा।

* 'आङ्' से परे अकर्मक या स्वाङ्ग कर्मक 'यम्' तथा 'हन्' धातुओं से आत्मनेपद होता है। यथा वृक्षोऽयम् आयंस्यते=यह वृक्ष फैलेगा। स पाणिम् आयच्छते, आहते वा=वह हाथ फैलता है या पीटता है।

---

* 'वा लिप्सायामितिवक्तव्यम्' (वा०) † "अकर्मकाच्च (पा० सू०)
‡ "उद्विभ्यांतपः" (पा० सू०) 'स्वाङ्ग कर्मकाच्चेतिवक्तव्यम्' (वा०)
†† "आङोयमहनः"

* 'उप' पूर्वक 'यम्' धातु से आत्मनेपद होता है यदि पाणिग्रहण रूप स्वीकार अर्थ रहे। यथा—भार्यामुपयच्छते। भट्टि ने तो स्वीकार मात्र में इसका प्रयोग किया है। यथा उपायंस्त महास्त्राणि।

† 'सम्' पूर्वक अकर्मक 'गम्' तथा 'ऋच्छ्' धातुओं से आत्मनेपद होता है। यथा—वाक्यं संगच्छते। समृच्छते।

‡ सम्' पूर्वक अकर्मक 'ऋ' 'श्रु' तथा 'दृश्' से आत्मनेपद होता है। यथा—प्रभोः कृपया अन्धोऽपि संपश्यते। संशृणुष्वकपे!; हितान्नयः संश्रृणुते स किं प्रभुः। यहाँ कर्म की अविवक्षा करने से श्रु धातु अकर्मक है।

†† 'आ' (ङ्) पूर्वक 'ह्वे' (ञ्) धातु से स्पर्धा के अर्थ में आत्मनेपद होता है। मल्लः मल्लम् आह्वयते। स्पर्धा अर्थ नहीं रहने पर पिता पुत्रम् आह्वयति।

§ वृत्ति (स्वच्छन्दगति), सर्ग (उत्साह) तथा तायन (वृद्धि) अर्थों में उपसर्ग रहित 'क्रम्' से या केवल 'उप' और 'परा' पूर्वक 'क्रम्' से आत्मनेपद होता है। यथा—शास्त्रे क्रमते बुद्धिः = शास्त्र में बुद्धि अप्रतिहत है। अध्ययनाय क्रमते = पढ़ने के लिए उत्साह करता है। काचे प्रकाशः क्रमते = शीशे में प्रकाश बढ़ता है।

---

* "उपाद्यमः स्वकरणे" † "समो गम्यृच्छिभ्याम्" (पा० सू०)
‡ "अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च" (वा०) †† स्पर्द्धायामाङः" § "वृत्तिसर्गतायनेषुक्रमः"
"उपपराभ्याम्" (पा० सू०)

इसी तरह उपक्रमते, पराक्रमते।

❀ 'आ (ङ्)' पूर्वक 'क्रम्' धातु से ज्योति के उद्गमन अर्थ में आत्मनेपद होता है। यथा—सूर्यः आक्रमते = सूर्य उदित हो रहे हैं। किन्तु आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्। यहाँ ज्योति का उद्गमन नहीं है, अतः आत्मनेपद नहीं होता है।

† अपलाप रूप अर्थ रहने पर 'ज्ञा' धातु से आत्मनेपद होता है। यदि 'ज्ञा' धातु अकर्मक हो तो भी आत्मनेपद होता है। यथा—शतम् अपजानीते = सौ रुपये का अपलाप करता है।

सर्पिषो जानीते।

†† 'सम्' और 'प्रति' पूर्वक 'ज्ञा' धातु से परे अनाध्यान (स्मरण से भिन्न) अर्थ में आत्मनेपद होता है। हनुमान् सीतां समजानीत = हनुमान ने सीता को पहचाना। शतं प्रतिजानीते = सौ रुपये स्वीकार करता है।

‡ 'उद्' पूर्वक सकर्मक 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—स धर्मम् उच्चरते = वह धर्म का उल्लङ्घन करता है। किन्तु वाष्पम् उच्चरति = भाफ ऊपर उठती है।

§ तृतीयान्त पद के साथ प्रयुक्त 'सम्' पूर्वक 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है। रथेनसञ्चरते = रथ से जाता है।

❀ "आङ उद्गमने" (पा० सू०) 'ज्योतिरुद्गमनइतिवाच्यम्' (वा०) † "अपह्नवेज्ञः" "अकर्मकाच्च" †† "सम्प्रतिभ्यामनाध्याने" ‡ "उदश्चरः सकर्मकात्" § 'समस्तृतीयायुक्तात्'

* सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ तथा दृश् धातुओं से आत्मनेपद होता है। यथा:— धर्मं जिज्ञासते। गुरून् शुश्रूषते। सुस्मूर्षते। दिदृक्षते।

† रक्षण से भिन्न अर्थ में अर्थात् खाने और भोगने के अर्थों में 'भुज्' धातु से आत्मनेपद होता है। यथा—ओदनं भुङ्क्ते = भात खाता है। वृद्धो जनो दुःख शतानि भुङ्क्ते = वृढ़े लोग सैकड़ों दुःख भोगते हैं। किन्तु रक्षण अर्थ में राजा महीं भुनक्ति = राजा पृथ्वी का पालन करता है। निम्नलिखित स्थितियों में 'वद्' धातु से आत्मनेपद ही होता है।

‡ (१) 'अप' पूर्वक 'वद्' से कर्तृगामी क्रियाफल में; यथा—चौरो न्यायमपवदते।

†† (२) भासन (युक्तिपूर्वक अच्छा बोलने), उपसंभाषा (सान्त्वना देने), ज्ञान, यत्न, विमति (विपरीत कहने), उपमन्त्रण (प्रार्थना करने) के अर्थों में, यथा—पण्डितः शास्त्रे वदते प्रभुः भृत्यानुपवदते। क्षेत्रे वदते। क्षेत्रे विवदन्तेकृषकाः। याचकः दातारमुपवदते।

§ (३) बहुत मनुष्यों के एक साथ बोलने के अर्थ में; यथा—संप्रवदन्ते छात्राः। किन्तु संप्रवदन्ति काकाः।

---

* "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" (पा० सू०) † "भुजोऽनवने" ‡ "अपाद्वदः" †† "भासनोपसंभाषा ज्ञानयत्न विमत्युपमन्त्रणेषु वदः" § "व्यक्तवाचां समुच्चारणे"

* (४) मनुष्य यदि कर्त्ता हो तो 'अनु' पूर्वक अकर्मक 'वद' से; यथा—शिष्यः गुरोरनुवदते = शिष्य गुरु जैसा बोलता है।

किन्तु भाषया संस्कृतमनुवदति।

† (५) बहुत लोगों का एक साथ परस्पर विरोधी बात कहने के अर्थ में विकल्प से; यथा—रोगे विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वा वैद्याः।

इति आत्मनेपद प्रक्रिया

११ परस्मैपद प्रक्रिया

‡ आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातुओं से कर्त्ता में परस्मैपद होता है। यथा—अस्ति, भवति आदि।

अधोलिखित स्थलों में केवल परस्मैपद ही होता है।

†† 'अनु' और 'परा' उपसर्गों से परे 'कृ' धातु से केवल परस्मैपद होगा। यथा—बालः यूनोऽनुकरोति। स विद्वान् परा करोति।

§ अभि, प्रति अति—इन उपसर्गों से परे 'क्षिप्' धातु से केवल परस्मैपद होगा। यथा—अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति।

× 'प्र' से परे 'वह' और 'परि' से परे 'मृष्' से परस्मैपद ही हो। यथा—वायुः प्रवहति। स परिमृष्यति, परिमर्षतिवा।

---

* "अनोरकर्मकात्" † "विभाषा विप्रलापे" (पा० सू०)

‡ "शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्" †† 'अनुपराभ्यां कृञः" § अभिप्रत्यतिभ्य: क्षिपः" × 'प्राद्वहः" 'परेर्मृषः"

* वि, आङ्, परि तथा उप पूर्वक 'रम्' धातु से परस्मैपद हो हो। यदि उप+रम् अकर्मक हो तो विकल्प से परस्मैपद हो। यथा--कार्यात् विरमति। अवकाशे आरमन्ति'। प्रियं दृष्ट्वा परिरमति। सभापतिर्वक्तारम् उपरमति' किन्तु, बालकाः क्रीडनात् उपरमन्ते, उपरमन्ति वा।

† बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु तथा स्रु इन आठ ण्यन्त धातुओं से परे केवल परस्मैपद हो। यथा—बोधयति कमलानि। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखानि। जनयति सुखानि। अध्यापयति पुराणानि। प्रावयति कष्टानि। द्रावयति घृतानि। स्रावयति जलानि।

निगरण (भक्षण) और चलन (कम्पन) अर्थवाले ण्यन्त धातुओं से परे केवल परस्मैपद होता है। यथा--निगारयति; आशयति; भोजयति। चलयति, कम्पयति।

‡ किन्तु ण्यन्त 'अद्' धातु में यह नियम नहीं लगता है। अतः आदयते, आदयति वा अन्नं बटुना।

इति परस्मैपद प्रक्रिया

---

* 'व्याङ्परिभ्यो रमः" 'उपाच्च" 'विभाषाऽकर्मकात्"

+ "बुधयुध नश जनेङ् प्रु द्रु स्रुभ्यो णेः" [पा० सू०]

‡ "निगरण चलनार्थेभ्यश्च" (पा० सू०) 'अदेः प्रतिषेधः' [वा०]

[१२] अथ कृदन्त प्रकरणम्

जिस प्रकार धातुओं में 'तिङ्' प्रत्यय जोड़कर क्रियापद बनाये जाते हैं उसी प्रकार उनमें कुछ प्रत्यय जोड़कर प्रातिपदिक अर्थात् मूल शब्द बनाये जाते है। इन्हीं प्रत्ययों को 'कृत्' (करनेवाला अर्थात् धातुओं से मूलशब्द बनानेवाला) कहते हैं और इन प्रत्ययों से बने शब्द 'कृदन्त' कहलाते हैं। इनमें उणादि प्रत्ययों को छोड़कर कृत् प्रत्यय लगभग ८० हैं। इन में तव्यत् तव्य; अनीयर, केलिमर, यत्, ण्यत्, क्यप्,—ये 'कृत्य' प्रत्यय कहलाते हैं।

❀ इन 'कृत्' प्रत्ययों में 'कृत्य' प्रत्यय, 'क्त' प्रत्यय और 'खलर्थ' प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं। अवशिष्ट कृत् प्रत्ययों में कुछ ल्युट्, घञ् क्तिन् आदि प्रत्ययों को छोड़कर और प्रत्यय साधारणतः † कर्त्ता में होते हैं।

‡ १ तव्य (त्), २ तव्य, ३ अनीय (र्), ४ केलिमर् [एलिम] सकर्मक धातुओं से कर्म में तथा अकर्मक धातुओं से भाव में उपर्युक्त चारों प्रत्यय होते हैं। यथा—धर्मः चेतव्यः। पुष्पं चयनीयम्। माता पूजनीया। ओदनः पचेलिमः। काष्ठानि भिदेलिमानि। शयितव्यम्, शयनीयं वा शिशुना इत्यादि।

❀ "तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः" † "कर्तरिकृत्" (पा० सू०)

‡ "तव्यत्तव्यानीयरः" (पा० सू०) 'केलिमर उपसंख्यानम्' (का० वा०)

नोट—केवल 'वस्' धातु से कर्ता में भी तव्य प्रत्यय होता है। यथा—वसतीति=वास्तव्यः। यह 'तव्य' प्रत्यय णित होता है ॐ।

"अचोयत्" (पा० सू०) ५ यत् (य)

अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यथा—जि–जेयम्। नी–नेयम्। दा–देयम्। पा–पेयम्। गा–गेयम् इत्यादि। इसके अतिरिक्त शप्, पूलभ् आदि पवर्गान्त अदुपध धातुओं से तथा शक सह, एवं अनुपसर्गक गद्, मद्, चर् यम् धातुओं से तथा तक्, शस्, चत् आदि आदि धातुओं से यत् प्रत्यय होता है।

"ऋहलोर्ण्यत्" (पा० सू०) ६ ण्यत् (य)

ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से 'ण्यत्' होता है। यथा—कृ+ण्यत् (य)=कार्यम्। हृ–हार्यम्। धृ–धार्यम्। वृष+ण्यत्=वर्ष्यम् इत्यादि।

"एतिस्तु शास्वृदृजुषः क्यप्" (पा० सू०) ७ क्यप् (य)

इ, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् तथा वृत् वृध् आदि अन्यान्य धातुओं से क्यप् होता है।

नोट—पित् कृत् प्रत्यय के परे ह्रस्वान्त धातु में तुक् (त्) हो जाता है। यथा— इ+क्यप् (य)=इत्यः। ऐसेही स्तु–स्तुत्यः। शास्–शिष्यः। वृ+वृत्यः। आ+दृ आदृत्यः। जुष्–जुष्यः। वृत्यम्, वृध्यम् आदि।

विशेष—† राज्ञा सोतव्यः वा राजा (सोमः) सूयते अत्र (राजन् +सू+क्यप्)=राजसूयः—राजसूयम्। सरति आकाशे इति सूर्यः

ॐ 'वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च' [वा०]

† "राजसूय सूर्य मृषोद्य रुच्य कुप्य कृष्टपच्याऽव्यथ्याः" [पा० सू०]

(सृ + क्यप्) । मृषा + वद् + क्यप् = मृषोद्यम् । रुच्+क्यप् = रुच्यम् । गुप + क्यप् = कुप्यम् (सोना चाँदी से भिन्न धन) । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते = कृष्टपच्याः (कृष्ट+पच्+क्यप्) । न व्यथते = अव्यथ्यः (न + व्यथ् + क्यप्) ।

"ण्वुल्तृचौ" (पा० सू०) [ण्वुल् (वु=अक) तृच् (तृ)]

सभी धातुओं से कर्ता में 'ण्वुल् (अक)' और 'तृच्' प्रत्यय होते हैं । यथा—कृ+ण्वुल् (अक)= कारकः । कृ+तृ=कर्ता । पठ्-पाठकः-पठिता । हृ—हारकः-हर्ता । नी-नायकः-नेता । दृश-दर्शकः द्रष्टा आदि ।

"नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" (पा० सू०) [ल्यु, णिनि, अच्]

(१) नन्द्यादि धातुओं से 'ल्यु (यु=अन), (२) ग्रह्यादि धातुओं से णिनि (इन्) और (३) पचादि धातुओं से अच् (अ) प्रत्यय कर्ता में होते हैं ।

(१) यथा—नन्दयतीति = नन्दनः (नन्दि+ल्यु, अन) जनम् अर्दयति इति जनार्दनः (जन + अर्दि + अन) । मधुंसूदयति इति मधुसूदनः । विशेषेण भीषयति इति विभीषणः । लवणः ।

(२) ग्रह + णिनि = ग्राही । स्था-स्थायी । मन्त्र-मन्त्री । वि + शी (ङ्)=विशायी । वि + षि (ञ्) = विषयी । (३) पचतीतिपचः (पच् + अच् (अ) । स्त्री० पचा । नद्-नदः-नदी । दिव्-देवः-देवी । चुर-चोरः-चोरी । रात्रौचरति इति रात्रिञ्चरः-रात्रिचरः ।

"इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" (पा० सू) क (अ)

इगुपध (जिनकी उपधा में इक् है ऐसे) धातुओं और ज्ञा, प्री, तथा कॄ धातुओं से कर्ता में 'क' होता है। यथा—क्षिपतीति क्षिपः। बुध्-बुधः। ज्ञा-ज्ञः। प्री-प्रियः। कॄ-किरः।

"आतश्चोपसर्गे" (पा० सू०) कः

उपसर्ग पूर्व में रहने पर आकारान्त धातुओं से 'क' होता है। प्र+ज्ञा+क=प्रज्ञः। अधि+पा+क=अधिपः। वि+आ+घ्रा=व्याघ्रः।

"पाघ्राध्मा धेट् दृशः शः" (पा० सू०) श (अ)

पा, घ्रा, ध्मा, धेट् और दृश् धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है। शित्वात् सार्वधातुक संज्ञा होने से 'पा' आदि के स्थान में 'पिब' आदि आदेश होता है। यथा-पिबतीति पिबः।

(पा+श) घ्रा-जिघ्रः। ध्मा-धमः। धे-धयः। दृश्-पश्यः।

"आतोऽनुपसर्गेकः" (पा० सू०) [क (अ)]

कर्म वाचक शब्द उपपद हो तो उपसर्ग रहित आकारान्त धातुओं से 'क' होता है। यथा—धनं ददाति इति धनदः (धन+दा+क)। जलं ददातीति जलदः।

"सुपिस्थः" (पा० सू०) [क (अ)]

कोई सुबन्त पद उपपद रहने से 'स्था' प्रभृति आकारान्त धातुओं से क होता है। यथा—गृहेतिष्ठतीति गृहस्थः। द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः। आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्।

"सुप्यजातौ णिनि स्ताच्छील्ये" पा० सू०) [णिनि (इन्)]

जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहने पर धातु से ताच्छील्य (स्वभाव) अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है। यथा-उष्णं भोक्तुं शीलमस्य उष्णभोजी।

"क्तक्तवतू निष्ठा" "निष्ठा" पा० सू० [क्त, क्तवतु। त, तवत्]

भूतकालिक क्रिया के अर्थ में वर्तमान धातुओं से क्त और क्तवतु प्रत्यय होते हैं। इनमें 'क्त' भाव और कर्म में तथा क्तवतु' कर्ता में होते हैं। यथा-मया हसितम् भक्तेन कृष्णः स्तुतः। विष्णुः विश्वं कृतवान्।

गत्यर्थक, अकर्मक एवं श्लिष्, शीङ्, स्था, आस्, वस, जन् रुह, जॄ-इतने (उपसर्ग पूर्वक सकर्मक) धातुओं से भाव और कर्मके साथ कर्ता में भी 'क्त' होता है ❀। यथा—गृहंगतः। बालः भ्रान्तः। प्रियामाश्लिष्टः। हरिः शेष मधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। कृष्णमुपासितः। हरिदिन मुपोषितः। लक्ष्मणो भरतम् अनुजातः। यानमारूढः। विश्वमनुजीर्णः।

† इच्छार्थक, ज्ञानार्थक तथा पूजार्थक धातुओं से वर्तमान कालमें 'क्त' प्रत्यय होता है। यथा-मम मतः, इष्टः। मम बुद्धं, विदितमस्ति। पूजितः, अर्चितः आदि।

❀ "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" (पा० सू०)

† "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च" [पा० सू०]

कुछ निष्ठा प्रत्यान्त शब्दों के उदाहरण

धातु	क्त (त)	क्तवतु (तवत्)
घ्रा–	घ्राणः, घ्रातः	घ्राणवान् घ्रातवान्
दा	दत्तः	दत्तवान्
आ + दा –	आत्तः	आत्तवान्
धा—	हितः	हितवान्
पा—	पीतः	पीतवान्
मा—	मितः	मितवान्
निर् + वा	निर्वातोवातः,	निर्वातवान्
निर + वा –	निर्वाणो दीपः	निर्वाणवान्
हा –	हीनः	हीनवान्
क्षि	क्षीणः	क्षीणवान्
श्वि—	शूनः	शूनवान्
डी—	डीनः	डीनवान्
ली—	लीनः	लीनवान्
शी—	शयितः	शयितवान्
ह्री—	ह्रीतः	ह्रीतवान्
	ह्रीणः	ह्रीणवान्
दू—	दूनः	दूनवान्
लू—	लूनः	लूनवान्
जागृ—	जागरितः	जागरितवान्
जॄ*—	जीर्णः	जीर्णवान्

* ऐसे ही कॄ, तॄ, तॄ, दॄ, शॄ आदि ।

ह्वे—	हूतः	हूतवान्
क्षै—	क्षामः	क्षामवान्
गै—	गीतः	गीतवान्
ग्लै—	ग्लानः	ग्लानवान्
त्रै—	त्रात, त्राणः,	त्रातवान् त्राणवान्
ध्यै—	ध्यातः	ध्यातवान्
शङ्कि—	शङ्कितः	शङ्कितवान्
लिख्—	लिखितः	लिखितवान्
मृज्—	मृष्टः	मृष्टवान्
पच्—	पक्वः	पक्ववान्
मुच्—	मुक्तः	मुक्तवान्
भञ्ज्—	भग्नः	भग्नवान्
रञ्ज्—	रक्तः	रक्तवान्
नृत्	नृत्तः	नृत्तवान्
गद्	गदितः	गदितवान्
क्लिद्	क्लिन्नः	क्लिन्नवान्
मद्	मत्तः	मत्तवान्
खन्	खातः	खातवान्
जन्—	जातः	जातवान्
मन्—	मतः	मतवान्
अद्—	जग्धः अन्नम्	जग्धवान्
क्षुद्—	क्षुण्णः	क्षुण्णवान्

खिद्* —	खिन्नः	खिन्नवान्
प्याय्—	पीनः	पीनवान्
स्फाय्—	स्फीतः	स्फीतवान्
धाव्—	धौतः	धौतवान्
	धावितः	धावितवान्
सिव्—	स्यूतः	स्यूतवान्
भ्रंश् —	भ्रष्टः	भ्रष्टवान्
शुष्—	शुष्कः	शुष्कवान्
सह्—	सोढः	सोढवान्
मुह्—	मुग्धः, मूढः	आदि ।

शतृ (अत्)

कर्तृवाच्य क्रियाबोधक धातुमात्र से परस्मैपद में लट् लकार के स्थानमें (वर्तमान काल में) और लृट् लकार के स्थान में (भविष्यत् काल में) शतृ प्रत्यय होता है ।

नोट—शतृ प्रत्यय के साथ धातुओं के रूप वैसे ही हो जाते हैं जैसे लट् और लृट् लकारों के 'झि' (अन्ति' और 'स्यन्ति) के साथ । यथा भू-भवत्, भवन् भवन्ती । भविष्यत्, भविष्यन्, भविष्यन्ती । अद्—अदत्; अत्स्यत् । हु—जुह्वत्; होष्यत् । दिव्—दीव्यत्; देविष्यत् सु-सुन्वत्; सोष्यत् तुद्-तुदत्; तोत्स्यत् । रुध रुन्धत्; रोत्स्यत् । तन्—तन्वत्; तनिष्यत् । क्री-क्रीणत्-क्रेष्यत् । चुर्—चोरयत्; चोरयिष्यत् । पाठि-पाठयत्; पाठयिष्यत् । चिकीर्ष-चिकीर्षत् चिकीर्षिष्यत् । पुत्री पुत्रीय-पुत्रीयत्; पुत्रीयिष्यत् ।

---

* इसी तरह छिद्—तुद्—नुद्, भिद्, स्विद्, सद् आदि ।

विशेष प्रयोग—विद् (जानना) विदन्; विद्वान्। अधि+इ (पढ़ना) अधीयन् (सुखसे पढ़ने वाला)। द्विषन्=शत्रुः।

शानच् (आन)

कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य क्रिया बोधक धातुओं से आत्मनेपद में लट् और लृट् लकारों के स्थान में 'शानच्' होता है। शानच् के योग में भी धातुके स्वरूप वैसे ही होते हैं जैसे लट् और लृट् लकारों के 'क्त' के योग में। यथा—

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
	लट्	लृट्	लट्
सेव्—	सेवमानः;	सेविष्यमाणः	सेव्यमानः
ब्रू—	ब्रुवाणः;	वक्ष्यमाणः	उच्यमानः
दा—	ददान;	दास्यमानः	दीयमानः
मन्—	मन्यमानः	मंस्यमानः	मन्यमानः
सु—	सुन्वानः;	सोष्यमाणः	सूयमानः
तुद्—	तुदमानः;	तोत्स्यमानः	तुद्यमानः
रुध्—	रुन्धानः;	रोत्स्यमानः	रुध्यमानः
तन्—	तन्वानः;	तनिष्यमाणः	तन्यमानः
क्री—	क्रीणानः;	क्रेष्यमाणः	क्रीयमाणः
चुर्—	चोरयमाणः;	चोरयिष्यमाणः	चोर्यमाणः
पाठि—	पाठयमानः;	पाठयिष्यमाणः	पाठ्यमानः
चिकीर्ष-	चिकीर्षमाणः	चिकीर्षिष्यमाणः	चिकीर्ष्यमाणः
पापठ्य—	पापठ्यमानः;	पापठिष्यमाणः	पापठ्यमानः
पुत्रीय—	पुत्रीयमाणः;	पुत्रीयिष्यमाणः	पुत्रीय्यमाण
			पुत्रीयिष्यमाणः

नोट—कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में धातुओं के लृट् स्थानीय शानच् प्रत्ययान्त के रूप नाम धातु को छोड़कर समान ही होते हैं।

विशेष प्रयोग-आस्+शानच्=आसीनः।

ल्युट् (यु=अन)

धातुओं से नपुंसक और भाव में 'क्त' प्रत्यय के साथ ल्युट् भी होता है। यथा—हसितम्-हसनम्। गतंगमनम्।

नोट—'ल्युट् प्रत्यय का प्रयोग कहीं कहीं कारकों के अर्थ में भी होता है। तब ल्युडन्त का प्रयोग नपुंसक के अतिरिक्त लिङ्ग में भी होता है। यथा—(कर्म में) भुज्यते इति 'भोजनम्'। श्रूयते अनेन इति 'श्रवणः'; 'घ्राणः' आदि करण में। मसिर्धीयते अत्रेति मसिधानी आदि अधिकरण में। इसी तरह सम्प्रदानम् अपादानम् आदि।

क्त्वा (त्वा) [Indeclinable Past Participle]

"समान कर्तृकयोः पूर्वकाले" (५१० सू०)

एक कर्ता की अनेक क्रियाएँ हों तो पूर्वकालिक क्रिया बोधक धातुओं से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। 'क्त्वा प्रत्यय के पूर्व धातु का स्वरूप साधारणतः 'क्त' प्रत्यय के पूर्व के समान होता है। यथा- स्नात्वा भुंक्ते। भुक्त्वा, पीत्वा च विद्यालयं गच्छति।

प्रतिषेधार्थक 'अलं' और 'खलु' के योग में क्त्वा प्रत्यय होता है। यथा-अलं गत्वा तत्र। यदि तृप्तोऽसि खलु पीत्वा।

कुछ क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द ।

दा—दत्त्वा	दम्—दमित्वा, दान्त्वा	वृत्—वर्तित्वा, वृत्वा
तॄ—तीर्त्वा	शम्—शमित्वा, शान्त्वा	कृष्—कृषित्वा, कर्षित्वा
वस्—उषित्वा	नश्—नशित्वा, नंष्ट्वा, नष्ट्वा	तृष्—तृषित्वा, तर्षित्वा
शास्—शिष्ट्वा	सह्—सहित्वा, सोढ्वा	मृष्—मृषित्वा मर्षित्वा
धा—हित्वा	लिख्—लिखित्वा, लेखित्वा	भञ्ज्—भङ्क्त्वा, भक्त्वा
अद्—जग्ध्वा	क्लिद्—क्लिदित्वा, क्लेदित्वा	रञ्ज—रङ्क्त्वा, रक्त्वा
भिद्—भित्त्वा	दिव्—देवित्वा, द्यूत्वा	ग्रन्थ—ग्रन्थित्वा, ग्रथित्वा
बन्ध—बद्ध्वा	इष्—इषित्वा, इष्ट्वा	स्यन्द्—स्यन्दित्वा, स्यन्त्वा
श्वि—श्वयित्वा	द्युत्—द्युतित्वा, द्योतित्वा	गुम्फ्—गुम्फित्वा, गुफित्वा
डी—डयित्वा	गुप्—गोपायित्वा, गोपित्वा-गुपित्वा, गुप्त्वा	मस्ज्—मङ्क्त्वा, मक्त्वा
जॄ—जरीत्वा, जरित्वा		ग्रह्—गृहीत्वा
खन्—खनित्वा, खात्वा	लुभ्—लोभित्वा, लुभित्वा, लुब्ध्वा	क्षुध्—क्षुधित्वा, क्षोधित्वा
तन्—तनित्वा, तत्वा		वच्—उक्त्वा
क्रम्—क्रमित्वा, क्रान्त्वा, क्रन्त्वा	गुह्—गुहित्वा, गूहित्वा गूढ्वा	वप्—उप्त्वा
	मृज्—मार्जित्वा, मृष्ट्वा	क्लिश्—क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा
	नृत्—नर्तित्वा	

"समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वोल्यप्" (पा० सू०)

'नञ्' भिन्न अव्यय के साथ 'क्त्वा' प्रत्ययान्त पदका समास होनेपर उसमें 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' (य) हो जाता है।

यथा—आ+नी = आनीय	द्विधा + कृ = द्विधाकृत्य
आ+दा = आदाय	निर् + भिद् = निर्भिद्य
निस्+चि = निश्चित्य	उत् + प्लुत् = उत्प्लुत्य
परा + जि = पराजित्य	प्र + दिव् = प्रदीव्य
अनु+भू = अनुभूय	अव+कॄ = अवकीर्य
अधि + इ = अधीत्य	आ + पॄ = आपूर्य
प्र + इ = प्रेत्य	प्र+वच् = प्रोच्य
सम् + कृ = संस्कृत्य	प्र + वस् = प्रोष्य
आ+ह्वे = आहूय	वि+ग्रह = विगृह्य
अनु + वद् = अनूद्य	उद् + तॄ = उत्तीर्य

नोट—'ल्यप्' प्रत्यय के योग में निम्नलिखित विशेष कार्य ध्यान में रखने चाहिएँ ।

(१) ह्रस्वान्त धातु के परे 'तुक्' (त्) हो जाता है। यथा-विजित्य ।

(२) तन्, मन्, हन् धातु के 'नकार' का लोप हो जाता है। यथा-वितत्य ।

(३) गम्, नम्, यम, रम् धातुओं के 'मकार' का विकल्प से लोप हो जाता है। यथा-आगत्य, आगम्य, प्रणत्य, प्रणम्य आदि ।

(४) मूल इकारान्त भिन्न अनुनासिकोपध धातुओं के अनुनासिक का लोप हो जाता है। यथा—परिव्रज्य ।

(५) ण्यन्त धातुओं के 'णिच्' का लोप हो जाता है, किन्तु पूर्व स्वर 'लघु हो तो णिच् के स्थानमें 'अय्' हो जाता है। यथा—वि + चिन्ति + य = विचिन्त्य । प्रपीड्य । सम्बोध्य । किन्तु विगणय्य । विघटय्य । प्रणमय्य ।

* पौनः पुन्य (बारबार) अर्थ रहने पर क्त्वा प्रत्यय के अर्थ में 'णमुल्' (अम्) भी होता है। यथा—स्मारंस्मारं नमति कृष्णम्। स्मृत्वा स्मृत्वा इत्यर्थः। इसी तरह पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावंश्रावम्। गामंगामम्। गमंगमम्।

"तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्" (पा० सू०)

पूर्व क्रिया की निमित्त (उद्देश्य) रूप उत्तर क्रिया के बोधक धातुओं से तुमुन् (तुम्) और ण्वुल् (वु = अक) प्रत्यय होते हैं। यथा—कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

† इच्छार्थक धातु उपपद रहने पर (उसके कर्मरूप क्रिया के बोधक) धातुओं से, यदि दोनों का कर्ता एक ही व्यक्ति हो तो 'तुमुन्' होता है। यथा—स इच्छति भोक्तुम्।

‡ शक्, धृष आदि धातुओं के योग में, समर्थार्थक † शब्द तथा कालार्थक †† शब्द उपपद रहने पर धातुओं से 'तुमुन्' होता है। यथा—कर्तुं शक्नोति, धृष्णोति आदि। गन्तुं समर्थः, शक्तः, प्रवीणः आदि। भोक्तुं कालः समयः, वेला आदि।

'तुमुन्' प्रत्यय से पूर्व धातु का स्वरूप 'तव्य' प्रत्यय से पूर्व के समान होता है।

---

* "आभीक्ष्ण्ये णमुल्" (पा० सू०)

† "समान कर्तृकेषु तुमुन्" (पा० सू०)

‡ "शकधृषज्ञाग्ला घट रभ लभ क्रम सहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्" (पा० सू०)

† "पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु"

†† "काल समय वेलासु तुमुन्" (पा० सू०)

कुछ तुमुन्नन्त शब्द।

भू-भवितुम्। अद्-अत्तुम्। हु-होतुम्। दिव्-देवितुम्। सु-सोतुम्। तुद्-तोत्तुम्। रुध्-रोद्धुम्। तन्-तनितुम्। क्री क्रेतुम्। चुर्-चोरयितुम्। बोधि-बोधयितुम। चिकीर्ष-चिकीर्षितुम्। बोबुध्य-बोबुधितुम्। पुत्रीय-पुत्रीयितुम्। इ-एतुम्। चि-चेतुम्। जागृ-जागरितुम्। मृ-मर्तुम्। जीव-जीवितुम्। क्षम्-क्षमितुम, क्षन्तुम् वस्-वस्तुम। दह्-दग्धुम्। यज्-यष्टुम्। सह-सहितुम्, सोढुम्। हन्-हन्तुम्। सिच्-सेक्तुम्। गुप्-गोपायितुम्, गोपितुम्, गोप्तुम्। दुह्-दोग्धुम। मुह्-मोहितुम्, मोग्धुम्।

"भावे" (पा० सू०) [घञ् (अ)]

भाव में धातुओं से 'घञ्' प्रत्यय होता है। कहीं कहीं कारकों के अर्थों में भी 'घञ्' होता है। घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं। यथा पठनम्-पाठः। पचनम्-पाकः आदि। कारकों में —दारयन्ति=चित्तं विद्रावयन्तीति=दाराः। जरयति=नाशयति कुलमिति=जारः। लभ्यते इति लाभः। रज्यति अनेन इति रागः। उपेत्य अधीयते अस्मात् इति उपाध्यायः। आध्रियते अत्रेति आधारः।

"स्त्रियांक्तिन्" (पा० सू०) [क्तिन् (ति)]

भाव में धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' होता है और कहीं-कहीं कारक के अर्थ में भी। यथा—दृष्टिः=दर्शन=देखना और देखने का करण—नेत्र। श्रुतिः=सुनना और सुनने का कर्म वेद तथा सुनने का करण—कान।

कुछ 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द

स्था-स्थितिः। यज्-इष्टिः। जन्-जातिः। वच्-उक्तिः। कम्-कान्तिः। रम्-रतिः। गम्-गतिः। तुष्-तुष्टिः। कॄ-कीर्णिः। गॄ-गीर्णिः। लू-लूनिः। धू-धूनिः पू-पूनिः। अद्-जग्धिः। स्मृ-स्मृतिः। जागृ-जागृतिः इत्यादि।

स्पृहि, गृहि, पति, दयि, निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा इतने से कर्ता के स्वभाव, धर्म वा पटुता अर्थ में 'आलुच्' (आलु) प्रत्यय होता है। यथा—स्पृहयति तच्छीलः, तद्धर्मा, तत्साधुकारी वा स्पृहयालुः। ऐसे ही गृहयालुः, पतयालुः, दयालुः, निद्रालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः।

"सनाशंसभिक्ष उः" (पा० सू०) [उ]

सन्नन्त धातु, आ+शंस् तथा भिक्ष् धातु से इच्छा प्रगट करनी हो तो 'उ' प्रत्यय होता है। यथा—पठितुमिच्छुः = पिपठिषुः द्रष्टुमिच्छुः = दिदृक्षुः। ज्ञातुमिच्छुः = जिज्ञासुः। आशंसुः। भिक्षुः।

ताच्छील्यादि अर्थों में लष्, पत्, पद्, स्था, भू, वृष्, हन्, कम्, गम्, शॄ—इतने धातुओं से 'उकञ्' (उक) प्रत्यय होता है। यथा—लाषुकः, पातुकः, पादुकः, स्थायुकः आदि।

भाव तथा कर्तृवर्जित कारकों में यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ्, रक्ष् इतने धातुओं से नङ् (न) प्रत्यय होता है। यथा—यज्ञः, याच्ञा, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, रक्ष्णः।

इति कृदन्त प्रकरणम्

Give Single Words For

अनुग्रहीतुमिच्छति = अनुजिघृक्षति ।

अत्तुमिच्छति = जिघत्सति । यष्टुमिच्छुः = यियक्षुः ।

प्रष्टुमिच्छति = पिपृच्छिषति । कर्तुमिच्छति = चिकीर्षति ।

भवितुमिच्छति = बुभूषति । पातुमिच्छति = पिपासति ।

स्थातुमिच्छति = तिष्ठासति । शयितुमिच्छति = शिशयिषते ।

हन्तुमिच्छति = जिघांसति । अध्येतुमिच्छति = अधिजिगांसते ।

आप्तुमिच्छति = ईप्सति । अर्धितुमिच्छति = ईर्त्सति, अर्दिधिषति ।

भ्रष्टुमिच्छति = बिभ्रज्जिषति, बिभर्ज्जिषति, बिभ्रक्षति, बिभर्क्षति ।

नर्तितुमिच्छति = निनर्तिषति, निनृत्सति ।

तर्तुमिच्छति = तितरिषति, तितरीषति, तितीर्षति ।

अध्यापयितुमिच्छति = अध्यापिपयिषति, अधिजिगापयिषति ।

साधयितुमिच्छति = सिषाधयिषति ।

भवन्तंप्रेरयति = भावयति । शयानंप्रेरयति = शाययति ।

पिबन्तं प्रेरयति = पाययति । वान्तं प्रेरयति = वाजयति ।

क्रीणन्तंप्रेरयति = क्रापयति । रुहन्तं प्रेरयति = रोपयति, रोहयति ।

सीदन्तं प्रेरयति = शातयति, शादयति । गच्छन्तं प्रेरयति = गमयति ।

विस्मयमानं प्रेरयति = विस्मापयते । बिभ्यतं प्रेरयति = भापयते, भीषयते ।

पुनः पुनरतिशयेन वा भवति = बोभूयते ।

कुटिलं व्रजति = वाव्रज्यते । गर्हितंलुम्पति = लोलुप्यते ।

गर्हितं चरति = चञ्चूर्यते । गर्हितं फलति = पम्फुल्यते, पंफुल्यते ।
गर्हितं जपति = जंजप्यते । गर्हितं गिलति = जेगिल्यते ।
पुनः पुनरतिशयेन वा ददाति = देदीयते । पुनः...पिबति = पेपीयते ।
पुनः...करोति = चेक्रीयते । पुनः...हन्ति = जेघ्नीयते ।
पुनः...वर्तते = वरीवृत्यते । पुन...नर्तति = नरीनृत्यते ।
पुनः...पृच्छति = परीपृच्छ्यते । पुनः...जिघ्रति = जेघ्रीयते ।
पुनः...धमति = देध्मीयते । पुनः...शेते = शाशय्यते ।
पुनः...श्वयति = शोशूयते, शेश्वीयते । कुटिलं क्रामति = चङ्क्रम्यते ।
आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति । आत्मनःगामिच्छति = गव्यति
आत्मनः नावमिच्छति = नाव्यति । बुभुक्षया अशनमिच्छति = अशनायति ।

पिपासया उदकमिच्छति = उदन्यति । गर्धेनधनमिच्छति = धनायति
वड़वाअश्वमिच्छति = अश्वस्यति । गौः वृषमिच्छति = वृषस्यति ।
बालः लालसयाक्षीरमिच्छति = क्षीरस्यति ।
उष्ट्रः लालसया लवणमिच्छति = लवणस्यति ।
शिष्यं पुत्रमिवाचरति = पुत्रीयति । कृष्ण इवा चरति = कृष्णायते कृष्णति ।

कुट्यां प्रासादे इवाचरति = प्रासादीयति ।
ओज इवाचरति = ओजायते । अप्सरा इवाचरति = अप्सरायते ।
यश इवाचरति = यशायते, यशस्यते ।
विद्वानिवाचरति = विद्वायते, विद्वस्यते ।
सपत्नीवा चरति = सपत्नायते, सपत्नीयते, सपतीयते ।
कुमारीवाचरति = कुमारायते । युवतिरिवाचरति = युवायते ।

राजेवाचरति=राजानति। पन्थाइवाचरति=पथीनति, पथेनति।

अभृशोभृशोभवति=भृशायते। असुमनाः सुमना भवति=सुमनायते।

रोमन्थं वर्तयति=रोमन्थायते। तपश्चरति=तपस्यति।

वाष्पमुद्वमति=वाष्पायते। ऊष्माणम् उद्वमति=ऊष्मायते।

फेनमुद्वमति=फेनायते। शब्दं करोति=शब्दायते, शब्दयति।

सुखंवेदयते=सुखायते। मुण्डंकरोति=मुण्डयति।

वस्त्रैः समाच्छादयति=संवस्त्रयति। सत्यं करोति आचष्टेवा=सत्यापयति।

पाशं विमुञ्चति=विपाशयति। अर्थं करोति आचष्टे वा=अर्थापयति।

वेदं करोति आचष्टे वा=वेदापयति। रूपं पश्यति=रूपयति।

वीणया उपगायति=उपवीणयति। तूलेनानुकुष्णाति=अनुतूलयति।

श्लोकैरुपस्तौति=उपश्लोकयति। सेनयाअभियाति=अभिषेणयति।

लोमानिअनुमार्ष्टि=अनुलोमयति। त्वचं गृह्णाति=त्वचयति।

वर्मणा संनह्यति=संवर्मयति। वर्णं गृह्णाति=वर्णयति।

चूर्णैः अवध्वंसते = अवचूर्णयति। श्वानमाचष्टे = शावयति, शुनयति।

विद्वासमाचष्टे=विद्वयति, विदावयति, विदयति।

श्रीमतीं श्रीमन्तं वा आचष्टे=श्राययति।

स्थूलमाचष्टे=स्थवयति। दूरमाचष्टे=दवयति।

युवानमाचष्टे=यवयति, कनयति। अन्तिकमाचष्टे=नेदयति।

बाढमाचष्टे=साधयति। प्रशस्य माचष्टे प्रशस्ययति।
वृद्धमाचष्टे=ज्यापयति। प्रियमाचष्टे=प्रापयति।
स्थिरमाचष्टे=स्थापयति। स्फिरमाचष्टे=स्फापयति।
उरुमाचष्टे=वरयति, वारयति। बहुलमाचष्टे=बंहयीत।
गुरूनाचष्टे=गरयति। तृप्रमाचष्टे=त्रापयति।
दीर्घमाचष्टे=द्राघयति। वृन्दारकमाचष्टे=वृन्दयति।
बहूनाचष्टे=भावयति। कलहं कुर्वन्तः=कलहायमानाः।
स्त्रियमात्मानं मन्यते=स्त्रियंमन्यः, स्त्रींमन्यः।
आत्मानं गां मन्यते=गांमन्यः। आत्मानंपण्डितंमन्यते=पण्डि-
तंमन्यः।

दक्षिणस्याश्चपूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालम्=दक्षिणपूर्वा।
द्वौवात्रयोवा=द्वित्राः। त्रयोवाचत्वारोवा=त्रिचतुराः।
केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदंयुद्धं प्रवृत्तम्=केशाकेशि।
दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम=दण्डादण्डि।
हिमस्यात्ययः=अतिहिमम्। मक्षिकाणामभावः=*निर्मक्षिकम्*।
मद्राणांसमृद्धिः=सुमद्रम्। यवनानांव्यृद्धिः=दुर्यवनम्।
निद्रासम्प्रति न युज्यते=अतिनिद्रम्। बलमनतिक्रम्य=यथाबलम्।
चक्रेण युगपत्=सचक्रम्। क्षत्राणांसंपत्तिः=सक्षत्रम्।
तृणमप्यपरित्यज्य=सतृणम्। अग्निग्रन्थ पर्यन्तम्=साग्नि।
अलंकुमार्यै=अलंकुमारिः। कौशाम्ब्या निर्गतः=निष्कौशाम्बिः।
अश्वाश्ववडवाच=अश्ववडवाः। भ्राताच स्वसाच=भ्रातरौ।
पुत्रश्च दुहिताच=पुत्रौ। अधिज्यंधनुर्यस्य=अधिज्यधन्वा।

षण्णां मातृणामपत्यम् = षाणमातुरः । राजानमतिक्रान्ता = अतिराजी ।

पञ्चगावोधनंयस्य = पञ्चगवधनः । गाण्डीवंधनुर्यस्य = गाण्डीवधन्वा ।

सुष्ठुराजा = सुराजा । अतिशयितःराजा = अतिराजा ।

परमश्चासौराजा = परमराजः । नास्तिकिञ्चनयस्य = अकिञ्चनः ।

सप्तानामह्नां समाहारः = सप्ताहः । भ्रात्रासहवर्तमानः = सभ्रातृकः, सहभ्रातृकः ।

पद्मे इवअक्षिणीयस्यसः = पद्माक्षः । शोभनः गन्धः यस्य तत् = सुगन्धि ।

जनानांसमूहः = जनता । प्रावृषिभवम् = प्रावृषेण्यम् [

मातृष्वसुःपुत्रः = मातृष्वस्रेयः । सायं भवम् = सायन्तनम् ।

प्रावृषिजातः = प्रावृषिकः । पथिजातः = पन्थकः ।

सर्वपथंव्याप्नुवतो = सर्वपथीना स्त्रीषुभवम् = स्त्रैणम् ।

धर्मादनपेतम् = धर्म्यम् । न्यायादनपेतम् = न्याय्यम् ।

पथिसाधु = पाथेयम् । व्यासस्यापत्यंपुमान् = वैयासकिः ।

वरुडस्यपत्यम् = वारुडकिः । सुधातुरपत्यम् = सौधातकिः ।

शूलेसंस्कृतम् = शूल्यम् । युवतीनां समूहः = यौवनम् ।

पाकेननिर्वृत्तम् = पाकिमम् । दध्नासंसृष्टम् = दाधिकम् ।

समायां,समायां विजायते = समांसमीना । अद्य श्वोवाविजायते = अद्यश्वीना ।

तारकाः संजाताअस्य = तारकितम् । राज्ञः अपत्यानि (जातिः) = राजन्यः ।

दशरथस्यापत्यंपुमान्=दाशरथिः। श्वशुरस्यापत्यं पुमान्=श्वशुर्यः।

आयुधेनजीवति=आयुधीयः, आयुधिकः।

पञ्चभिर्गोभिःक्रीतः=पञ्चगुः। पञ्चभिर्नौभिःक्रीतः=पञ्चनौः।

द्वाभ्यां नौभ्यामागतः=द्विनावरुप्यः।

एकः पादः यस्याः ऋचः=एकपदा। द्वौपादौयस्याःऋचः=द्विपदा।

पञ्चभिरश्वैः क्रीता=पञ्चाश्वा। द्वौविस्तौपचति=द्विविस्ता।

द्वौआचितौ वहति=द्व्याचिता। द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यांक्रीता=द्विकम्बल्या।

द्वेकाण्डेप्रमाणमस्याः=द्विकाण्डा (क्षेत्रभक्तिः)

द्वौपुरुषौ प्रमाणमस्याः=द्विपुरुषी, द्विपुरुषा (परिखा)

कुण्डमिव ऊधो यस्याः=कुण्डोध्नी (धेनुः)।

अन्तरस्ति अस्यांगर्भः=अन्तर्वत्नी।

पतिरस्ति अस्याः=पतिपत्नी (सधवा)।

धीवानमतिक्रान्ता=अतिधीवरी।

समानेऽहनि=सद्यः। समाजं रक्षति=सामाजिकः।

अश्मनोविकारः=आश्मः। ईषज्जलम्=काजलम्।

अश्रेण्यः श्रेण्यः कृताः=श्रेणिकृताः।

पञ्चेन्द्राण्यो देवताअस्य=पाञ्चेन्द्रः। राधाजाया यस्य=राधाजानिः।

इति व्याकरणोदयः